# कलकत्ता के नज़दीक ही




गजेन्द्रकुमार मित्र





CALCUTTA KE NAJDEEK HI
(A Novel)
*by*
Gajendra Kumar Mitra
*Translated from Bengali by*
Prithvi Nath Shastri
Rs. 7 50



प्रकाशक
रामलाल पुरी, सचालक
आत्माराम एण्ड सस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-6
शाखाएँ
हौज खास, नई दिल्ली
माई हीरा गेट, जालन्धर
चौडा रास्ता, जयपुर
बेगमपुल रोड, मेरठ
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ
नीलकठ कॉलोनी, इन्दौर
महानगर, लखनऊ

मूल्य · सात रुपया पचास नए पैसे
प्रथम सस्करण : 1963

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

# अपनी बात

सभी बच्चो की तरह मुझे भी बचपन से कहानी सुनने का बहुत चाव था। अपनी पहली पाठमाला की सीमा लाघते ही मैंने अपने जीवन की शायद सबसे अधिक महत्वपूर्ण खोज की थी, वह यह कि पुस्तको मे कहानियाँ भी होती हैं। कहानियो की खोज ने ही मुझे किताबी दुनिया मे ला पटका। आज भी मुझे धुधली-सी याद है कि 'महाभारत' के बगला संस्करण के प्राय समझ मे न आने वाले अथवा वयस्क पाठको के लिए लिखे गए उपन्यासों के पृष्ठों पर, उनमे छिपे हुए कहानियो के सुनहरे सूत्रो की खोज मे मेरी नाजुक आँखे गड़ी रहती थी।

कहानियाँ पढते-पढते कहानियाँ कहने की स्वाभाविक इच्छा ने जन्म लिया। जैसा कि मेरी माताजी ने मुझे बताया, उस समय मुझे कहानियाँ सुनने या उन्हें दोहराने का बेहद चाव था। इस मामले मे चाहे कोई सुनने वाला हो या न हो, मैं निस्पृह था और जब मैंने घर के बडो की मेज से उडाये हुए कागजो पर चीथना शुरू किया, उस समय के प्रारम्भिक साहित्यिक प्रयास के पीछे एक ही उद्देश्य था—उन कहानियों का पुनर्लेखन जो मैंने पहले कही सुनी या पढी थी। इस प्रकार जल्द ही मुझमे अपनी मौलिक कहानियाँ लिखने का विचार घर करने लगा।

मैं आपको और अधिक अपने बचपन के उन सस्मरणो मे उलझाए रखना नही चाहूँगा जिन्हे मेरे ख्याल से किसी हद तक ढकोसला ही कहा जाता है। लेकिन वास्तविकता यही है कि बचपन मे ही मेरे अन्तर की बाध्यता ने ही मुझे कहानी कहने की प्रेरणा दी थी। कैसी कहानियाँ ? किसकी कहानियाँ ? ऐसे प्रश्न उस समय मेरे सामने नहीं थे। विचार, मान्यताएँ अथवा स्वप्न—आप उन्हे जो चाहे नाम दे—उनका मूलाधार अवचेतन मे होता है। बाद मे आयु और अनुभव के साथ-साथ उनमे विकास और परिवर्तन होता रहता है। जो कभी स्वप्न था, वह आकाक्षा बन जाती है, जो शायद कभी पूर्णत साकार नही होती। परन्तु इस पर भी उसे मस्तिष्क की सर्वाधिक मूल्यवान निधि के रूप मे संजोया जाता है।

बदलते हुए जमाने के साथ मैं भी बदला हूँ। लेकिन चाहे जो भी कारण हो, लेखक के रूप मे मेरा अन्तिम लक्ष्य मेरे जीवन की बिलकुल प्रारम्भिक अवस्था में

ही हमेशा के लिए निर्धारित हो चुका था। मेरी कृतियाँ ऐसी हो जिनकी जडें मानव-जीवन के आधारभूत सत्य मे पैठी हो और जो काल की कसौटी पर अधूरी न उतरे—आपको शायद यह दावा शेखी बघारना लगेगा, लेकिन फिर भी यह हमेशा से मेरी आकाक्षा अथवा मेरा स्वप्न रहा है। क्योकि न जाने कैसे बचपन से ही मेरी यह अचल आस्था रही है कि किसी भी लेखक को अपने समय मे कितनी ही प्रसिद्धि और आर्थिक सफलता क्यो न प्राप्त हो, वह भविष्य मे उस लेखक की विस्मृति को पूरा नही कर सकती। यदि लेखक जीवित रहना चाहता है, तो उसे भविष्य के लिए जीवित रहना होगा।

क्योकि मेरी यह मान्यता थी और यह प्रत्याशा मुझ मे घर कर चुकी थी कि साहित्य के आने वाले इतिहासकार अमर कृतिकार के रूप मे न सही, लेकिन कम-से-कम साहित्य के महान् मन्दिर के एक नगण्य आले की हैसियत से मेरा थोडा-बहुत ज़िक्र अवश्य करे। इसीलिए मै इस मार्ग के विषय मे सोचता था जिसके द्वारा मुझे इस लक्ष्य तक पहुँचना था। महाकवि रवीन्द्र के इस वाक्य ने मुझे मार्ग दिखलाया—"लोग साहित्य से क्या आशा रखते है, यह इस बात से भली-भाँति जाना जा सकता है कि उन्होने साहित्य से अपेक्षा क्या की थी।" अथवा दूसरे शब्दो मे यो कहा जा सकता है कि अमरता का रहस्य उन्ही मे मिल सकता है जो स्वय अमर हो चुके है।

इस मार्ग ने मुझे डिकन्स, बलजाक, ताल्स्ताय, जेन आस्टन तक पहुँचाया। मैंने अपने देश के पुराने महान् लेखको को भी श्रद्धापूर्वक पढा है। उन सबने मेरा मार्ग आलोकित किया है और वे मेरे मार्गदर्शक बने है। परन्तु उन सबमे डिकन्स ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया है। डिकन्स के साथ मेरे प्रथम परिचय ने मुझ आनन्दविभोर कर दिया। अचानक ही मेरा मानसिक और आध्यात्मिक क्षितिज विशाल हो उठा। डिकन्स आज भी मेरा गुरु है।

एक सबसे बडा सबक जो मैंने डिकन्स से सीखा है, वह यह है कि इन्सान कुल मिलाकर नेक है। ससार मे कोई भी बुराई की इच्छा नही रखता, परन्तु भलाई को अभी और जगह बनानी है। यदि हम किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण चरित्र को देखे तो उसमे भी उसकी बुराई के मुकाबले भलाई का पलडा भारी होगा।

इसीलिए शुरू से ही मेरा यह निश्चय रहा है कि मै उस यथार्थ जगत् के बारे मे लिखूँ जिसे मैं अपने चारो ओर देखता हूँ और उन पर लिखूँ जो इस जगत् मे रहते हैं। उसके विषय मे नही जो असाधारण अथवा असामान्य महामानव है, बल्कि उस व्यक्ति के बारे मे लिखूँ जो साधारण है, गली-कूचे का आम इन्सान है—जो हजारो मुसीबतो के थपेड़े खाता है, लेकिन फिर भी वह उनका डटकर मुकाबला करता है, जो खामोश है, जिद्दी है और बेहिसाब सहनशील भी, लेकिन फिर भी अजेय है—यह वही अनेकानेक असगतियो से भरा-पूरा प्राणी है, जिसमे अब भी अपनी

अप्रत्याशित असभावनाओ से हमे चमत्कृत और मुग्ध कर देने की शक्ति मौजूद है।

सौभाग्यवश मुझे ऐसे लोगो के समीप रहने का भरपूर अवसर मिला है। प्रथम महायुद्ध से कुछ वर्ष पूर्व मेरा जन्म हुआ था और महायुद्ध की समाप्ति पर मैंने जीवन के उस दौर मे पॉव धरा ही था जबकि चेतना के द्वार मस्तिष्क की ओर खुलते हैं और बहिर्जगत की धारणाओ का उस पर बहुत तेज प्रभाव पडता है। इसके बाद का दौर हमारे देश की जनता के लिए भीषण सकट का ज़माना था। समाज के सभी वर्ग अभाव, गरीबी, विपत्तियो और अशाति के शिकार थे। मैं स्वय एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार मे पैदा हुआ था और मेरे सभी रिश्तेदार, मित्र और परिचित उसी वर्ग के थे। मैने अस्तित्व की रक्षा के लिए उन्हे निष्फल, किन्तु अनवरत सघर्ष मे जूझते हुए देखा है। मेरी आँखे गवाह है कि वे किस प्रकार जूझ-जूझकर लडते रहे और अत मे भाग्य के क्रूर चक्र मे पिस गए।

यह वह ज़माना था, जब 'सर्वहारा' शब्द नया-नया चला था और काफी पढ़े-लिखे लोगो ने और यदाकदा अच्छे-खासे प्रतिष्ठित लेखको ने भी गरीब किसानो और मज़दूरो के बारे मे उपन्यास और कहानियाँ लिखना शुरू कर दिया था। उनके अपने दुखो के बारे मे मुझे मालूम था। परन्तु इस पर भी मैं यह समझने के लिए मजबूर था कि 'सर्वहारा'—वे लोग जो अपने हाथ से परिश्रम करके जीविका कमाते हैं, उन मध्यवर्गी लोगो की अपेक्षा अधिक भाग्यवान हैं, जिन्हे तमाम गरीबी और अभाव के बावजूद शिक्षा, सस्कृति और भद्रता का दयनीय दिखावा करना पड़ता था। उन्हे अपने बच्चो को स्कूल भेजना ही पड़ता था, हालाकि शिक्षा का व्यय प्राय उनके बूते के बाहर होता था। वे चाहे स्वयं भूखे रहे, लेकिन मेहमान का स्वागत कीमती मिठाइयो से होता था। किसी रिश्तेदार के यहाँ विवाह के माने थे उपहार-भेट, जो अक्सर उनकी औकात के बाहर की बात होती थी। लेकिन सामाजिक प्रतिष्ठा की नाक हर कीमत पर ऊँची रहनी चाहिए।

उस समय ऐसा ही चलन था और आज भी वैसा ही चलता है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की दो योजनाओ से किसानो और मजदूरो के जीवन मे काफी सुधार हुआ है। लेकिन निम्न श्रेणीय बाबूवर्ग तथा उसके स्तर के अन्य लोगो को इन योजनाओ से बहुत कम लाभ पहुँचा है। महँगाई-भत्ते का जीवन-स्तर से शायद ही कोई सम्बन्ध रहता हो। इनमे अधिकाश के लिए जीवन, भीषण असगतियो के विरुद्ध एक कठिन सघर्ष-मात्र रह गया है।

'कलकत्ता के नजदीक ही' मे मैंने इन लोगो की या कहिये इनमे भी सबसे गरीब लोगो की कहानी कहने का प्रयत्न किया है। जब मैं अपनी बीसी मे नही पहुँचा था, उस समय मुझे कलकत्ता के बिलकुल नजदीक ही एक गाँव मे रहने का अवसर मिला था। यह 1923-24 की बात है। तब भी कलकत्ता

बहुत बड़ा नगर था—ब्रिटिश-साम्राज्य का दूसरा सबसे बडा नगर। परन्तु कलकत्ता से केवल सात-आठ मील की दूरी पर ही गरीबी, अन्धविश्वास, अशिक्षा और जहालत की अविश्वसनीय गहराइयो मे उतरकर जो मैने अपनी आँखो से देखा था, उससे मुझे भारी आघात पहुंचा था और उसी समय मैंने यह निश्चय किया था कि यदि कभी मै लेखक बना तो इन लोगो के बारे मे लिखूंगा। क्रूर भाग्य ने इन्हे लगातार ठुकराया, लेकिन इन्होने कभी हार नही मानी। अधपेट, अधनंगे और बीमारी की स्थिति मे बिना इलाज और दवा के इन्होने मृत्यु से भीषण मोर्चा लिया है और जैसे-तैसे अपने-आपको जिन्दा रखा है। एक जमाने से अन्याय, शोषण और निराशा के बन्धन मे जकडे होने के बावजूद वे अपनी निर्धारित दिशा की ओर अग्रसर रहे है। मेरा निश्चय था कि मै इन्ही दुखियारे नरपुंगवो, इस 'बेडियो मे जकड़ी सैनिको की टुकडी' के बारे मे लिखूंगा।

इस पुस्तक मे इन्ही लोगो के विषय मे लिखने मे मै कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय आज और भविष्य के पाठक करेगे। मुझे सन्तोष यही है कि मैने अपनी ओर से भरसक प्रयत्न किया है। मैने कभी झूठ का खेल नही खेला, कभी उस तथ्य से मुँह नही मोड़ा जिसे मै सत्य समझता हूँ।

—गजेन्द्रकुमार मित्र

# प्रथम परिच्छेद

## 1

कलकत्ता के आस-पास ही—खूब नजदीक ही। शहर के इतने नजदीक ही ऐसी जगह है, आँखो देखे बिना यह यकीन करना भी मुश्किल है। परन्तु हावडा से बी० एन० आर० की गाडी पकड लेने पर आठ-नौ मील से ज्यादा नही है। दो बार बदलने के लिए राजी हो तो बस से भी जा सकते है। पर बरसात छोडकर। बरसात मे वह रास्ता चलने लायक ही नही रह जाता।

स्टेशन से उतरने ही जो रास्ता सीधा चला गया है, उसी को पकडे बस, तीन-चार मिनट पैदल चलते ही आपको ऐसा लगेगा कि मानो किसी घने जगल मे आ गए हो। बडा ही ऊबड-खाबड़ रास्ता है—खार-खड्डो मे खोया-सा। थी तो पक्की सडक पर आज उसका एक भी निशान ढूढे नही मिलता। बरसात मे कीच घुटनो तक हो जाती है। उसी मे बैलगाडी और भारी-भारी लॉरी चलने से दोनो ओर खन्दक बन जाते है। बरसात बीतने पर ये ही दुर्लंघ्य पहाड़ के पास की खाइयाँ-जैसे लगते है और चैत-बैसाख मे सब मिड-मिडाकर मैदा-जैसी बारीक और मुलायम मिट्टी की पोखर मे परिणत हो जाते है, जिसमे कि पैर टखनो तक धँस जाएँ। रास्ते के आस-पास ही सिवार से ढके अनगिनत छोटे-बडे गड्ढे भी आपकी नजर पड़ेगे—एक-आध पोखर सामने पडना भी अजीब न होगा। घर-द्वार है उनके अस्तित्व का पता भी चलेगा पर उन्हे शायद ही देख सकेंगे, चूँकि आपकी दृष्टि और इन सब मकानो के बीच मे झुके-टेढे, घने-घने घन बॉसो का वन और इमली व जामरूल के पेडो का झुरमुट और उनमे असख्य जगली झाड-झखाड और पेड-पौधे उग आये है। इन्ही बॉसो मे से दो-एक टेढी झुकी शाखो-जैसे तो रास्ते के ऊपर भी आ पडे है। राहगीर आते-जाते हमेशा सिर नवाकर चलते है, लेकिन उन्हे काटने या कटाने की बाबत कोई नही सोचता।

रास्ते के किनारे-किनारे बडी-बडी गडहियाँ, पहले बरसाती पानी और बाद मे बहुत दिनो तक कीचड़ भरी रहती है। सभी के घरो से निकले कूडा-करकट के आने का पथ तो है यह जाने का नही। नतीजा यह है कि एक दबी-दबी सडाध

मकानो के आस-पास के वातावरण को बोझिल किये रहती है । इन नालियो मे ही गोह, ऊदबिलाव, विषखपरिया आदि ने अड्डे बना लिये है । भौंडी और डरावनी गोहे लुक-छिपकर और कभी-कभी खुले आम दिन-दहाडे घूमती-फिरती है । मच्छर भी यहाँ दिन मे छिपना पसन्द नही करते, दिन-रात, हरदम मलेरिया का सत्यानाशी जहर बाँटते फिरते है ।

फलतः जो लोग यहाँ बसे है वे सब के सब अधमरे-से रहते है, मलेरिया और पेट की बीमारियो से उनकी जीवनी-शक्ति मानो निचोडकर बाहर निकाल ली गई है ।।मानो वे जीवन पर प्रतिक्षण व्यग करते जी रहे है । जो दफ्तरो मे नौकरी करते है, वे भी खूब तन्दुरुस्त नही है—उन बेचारो को तो जूडी से कॉपते-कॉपते भी दफ्तर जाना पडता है। लौटते वक्त सौदा-सुल्फ और साग-भाजी के थैले भी लटके रहते है उनके हाथो मे । बस यही है जीवन का लक्षण जो आज तक बाकी है उनमे । जो थोडी अच्छी नौकरी करते है, यानी जो डी० गुप्त या एडवास के टॉनिक खरीदकर खा सकते है उनकी हालत कुछ अच्छी है । अधिक अच्छी नौकरी करनेवाले यहाँ नही रहते—बेकार रिश्तेदारो के घर छोडकर वे अब कलकत्ता मे ही भाडे के घरो मे रहते है ।

फिर भी यहाँ राजा है । राजाओ से भी बडे ज़मीदार है । वे लोग शायद रैयत को तकलीफ हो इसलिए म्यूनिसिपैलिटी नही बनने देते । वैसे ये राजा लोग यहाँ रहते नही है—ज़मीदारो ने बालीगज मे बड़े-बड़े मकान बना लिये है । यह ठीक है कि यहाँ के वाशिन्दे अगर कोशिश करते तो वे रोक भी नही पाते । लेकिन कैसे होता यह, साल मे नौ महीने तो ये बीमार रहते है । आजकल लडाई की मेहरबानी से कुछ लोग आ गए हैं, कुछ शरणार्थी भी इधर-उधर दिखाई पडते है—गली-घाट पर कुछ लोग हमेशा मौजूद रहते है, कभी-कभी हँसी की तेज खिलखिलाहट भी सुनाई पड़ जाती है, लेकिन इससे अगर आप यह अनुमान करने लगे कि गली-कूचो की हालत भी कुछ बदली है, जगल कुछ कट गया है—तो वह आपकी भूल है । और आज भी यदि आप चार आने की टिकट खरीदकर वहाँ जाने को राजी हो तो आपका यह भ्रम टूटने मे देर नही लगेगी ।

पर हाँ यह ठीक है कि राह चलते-चलते दो चार मकान ज्यादा जरूर दीखेगे । पर झाड-झखाड़ फिर भी कम नही हुए है। थोडी दूर आगे बढ नहर का पुल पारकर राजभवन दाएँ छोडकर पास ही के रास्ते से और भी आगे जाएँ तो दिन मे ही आपको शायद सूर्यास्त दिखाई पडेगा—दुर्गन्ध से आपका दम घुटने लगेगा । समझ लीजिएगा कि आप अब श्यामा ठाकुरानी के घर तक आ पहुँचे है ।

काफी ज़मीन घिरी है इस मकान मे । यह उनका अपना घर है, पति का

नही और न अभी तक लडके-लडकियो का। पोखर है, तेईस नारियल के पेड है, सौ केले के पौधे भी है, आम, जामुन, जामरूल, आमडा, सुपारी आदि न जाने कितनी तरह के पेड लगे है। बाँसवन भी है इसी मे। श्यामा ठाकुरानी अपनी जमीन का एक बित्ता भी बेकार जाने देने के लिए तैयार नही है, नतीजा यह है कि पेड इतने घने लगे है कि कोई भी अच्छी तरह फलता-फूलता नही। श्यामा ठाकुरानी पडौसियो के हर पेड पर फल देखती है, लौकी की बेलो पर लौकी और काशीफल जमीन पर पडे देखती है और अपने नसीब को कोसती है, 'हाय मै मरती भी नही। खोटा भाग क्या पेड-पत्तियो के पीछे भी पड जाता है रे ? इन सब का क्या बिगाडा है मैने ? आँखो मे धूल झोकनेवाले बातूनो के घर मरने जाते है ये, पर मेरे पास तक नही फटकते ?'

गुस्से से दाँत किटकिटाने लगते है उनके। अभी तक उनके मुँह मे काफी दाँत है, सामने के तो करीब-करीब सभी मौजूद है, यद्यपि उम्र उनकी अब अस्सी के नजदीक आ पहुँची है। कमर झुक गई है, राह चलती है तो मानो उस पर गिरी पडती हो। जब बहुत कष्ट होता है तो एक बार कमर मे हथेलियाँ लगाकर सीधे खड़े होने की चेष्टा करती है, किन्तु पूरी सीधी हो नही पाती, एक अजीब-सी त्रिकोणाकृति बना लेती है बस।

लेकिन यही वजह है क्या कि वह कम नही घूमती-फिरती ? यहाँ से पैदल ही वह पोदडा, शालीमार, शिवपुर तक सूद वसूल करने महीने मे तीन-चार दिन जाती है। जाते-जाते ही दिन निकल जाता है, किसी के घर कुछ मिल गया तो खा-पी लेती है, नही तो उपवास ही रहता है। सबके यहाँ तो खा नही सकती, अभी तक जाति-मर्यादा का विचार नही छोडा—जिन्हे बहुत नीची जाति का मानती है वह, उनके यहाँ तो पानी भी नही पीती।—इसके अलावा घर मे भी वह दिन भर बैठी नही रहती—सूखे पत्ते, झाड़-झखाड, केले के पौधो की वासूना (सूखी छाल), नारियल व सुपारी का वेलदा (सूखी टहनियाँ) आदि चीजे वे दिन भर जुटाती फिरती है। जरा भी नही थकती। कम नही इकट्ठी की है ये चीजे, एक कमरा भरा पडा है। अलमारी, दालान अँटे पडे है, फिर भी सग्रह नही रुकता। कहती है—'कोई एक मन कोयला या लकडी खरीदकर रख देगा मेरे लिए, यही तो मेरा पूरे सालभर का ईधन बना रहेगा। वर्षा के वक्त क्या तुम्हारी तरह मैं छ. आने सैकडे की कडियाँ खरीदूँगी ?'

अगर कोई पूछता, "ओ बामनी माँ, पिछले साल के पत्ते भी तो भरे पडे है—" तो वह कुछ बिगडकर ही जवाब देती—"पडे रहे न भैया, उन पर क्यो नजर लगाते हो ? अगर किसी साल वर्षा बहुत ज्यादा हो, तो किसके पास उधार माँगने दौडूँगी, मैं, बताओ तो सही ?"

सूखे पत्ते और ब्याज, इनके सिवाय उन्हे और किसी चीज की फिकर नही थी।

ब्याज के लालच मे कई बार उनका मूल भी डूबा। ऐसी जमानतो पर भी उधार दे देती थी कि वसूल होना या वसूल करना असम्भव था। खाट के नीचे न जाने कितने घटी-लौटे, थाली-कटोरे ढेरी लगे पडे है। किसका कौन-सा है और कितने रुपये देकर गिरवी रखा है, यह भी हिसाब नही कर सकती वे नतीजा यह होता है जिसने एक रुपया उधार लिया था वह अब आने पर ब्याज लगाकर मूल और ब्याज मे एक ही रुपया देकर अपना बर्तन छुडा ले जाता है।

पर इससे उनका विशेष हानि-लाभ नही होता। तीन लडके है, तीन लडकियाँ—अनगिनती नाती-नातिनी। पतियो की पैदाइश भी शुरु हो गई है। बस घर मे चाँद-तारो का जमघट लगने वाला है। फिर भी आज कोई नही है उनका। इतने बडे मकान मे वह अकेली है। बिलकुल अकेली। कमरे की खिडकियो पर इतनी लता छाई है, आँगन मे इतने पेड-पौधे उग आये है कि हवा का एक झोका या रोशनी की एक किरण भी कही से अन्दर नही घुस पाते। चैत-बैसाख मे तेज दक्षिणी हवा से नारियल के पेडो के ऊपरी हिस्से जब एक-दूसरे की जेठे भर लेते है, बाँसवन के बडे-बडे पके-पके बाँसो के अग्रभाग झर-झर कर गिरने लगते है, उस वक्त भी इस मकान के कमरो मे, दालानो मे, थोडी भी हवा का आभास नही मिलता। शाम को चार बजते ही इस मकान मे दिये जलाने की जरूरत पड जाती है। कमरो के हर कोने मे मच्छर भनभनाने लगते है। पर इस घुपाघुप अधकारमय भवन मे श्यामा ठाकुरानी अकेली घूमती रहती है। दिन तो पत्ते जमा करने मे या सूद का हिसाब लगाने मे किसी-न-किसी तरह निकल ही जाता है, पर रात काटना मुश्किल होता है। नीद तो आती नही उन्हे। तेल के खर्चे के डर से दिया भी जलाती नही ज्यादा देर। दिन मे तो खाते-पीते तीन बज ही जाते है, अत रात मे कुछ खाने की जरूरत नही महसूस होती। अगर कभी हुई भी तो अँधेरे मे ही उठकर, टटोल-टटालकर ही टिन के डिब्बे का ढक्कन खोलती है और थोडे-से चिउडे निकालकर अँधेरे मे ही उनमे तेल लगाती है · फिर काफी रात निकलने तक कुड-कुडाती खाती रहती है उन्हे। उस घने अँधेरे मे 'तारो की रोशनी भी तो नही आ पाती वहाँ—उस बोझिल असह्य अँधेरे मे प्रेतिनी की तरह जगी बैठी रहती है श्यामा ठाकुरानी।—तसल्ली देती है अपने को, जब आँखो से अच्छी तरह देख ही नही पाती तो उजेला हो या अँधेरा क्या आता-जाता है। बेचारी दिन मे भी तो साफ साफ नही देख पाती 'कोई पास आकर 'बामनी माँ' कहकर पुकारती है तो माथे की असख्य बलि-रेखाओ को इकट्ठी कर, प्राणपण से ताकने की कोशिश कर, मन ही मन कण्ठ स्वर को पहचानने की कोशिश करती है "कौन ? अँ ·· ·· महादेव की माँ। आओ आओ, सोई तो मैं कहूँ कौन आया है ?"

जो आती है शायद वह फौरन प्रतिवाद करती, "अरे बामनी माँ मै तो आपकी सीता बहू हूँ जी।"

"अरे सीता बहू है! मै समझी महादेव की माँ है।" अरी बहू, अब आँखे तो जवाब दे चली है, बिलकुल नही दीखता। यह जो तू सामने खडी है, बस धुँधली-सी दिखाई पडती है। पता ही नही चलता कुछ!" आखिर, बामनी माँ मजूर कर ही लेती है।

आगन्तुक कहता, "आँखो का धुध क्यो नही कटा डालती आप? आजकल तो सभी कटा लेते है।"

"अरी बहू, कितने दिन और जीना है भला, अब थोडे-से दिनो के लिए क्या कॉट-छॉट कराऊँ इस देह की? क्या होगा आँखो से देखकर? किताबे तो पढनी नही है अब? ऐसे भी तो काम चल ही रहा है।"

—फिर थोडी रुक कर कहती, "सिरफ ढेर-से रुपयो का खर्चा!"

"पर अस्पताल भी तो जा सकती हो। यहाँ के तो सभी अस्पताल मे ही आँखे ठीक करा आते है।"

"कौन ले जाएगा मुझे, कौन करेगा यह सब? मेरे कौन बैठा है, बोलो। ना, ना, सारी आशा छोड बैठी हूँ मैं तो। अब तो बस तुम लोगो के सामने ही आँखे बन्द कर लूँ, बस यही काफी है।"

आगन्तुक शायद एक चवन्नी मे कटोरी गिरवी रखकर चली जाती है। श्यामा फिर उसी घुपाघुप मे घूमती रहती अकेली ही। सूखे पत्ते बीनती। इधर का पेड उधर करती, उधर की थोडी मिट्टी सरका देती—इसी तरह बाग की देखभाल करती। फसल होनी भी तो क्या, कौन बेच आता बाजार जाकर? नाती बलाई था सो वह भी इस बार ससुराल मे ठहरा है। 'बेईमान, बेईमान। बेईमानो के झुण्ड है सब।' अपने मन-ही-मन बडबडाती है श्यामा, लोग ठीक ही तो कहते है, 'जो स्वामी से सुखी नही हुई उसे इस जन्म मे सुख नही मिल सकता। मुझे भला सुख! मुह मे आग, यम भूल गया है, बस इसीलिए। यह सब किस के लिए करती हूँ, इसका भी तो ठीक नही। सब तो मर-मराकर यम के दरवाजे चले गए।'

फिर भी वह करती ही जाती है। बाग मे पेड-पौधो की देख-भाल मे कभी नही आने देती। कैफियत-सी देती हुई अपने आप ही से कहती है, 'ये क्या कोई मेरे पराये है? कहते भी तो है गोद का बच्चा और घर का पेड बराबर होते है।'

## 2

आज आप श्यामसुन्दरी को जैसा देखते है उससे पहले की थोडी भी कल्पना करना कठिन है, पर यह सच है कि वह काफी सुन्दरी थी। साधारण सुन्दरी नही, असाधारण रूपसी। आज की यह कमान-सी देह कभी कदली-सी सीधी, पुष्ट एव कान्तिमयी थी। गज की जगह सिर पर तब काले घने बादलो-से बाल लहराते थे

जो कमर तक छाकर जघाएँ ढक लेते थे। इन मोतियाबिन्दवाली धुँधली आँखो मे कभी शोख बिजलियाँ खेलती थी। उनकी तीखी चितवन किसी भी पुरुष का हृदय वेध सकती थी। यद्यपि आँखो की पुतलियाँ काली नही पिगला थी पर इससे क्या, गौरवर्ण के साथ वे बहुत अच्छी लगती थी। पतले-पतले दबे होठ जब मुस्कराते, तब मुक्तावली-सी दन्तावली भी झिलमिला उठती, जिसका कि आभास आज भी मिलता है। अगर आपको उस सौन्दर्य का विश्वास न हो तो मेरे साथ कल्पना की उडान भर आज से उनहत्तर वर्ष पूर्व श्यामा के विवाह मण्डप में चले आइये, मैं दिखा दूँगा।

श्यामा की शादी ठीक दसवे वर्ष मे हो गई थी। ऐसी ही रीति थी उस जमाने मे। उसकी बडी बहन की शादी तो कुछ अधिक उम्र मे हुई थी—बारह साल की थी वह, इतने पर ही लोग टोकने लगे थे कि सयानी लड़की अभी तक अनब्याही बैठी है। श्यामा की दीदी साँवली थी अत कुलीन वर की तलाश मे बडी दिक्कत हुई। पर श्यामा ने अपना नाम झूठा साबित कर दिया। उसका गुलाबी रग दिनो-दिन उभरता गया और वह असाधारण सुन्दरी हो उठी। ब्याह तय करने वाले नाई ने बडे दावे के साथ यह रिश्ता ठीक किया 'अगर देखते ही आपको पसन्द न आ जाए तो मै कसम खाता हूँ, माँजी कि आज से यह धधा ही छोड दूँगा। परी-सी सुन्दरी—भला ऐसी लडकी पसन्द न आये, आप कहती क्या है?'

कहना न होगा कि नाई ने लडका भी क्या खूब ढूढा था। भकुआने लगी थी श्यामा की माँ। अठारह-उन्नीस वर्ष का किशोर, सुगठित शरीर उज्जवल श्याम वर्ण, बडी-बडी आँखो पर सान्द्र-सघन श्यामल पलक, मानो अपने आप काजल लगा हो। जैसी सेहत वैसी ही चेहरे की चमक, कुछ भी कहने की गुजाइश नहीं। इसके अलावा खिदिरपुर मे अपना मकान। लडके के बाप पुरोहिताई करते थे, थोडे बहुत चेले-चाँटे आज भी है। बडा भाई कही नौकरी करता है, छोटा भी कही न कही से कुछ न कुछ जुटा लेगा। भाषा भी थोडी-बहुत जानता है। घर मे रुपया-पैसा, माल-असबाव काफी मौजूद है। विधवा माँ है, भैया, भाभी और उनका एक लडका—बस यही तो एक छोटा-सा परिवार है। एक वाक्य मे लडका सभी तरह 'सुपात्र' है।

श्यामा की माँ ने सोचा, 'शुभस्य शीघ्रम्' खोज-खबर जो लेनी थी, ले ली, इससे अधिक उनके लिए असम्भव था चूँकि वह भी तो विधवा है। तीन लडकियो की माँ—कम उम्र में ही विधवा हो गई थी। जर-जमीन भी कोई खास नही मिली। घटना-चक्र मे पड़कर थोड़े-बहुत नक़द रुपये और गहने-पत्तर के साथ उन्हें कलकत्ता भाग आना पड़ा था। देश लौट जाने लायक भी मुँह नही रहा था। सगे-सम्बन्धी पूछते भी नही। उन पर कलक की कालिख पोतकर मजे करते है। यहाँ उनके एक बड़े भाई कुछ देख-भाल करते थे, वे भी तो अब दिवगत हो चुके

है। बडा दामाद इतना सज्जन है कि यथेष्ट आर्थिक सहायता भी कर देता है पर उसे भी तो और कुछ करने का वक्त नही मिलता—और यह सब काम तो वह कर भी नही पाता। दूसरे से भला और कितना कराया जाए ?

और पूछ-ताछ करने लायक हो भी तो कुछ। उनके पास धरा ही क्या है ? इसी नाई ने तो उनकी बडी लडकी की शादी तय की थी। अब इसका एतबार क्यो न करे भला, वह ?

उस दिन की चहल-पहल श्यामा को बुरी नही लगी। गहनो से लदी देह—बनारसी साडी पहन, पैजनियाँ झुन-झुनाकर ससुराल जाना। ऐसा सुन्दर पति, चूँकि सभी कहते है अन्यथा समझने-सोचने लायक उम्र ही श्यामा-सुन्दरी की नही थी तब। कुल मिलाकर उस पर एक नशा-सा छा गया था। रोशनी, गाना-बजाना, चहल-पहल, धूम-धाम, सास का सदय बर्ताव सभी कुछ उस वक्त उसके मन-मुताबिक था।

श्यामा को सबसे पहला कटु अनुभव हुआ सुहाग-रात को।

सब लोग वर-वधू को एक कमरे मे घुसाकर बाहर चले गए। श्यामा धडकते-काँपते दिल से प्रतीक्षा करने लगी। न जाने किसकी उम्मीद थी यह। सुहाग-रात को पति तरह-तरह से प्यार करता है, खूब मीठी-मीठी बाते करता है—यह सब उसने अस्पष्ट-सा सुन रखा था। शादीशुदा सखियो तथा दीदी की बातो से ऐसा ही पता चला था उसे। यद्यपि हूबहू वर्णन उसने कभी नही सुना था चूँकि उस ज़माने मे बडी बहने सन्तानादि होने से पहले छोटी बहनो के सामने इन सब बातो की चर्चा भी नही करती थी। वैसे एक षोडशी बहन दस वर्ष की बालिका को बता भी क्या सकती है ?

जो भी हो लज्जा की मात्रा आशा से किसी अश मे भी कम नही थी। सारी की लाज ने मानो उसे ढक लिया था। वह बैठे-बैठे ही पसीने से तर हो रही थी। पर नरेन बडा चालाक था, उसने सब के बाहर निकलते ही उछलकर दरवाज़ा बन्द कर लिया और अपनी जगह पर आ बैठा। मिनट-भर सोच-साचकर आखिर चुपके से बोला, "सुनती हो।"

श्यामा शायद इसी पुकार की बाट जोहती थी, पर उसे यह आवाज कुछ अच्छी नही लगी। इस तरह बुलाने पर भी भला कही जवाब दिया जाता है।

"सुनती हो या नही, यह क्या तमाशा है ?"

नरेन ने उसकी बाँह झटके से अपनी ओर खीच ली। श्यामा इसके लिए तैयार न थी। वह सीधी नरेन की देह पर जा गिरी। एक दबी-सी चीख भी निकल गई गले से।

"हूँ। जरा नखरे तो देखो। शर्म के क्या कहने है। देखे, सीधी होकर बैठो तो

जरा। मुखडा तो देखूँ। सभी सुन्दर-सुन्दर की रट लगा रहे है—मैंने तो अभी भरकर देखा भी नही है।"

शेड से आती धीमी रोशनी मे वह श्यामा का मुँह ऊपर उठाने की जितनी कोशिश करता, वह लाज-शर्म और सकोच से उतनी ही नीचे झुक जाती। सुडौल, गौर-वर्ण, चन्दन-चर्चित ललाट व लाल लाल गालो की एक झलक नरेन को दिखाई तो पडी पर जी भरकर देखने का मौका नही मिल सका। मिनट भर असफल प्रयत्न के बाद नरेन ने श्यामा के सिर पर एक धौल जमाकर कहा, 'यह क्या बदतमीजी है। एँ।...सीधी होकर बैठो, हाँ, कहे देता हूँ, नही तो मारे घूँसो के हड्डी-पसली तोड-कर रख दूँगा। मुझे ऐसा वैसा 'पति' मत समझना। कहे देता हूँ हाँ, मर्द का बच्चा हूँ। इस बात की चाहो तो आज ही गाँठ बाँध लो...मैं स्त्री का भड्वा बनने वाला बन्दी नही। सीधी रहो तो कोई बात नही। पर अगर कही तिकडमबाजी की तो—'अपने राम' बाप के बडे 'कुपुत्तर' है।"

पर उस जमाने के स्तर से भी श्यामा की माँ कही अधिक शिक्षिता थी। अच्छी-अच्छी साहित्यिक किताबे तब भी उसके बक्से मे धरी थी। श्यामा भी कुछ तो पढी ही थी, अत. ऐसी भाषा सुनने की आदी नही थी वह—भद्र समाज मे इस तरह बोलना निद्य और असभ्यता है—यही सुनती आयी थी आज तक। अत शारीरिक वेदना से कही अधिक अज्ञात आशका व निराशा से मर्माहत उसकी मृगशावक-सी कज-रारी आँखो मे सावन-भादो की झडी लग गई। दोनो आरक्त कपोलो पर एक-एक कर अश्रुबिन्दु टपकने लगे।

"हूँ, इतने मे ही इन नीरस आँखो मे पानी भी छलक आया! छुई-मुई है! ... देखो, यह सब चालाकी मुझसे नही चलेगी, कहे देता हूँ, हाँ। जो ठान लिया, करके रहूँगा। अभी पहचानती नही हो मुझे। अगर भला चाहो तो धीरे से मुँह ऊपर उठा लो।—हाँ-हाँ इसी तरह उजाले की ओर।"

श्यामा को लाचार हो मुँह उठाना ही पडा।

पर सिर्फ मुँह उठाने से भी कही छुटकारा मिलता है?

"मेरी ओर देखो। देखूँ, कैसी आँखे है?"

पर आँखे खोलना ही तो आफत है, विशेषकर इस परिस्थिति मे। लाख कोशिशे करने पर भी श्यामा आँखे नही खोल सकी।

"फिर वही चरित्तर, आँखे खोलना भी नही आता?"

बाजू मे चिकोटी काट ली नरेन ने। दस वर्ष की बालिका की गोरी मासूम चमडी पर एक नीला दाग उभर आया। आँखो मे और भी घने बादल उमडे पर आँखें किसी कदर भी खुली ही नही।

"धत्, बेअदब, बदतमीज कही की।"

उसे धक्का देकर पलग से नीचे उतार दिया नरेन ने और खुद कुछ ही देर मे

आराम से पाँव पसारे गहरी नीद के खर्राटे भरने लगा।

श्यामा उसी तरह सारी रात फर्श पर बैठी रही, स्तब्ध, गम्भीर। रोने मे भी मानो उसे डर लग रहा था।

दूसरे दिन उसकी सास श्यामा के रात्रि-जागरण से क्लान्त शरीर तथा लाल-लाल आँखो को देख सब कुछ भाँप गई। उसे गोदी मे बैठाकर बडे प्यार-से चुपके-से पूछा भी, "छोटी बहू, मेरा लडका जरा अल्हड और गँवार है। कल रात कही उसने डराया-धमकाया तो नही था।"

श्यामा बेचारी क्या कहती। चुप रही। इससे वह और भी शकित हो उठी। पीठ सहलाकर, पुचकारकर दोहराया, "कहो बेटी, इसमे शर्म की क्या बात है ? आखिर मैं भी तो तुम्हारी माँ ही हूँ।" कहते-कहते उन्होने श्यामा का माथा चूम लिया।

अब श्यामा अपने को रोक न सकी। उसके आँसू स्वाभाविक लाज-सकोच त्यागकर बाहर निकल ही पडे। एकाएक क्षमासुन्दरी की निगाह श्यामा की बाँह के नीले दाग पर जा पडी। वह चिल्ला उठी, "बहू !"

धीरे-धीरे श्यामा ने सभी बाते बता दी। लज्जा व घृणा से क्षमासुन्दरी का सिर नीचा हो गया। श्यामा के हाथो को प्यार से सहलाते हुए कहा, "बहू, वह ब्राह्मण के घर का 'गदहा' है। भद्र गृहस्थी मे थोडी लिखाई-पढाई करने से यही हाल होता है। फिर भी वह इतना नीच निकलेगा इसकी मुझे कल्पना न थी। अन्यथा तुम जैसी मुक्तामाला मैं उस बन्दर के गले मे कभी न पहनाती। खैर, बेटी, तुम बुरा न मानना।"

दरअसल इस घटना ने उन्हे गहरी चोट पहुँचाई थी। सारे दिन 'कहूँ न कहूँ' की उधेडबुन मे रहकर भी आखिर शाम को उन्होने बडे लडके के सामने यह बात उठा ही दी। देवेन भी कोई कम अक्खड नही था। उसका परिचय भी आगे चलकर श्यामा को भली-भाँति मिला था। उसने उसी दम अपने कमरे से निकल छोटे भाई के कमरे के सामने जा आवाज़ लगाई, "नरो !"

नरेन उस वक्त भी सोया पडा था। अचम्भे और नाराज़ी के साथ वह बाहर निकल आया।

"क्या है ?"

"क्या है ! हरामजादा, हर वक्त वही गँवारपन।"

"देखो दादा—फजूल गालियाँ मत दो, कहे देता हूँ, हाँ। क्या बात है ?"

"छोटी बहू को तुमने क्यो मारा ?"

"मारा ? कौन कहता है ?"

"कहेगा कौन ? उसकी बाँह पर वह नीला दाग जो अभी तक मौजूद है।"

"अच्छा किया, मारा तो !" मुँह बिचकाकर नरेन ने जवाब दिया, "अपनी

स्त्री को मैने मारा भी तो क्या हुआ ? तुम्हारी औरत को तो नही मारने गया।"

देवेन ने नरेन के गाल पर कसकर एक तमाचा जडकर कहा "ऊपर से मुझी से ऊलजलूल बकता है, हरामजादा, सूअर कही का ! मुझी से बहस करता है।"

तमाचे की जलन सहने मे नरेन को जरा देर लगी। देवेन के पतले हाथ का तमाचा था न। पाँचो अँगुलियाँ नरेन के गाल पर उभर आई।

अब तो नरेन एकबारगी बिगड खडा हुआ। आँखे छलछला आई, पर गाल सहलाते हुए मुँह बिचकाकर बोला, "क्यो नही करूँगा, बताओ ? तुम मुझे पालते हो ? तुम्हारा खाता हूँ, या कि तुम्हारे बाप का ?"

"फिर, फिर साले—फिर भी मुँह से गन्दी बाते निकालता है। मेरे बाप का नही खाता तो किसके बाप का खाता है ? तेरे-मेरे बाप दो है—गोबर-गनेश कही का !"

"तुम मुझे मारने वाले कौन होते हो ? मुझे गाली देने वाले तुम कौन होते हो ? मेरी जो इच्छा होगी, मै करूँगा।" नरेन क्रोध से फुफकारता और प्रत्येक वाक्य की समाप्ति पर देवेन के सामने पैर पटकता हुआ बोला।

"दिखाऊँ ? दिखाऊँ फिर, एक बार ?" देवेन आगे बढ गया। शुरू हो गई हाथी-कछुए जैसी लडाई। देवेन एक हाथ से उसकी धोती पकड दूसरे से पीठ पर धमाधम मुक्केबाजी करने लगा और उधर नरेन ने देवेन का जो हाथ सामने पाया, दाँतो से धर दबाया। दाँतो की पकड इतनी गहरी थी कि खून निकल आया।

देवेन की स्त्री ने जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया। श्यामा पहले तो यह घटना देखकर स्तब्ध हो गई पर देवेन की स्त्री को रोते देख, वह भी जोर-शोर से रोने लगी। उधर क्षमासुन्दरी भी उनके सामने ही सर पटक-पटककर रोने लगी—"अरे, तुम्हारे कारण मै सिर पटककर मर जाऊँ क्या ? कोई है, जो मुझे अफीम ही लादे खाकर सो जाऊँ अब और नही सहा जाता मुझसे।"

विवाह मे आये सभी अतिथि विदा नही हुए थे। उनमे से ही दो-चार ने दौडकर बडी मुश्किल से दोनो भाइयो को अलग किया। नरेन को कमरे मे बद कर बाहर से साँकल लगादी। पिजडे मे बद भेडिये की तरह वह उछल-कूद मचाने लगा और बुरी-बुरी गालियाँ देता रहा। देवेन भी हाथ के घाव को फिटकरी के पानी से धोकर पट्टी बाँधते हुए गालियाँ देता रहा। गालियो की बौछार मे दोनो के माँ-बाप भी अछूते नही रहे।

उस सध्या के बाद मुँह लटकाये आनाकानी करते श्यामा ने लाज-शरम छोड कर आखिर कह ही दिया, "माँ, आज मैं आपके पास ही सोऊँगी।"

क्षमा का चेहरा पलक भर स्याह रहा, पर दूसरे ही क्षण श्यामा की पीठ थाप-थपाकर बोली वे, "हाँ, छोटी बहू। अब और उस बन्दर के पास जाने की जरूरत नही।"

पर उस इन्तजाम की खबर नरेन को न थी। सोये-सोये थोडी देर प्रतीक्षा कर जब उसने आहट लेकर देखा कि सारे मकान मे नीरवता छा गई है, यानी सभी सो गए है, तब वह स्थिर न रह सका। माँ के कमरे के सामने खडे होकर साँकले खटखटायी, पूछा, "माँ, बहू कहाँ है ?"

श्यामा का हृदय धडक उठा। उसने माँ को और जकड लिया। कुछ देर ठहर कर क्षमा ने कहा, "बहू यही सोई है, तू अपने कमरे मे सो जा जाकर।"

"जरा जगा दो न ? सो गई है तो क्या हो गया ? नवाबजादी है क्या ?"

"आज नही, उसकी तबियत भी खराब है।"

"वाह वा, बहू यदि तुम्हारे ही पास रहेगी, तो मेरी शादी ही क्यो की थी ?"

"चुल्लूभर पानी मे डूब मर। यहाँ खडे-खडे इस तरह बहस करने मे शर्म नही आती ? जा सो जा, एक रात बहू मेरे पास ही सो गई तो क्या महाभारत अशुद्ध हो जाएगा ?"

उधर देवेन ने अपनी खिड़की से झाँककर कहा, "फिर यदि किसी के गले की आवाज़ आई तो समझ लेना काट डालूँगा।"

वह कमरे से बाहर आ जाता, यदि राधारानी लिपटकर उसे न रोकती।

पर न जाने क्यो नरेन ने भी फिर कोई गडबडी नही की, उसे बस इस व्यवस्था पर ऐतराज भर जाहिर करना था। अपना गुस्सा दिखाकर वह जोरो से पैर पटकता अपने कमरे मे चला आया और धडाम से कमरे का दरवाजा बद करके सो गया।

## 3

शादी के आठ दिन बाद जब श्यामा एक वर्ष के लिए मायके चली आई तब अपने किशोर पति के लिए उसका मासूम, किशोरी-हृदय एक प्रकार-से बेचैन-सा रहने लगा। यद्यपि उन कुछ दिनो मे उसे अपने पति का जो परिचय मिला था वह न तो विशेष आशाप्रद ही था और न आनन्ददायक ही। पर एक अज्ञात आकर्षण उसे हमेशा अनमना किये रहा। और अवसर मिलते ही वह खिडकी के सम्मुख बैठ नरेन के बारे मे सोचा करती। मायके आते वक्त नरेन ने कहा था, "वहाँ जाकर खत लिखना।"

"छि कही ऐसा भी होता है ? खत कैसे लिखूँगी ?"

"क्यो ? तुम तो लिखना जानती हो और मुझे भी पढना आता ही है। सुनता हूँ आजकल तो सभी मर्द-औरत मुहब्बत-भरे खत लिखते है।"

सिर हिलाकर श्यामा ने जवाब दिया "नही, 'नही, मुझसे नही होगा यह। कही जेठजी या जिठानीजी के हाथ पड जाए तो ! ···माँ तक पहुँच गया तो

भी बडी शर्म की बात होगी। फिर तुम जवाब भेजो और माँ देख ले, तो ? छी ! छी !"

नरेन खाट पर बैठ पाँव हिलाता हुआ दाँतो से नाखून कुतर रहा था, अच्छी तरह जवाब न दे पाया। श्यामा ने केवल इतना पूछा, "फिर ? नजदीक मे ही तो हूँ। एक बार रोज हो आना।"

"हूँ, तुम्हारी माँ यदि नही बुलाये तो भी ?"

उस जमाने मे बिना बुलाये ससुराल जाना कल्पनातीत था।

"फिर तुम्हारी माँ कहा ? कह दिया न तुम्हारी भी माँ होती है, केवल माँ ही कहा करो न।"

"धत्, शर्म लगती है।" नरेन ने जवाब दिया। बाते वहीं रुक गई पर श्यामा नही भूली। बहन उमा द्वारा माँ तक यही बात पहुँचा दी। माँ कोई अबूझ तो थी नही। वे दामाद को अक्सर घर बुलाने लगी।

फलत दामाद का स्वभाव भी उनसे छिपा न रहा। बल्कि सारा मकान काँप या गूँज उठता था। आखिर एक दिन सुबह श्यामा जब अपने गालो पर अँगुलियो के उभडे निशान लिये कमरे से बाहर आई तो रासमणि अपना सयम खो बैठी। वैसे भी वह जरा कडी औरत थी।

उसी वक्त कमरे मे घुसकर दरवाजे की ओर सकेत करते हुए दामाद से बोली "निकलो, अभी निकलो, अभी निकलो। फिर कभी इस दरवाजे पर कदम न रखना। लडकी को भी मैं अब वहाँ नही भेजूँगी। समझूँगी मेरी लडकी विधवा है। निकलो यहाँ से, मै कहती हूँ।" उनकी रणचण्डी-सी मूर्ति देखकर दामाद नरेन डर गया। उसने गिडगिडाकर कहा, "सच कहता हूँ, माँ, कसम आपकी, जरा ताव मे आकर—माने आपकी लडकी भी जरा वैसी ही है। पैरो पडता हूँ फिर कभी···"

नरेन को झुककर पाँवो की ओर हाथ बढाते देख रासमणि दो कदम पीछे हट गई। फिर कठोर स्वर मे कहा, "मै कहती हूँ तुम अभी निकल जाओ। मै और कुछ भी नही सुनना चाहती। बस निकलो इसी वक्त··· "

अगत्या नरेन को उस दिन कमरे से ही क्या घर से ही बाहर निकल आना पडा था।

× × ×

पर इस घटना से श्यामा अत्यन्त मर्माहत हो उठी। विशेषकर तब जबकि यह बात किसी से भी छुपी न रही। एक ओर पडौसियो मे टीका-टिप्पणी होने लगी तो दूसरी ओर हमदर्दो की भी कमी नही रही। पति दरअसल क्या चीज है, या अपने भावी दाम्पत्य-जीवन के बारे मे कोई बहुत स्पष्ट धारणा न होने पर भी श्यामा को यह समझते देर न लगी कि उसका सर्वनाश होने जा रहा है। उसने

रोना-पीटना शुरू कर दिया और इस दु ख के लिए इशारो से माँ को ही दोषी ठहराने लगी।

रासमणि पाँच-छ महीनो मे ही ऊब गई। आखिर खुद ही दामाद को न्योता दूँ या न दूँ इसी उधेडबुन मे थी कि इसी बीच 'श्रीमान्' स्वय हाजिर हो गए। मुँह रूखा-सूखा, धूल-भरे घुटने, एक बडा-सा काशीफल लेकर स्वय नरेन ही आ धमका। सास को देखते ही उसे नीचे रख, साष्टाग प्रणाम कर काँपती आवाज़ मे बोला, "इसी ओर आया था, कुछ काम था, माँ ने कहा, जब जा ही रहा है तो समधिन के लिए एक काशीफल भी लेता जा। शायद आपको यकीन न हो पर यह हमारे ही बगीचे का है।"

मुश्किल से हँसी रोककर कहा रासमणि ने, "अच्छा, अच्छा। समझ गई, तुम्हे और ज्यादा झूठ बोलने की जरूरत नही। अब चलकर पहले हाथ-मुँह धो लो और कुछ खा पी लो।"

डूबते को तिनके का सहारा मिला। नरेन जल-पान कर रसोई घर की देहरी पर बैठा सास से गप्पे लडाने लगा। दुनिया भर की बाते। पर उसकी फिजूल बकवास से रासमणि उकता रही थी। दो-एक बार धमकाने की कोशिश भी की पर उस धमकी से डरनेवाला बदा नरेन नही था।

लेकिन रासमणि भी बात वापस लेनेवाली 'महिला' नही थी। दूसरे दिन सुबह होते ही दामाद से कहा, "आज का दिन अच्छा है, श्यामा को लेकर तुम घर लौट जाओ।"

नरेन समझ न पाया। कहा उसने "पर अभी तो एक वर्ष भी नही हुआ है और फिर गौने मे क्या देने-दिवाने के झगडे रहते है न?"

"उन्हे रहने दो।" नीरस कण्ठ से कहा रासमणि ने, "लडकी यहाँ रह सकती है—पर तुम्हारा आना नही हो सकता। अत जो उचित समझो करो। लेकिन लडकी भी ऊब गई है। वह जाना चाहती है इसलिए चाहो तो ले जा सकते हो। मै किराये की गाडी बुलवाये देती हूँ और किराया भी दिये देती हूँ। घर बसाने लायक जो भी वस्तुएँ जरूरी होती है, वे भी दिये देती हूँ। सुना है पति यदि साथ ले जाए तो दोष नही लगता। आज ही ले आओ।"

लाख कोशिशे की गई पर रासमणि नही मानी। श्यामा रोते-रोते ससुराल चली आई। रासमणि ने सारा इन्तजाम किया और सारी चीज-बस्त देकर श्यामा और नरेन को विदा कर रोने बैठ गई। किन्तु इससे पहले किसी ने भी उनके माथे पर एक शिकन भी नही देखी थी।

अन्त मे वह अपनी प्रतिज्ञा भी नही रख सकी। क्षमासुन्दरी स्वय आकर अपनी और लडके की ओर से हाथ-पैर जोडकर क्षमा-याचना कर गई, कहा, "बहन, यह हिन्दू घर की शादी है, सिन्दूर का दाग तो मिटने वाला नही। इसलिए

क्या अपने पेट की लडकी को भी त्याग दोगी ? मेरी ओर देख, उसे क्षमा कर दो।"

तब तक रासमणि के दिमाग का पारा भी कुछ हद तक उतर आया था। अतः लडकी-दामाद को फिर से बुला लिया। आना-जाना फिर यथावत् होने लगा।

दिन बीतने लगे।

पर दिन, महीने और वर्षों ने धीरे-धीरे बालिका श्यामा की देह पर केवल किशोर का लावण्य ही ला दिया, भाग्य मे परिवर्तन नही। उम्र बढने के साथ ही साथ पति-पत्नी की एक-दूसरे के प्रति तीव्र आसक्ति बढती गई, यह सच है, लेकिन उससे श्यामा की लानतमलामत या जब-तब मार पडने की मात्रा मे जरा भी कमी नही हुई। वह मानो नरेन की अपनी सम्पत्ति थी, और मनचाहा अत्याचार करने के लिए ही भगवान् ने उसे यह सम्पत्ति दी थी। देवेन स्वय बदमिजाज और गुस्सैल होने पर भी छोटे भाई की इतनी नालायकी बर्दाश्त नही कर पाता तो कभी-कभी वह उसे धमकाने की कोशिश भी करता। पर इससे अक्सर झगडा-फिसाद बढ ही जाता। आपस मे गाली-गलौज के बाद अन्त मे हाथा-पाई की नौबत आ जाती। दोनो भाई, विवेक-शून्य हो, माँ-बाप को गालियाँ देते। श्यामा व राधारानी दोनो कान बद कर भाग खडी होती। और क्षमासुन्दरी कमरे मे प्रवेश कर सिर पटकने लगती।

इसके बाद ही नरेन अपने कमरे मे लौटकर फिर एक बार अपनी सुन्दरी पत्नी श्यामा से जूझ पडता, "बोल, बोल साली! उसके सिर मे इतना दर्द क्यो होता है? मैं तुझे मारता हूँ इसमे उसे क्यो ठेस पहुँचती है? बता जल्दी।" और उसके साथ ही साथ धमाधम थप्पड-मुक्के और लाते भी चलती।

ऐसे मौको पर मार के बजाय उसके व्यग मे जो बेहूदापन जाहिर होता उससे श्यामा लज्जा व सकोच से मर्माहत हो उठती

ये सारी बाते रासमणि के कानो तक भी पहुँचती। वह कभी किसी बात मे अधीरता जाहिर नही करती—सच तो यह था कि वह घरेलू बाते दूसरो को बताने की आदी नही थी। केवल उपासना के वक्त अकेले मे सारी मनोवेदना इष्टदेव के चरणो मे समर्पित कर देती। उस समय ऐसा मालूम होता कि मानो उनका हृदय टुकडे-टुकडे हो रहा है। पर कर ही क्या सकती थी? निरुपाय थी। दामाद को यदि घर आने से रोके तो लडकी का थोडा-बहुत समाचार मिलना भी बन्द हो जाता।

किसी-किसी दिन नरेन खुद ही समाचार ले आता। उनकी लडकी की बेअदबी तथा बदतमीजी का सविस्तार वर्णन कर उसे सही रास्ते पर लाने की दवाई तथा उस दवाई का असर कहाँ तक पडा है, ये सारी बातें वह खुद ही कह जाता।

एक दिन दोपहर को वह हाथ पर गीली पट्टी बाँधे आ धमका। हाथ काफी फूल उठा था। चौखट पर पैर रखते ही बिना भूमिका बाँधे कहा उसने, "माँ चना-चबेना जो भी कुछ हो, दो। देखता हूँ आज तो घर भी नही जा सकूँगा।"

रासमणि उस समय खुद भोजन करने जा रही थी, वही परोसी थाली उसके सामने धर दी लाकर।

"ऊँ-हूँ मै खुद हाथ से नही खा सकूँगा। मुझे खिलाना पडेगा। यह हाथ की हालत नही देख रही है आप।"

"हाथ मे क्या हो गया?"

"होगा और क्या? आपकी कन्या को (नरेन अच्छी भाषा बोलने का आदी नही था) ठीक करने जा ही रहा था कि यह हाल हुआ—देखती नही आप, कैसा फूलकर ढोल हो गया है? कभी एक जगह खडी होकर मार खायेगी ही नही—, ऐसी बदतमीज है।

इसके बाद थाली की ओर देख—"अरे यह क्या? सारी चीजे निरामिष दीखती है कुछ भी नही है? नही तो दीजिये न जरा प्याज ही छीलकर—भुने बैंगनो के साथ मज़ा आयेगा।"

मारने वाले का यदि यह हाल हुआ है तो मार खानेवाली का क्या होगा, कल्पना करते रासमणि को रुलाई आ गई। पर इस जानवर के सामने रोने मे भी उन्हे शर्म लगती थी। किसी प्रकार आँसुओ को रोक अन्दर से एक चम्मच थाली मे पटक कर बोली—"बाएँ हाथ से खा लो, इस वक्त मै तुम्हे नही खिला सकती।"

"—खैर, रहने दीजिये, पर प्याज? दीजिये न, न हो तो मैं ही छील लूँगा। आप क्यो फिजूल हाथ गन्दा करेगी।"

"नही, नही—उमा दे रही है।"

एक अस्फुट स्वर से 'उफ्' उच्चारण कर वह कमरे से बाहर हो गईं।

## द्वितीय परिच्छेद

### 1

कुछ दिन बाद खबर लगी कि नरेन का घर सरकार खरीद रही है। खिदिरपुर डॉक्स मे पडता है। केवल वही नही, उस अचल के कई मकान सरकार मुआवजा देकर जबर्दस्ती ले रही है।

हालाँकि यह खबर बहुत दिन पहले ही लग चुकी थी। पर इसका कोई इन्तजाम न तो बडे भाई ने किया और न छोटे भाई ने ही। जब दखली के सिर्फ सात-आठ दिन रह गये तब उन्हे होश हुआ। कहाँ जाएँ, यह भी एक समस्या थी। सारा माल-असबाब, बर्तन-भाँडे, खाट-खटोले, बक्से आदि—गुरु दक्षिणा मे प्राप्त अनेक वस्तुएँ परोहिताई-पडिताई की वश-परम्परा से जमा हो रही थी। क्षमा रासमणि

से मिलने आई · "बहन, यदि तुम कुछ रख लेती।" रासमणि मितभाषिणी थी। बात पूरी होने के पहले ही कहा, "यह सम्भव नही, दीदी। एक तो मै वैसे ही भाडे के मकान मे रहती हूँ—फिर जगह की भी बहुत कमी है। उस पर समधी की वस्तुएँ मै नही रख सकती। भविष्य मे तरह-तरह की बाते उठ सकती है। मुझे माफ करो, दीदी।"

अगत्या क्षमा को लौटते वक्त रासमणि ने सलाह दी, "दीदी एक बात कहूँ, बुरा न मानो तो। आपके दोनो लडके बहके हुए है—उनसे शायद आपको काफी तकलीफ उठानी पडे। आखिर इतनी वस्तुएँ रखकर आप क्या करेगी? कितनी ही बडी गृहस्थी क्यो न हो, इतनी वस्तुएँ हर्गिज नही लग सकती। एक काम करिए। इनमे से कुछ अपने रहते-रहते बेच डालिये और जो रुपये-पैसे मिले, किसी अच्छे विश्वासी व्यक्ति के पास रख दे। जरूरत होने पर वही काम आएँगे।"

क्षमा को उनकी यह सलाह पसन्द नही आई। बहुत-से सदुपदेश कितनो ही को अच्छे नही लगते।

आखिर यही तय हुआ कि कुछ मालमत्ता एक बडे सन्दूक मे रख बहू-बाजार के एक शिष्य के घर मे रख दिया जाए और बाकी दो नावो पर लादकर गुप्तीपाडा चले जाएँ। वहाँ उनके किसी यजमान का एक बडा-सा मकान खाली पडा है अत रहने की तो कोई तकलीफ होगी नही। सिर्फ दोनो लडके कलकत्ता मे बने रहेगे—भाडे के मकान मे। मुआवजे के सरकारी रुपये मिलते ही दूसरी जमीन खरीदकर अपना मकान बनाना शुरू कर देगे। फिर वे सब भी सीधे नये मकान मे ही लौट आएँगी। क्षमा-सुन्दरी जाने के पहले बार-बार दोनो लडको को समझा-बुझाकर गई, "देखना बेटा हम लोगो को उस जगल मे भेजकर तुम लोग कही निश्चिन्त न हो जाना। इसके अलावे नकद रुपये अधिक दिन नही रहते। खर्च हो गए तो मकान नही बन पायेगा। और देखो दोनो भाई मिल-जुल कर रहना। समझे न।"

नरेन ही उन्हे पहुँचाने गया था। लौटते वक्त उसे फिर समझा दिया, "बडे भाई का कहना मानना, जब तब झगडा-फिसाद मत कर बैठना। समझे? और जितनी जल्दी हो सके हम लोगो को यहाँ से ले जाना। इस निर्जन स्थान मे हम तीनो स्त्रियाँ कब तक रहेगी भला।"

"हाँ माँ, भला यह कहने की बात है। देख लेना—तीन ही महीने बाद तुम लोगो को ले जाऊँगा।" सगर्व आश्वासन दिया नरेन ने।

इसके बाद का इतिहास अत्यन्त स्पष्ट है। मकान के रुपये कुछ ही महीनो मे मिल गए, क्षमा यह जानती थी। पहले दोनो भाई नियमित रूप से आते भी थे पर रुपये मिलते ही उनके दर्शन दुर्लभ हो उठे। रुपये मिलने के दस-पन्द्रह दिन बाद सहसा नरेन एक दिन सज-धजकर आया—कीमती रेशमी कुर्ता, जेब मे सोने की घडी, पप शू।

"मकान के रुपये-पैसे उडा तो नही रहे हो? इतनी सज-धज किसलिए? आखिर यह सब आया कहाँ से?" पूछा सभी ने।

नरेन ने विरक्त होकर कहा, "बस तुम लोगो पर तो सिर्फ वही एक बात है। मै क्या रोजगार नही कर सकता?"

"हूँ। तुम करोगे रोजगार? गोबर-गनेश कही के।" क्षमा ने कहा।

"क्या कहूँ, अबोध औरत हो और माँ हो, नही तो अगर यह बात किसी दूसरे ने कही होती तो एक तमाचे से मुँह सीधा कर देता।"

अपमान के डर से क्षमा चुप हो गई। पर श्यामा कब छोडने वाली थी। रात ही को पूछा उसने--"अच्छा, माँ को तो खूब धमका दिया पर असली बात नही बताई, रुपये कहाँ से आये?"

"तू चुप रह। तू क्या समझेगी?"

"आखिर सुनूँ भी तो। समझूँ या न समझूँ, कम-से-कम सुनकर ही जीवन सार्थक कर लूँगी।"

कुछ देर मौन रहकर नरेन ने कहा, "फाटका खेलकर जीता हूँ।"

"खेल मे भी भला कोई रुपये जीतता है? इसी को शायद जुआ कहते है?" जरा सहमी आवाज मे पूछा श्यामा ने।

"हर बात मे टाँग अडाती हो, छोटी बहू। कहता हूँ, न चुप रहो।"

इसके बाद भी चुप न रहने पर जो दशा होगी उसका अनुभव श्यामा को काफी था। वह चुप हो गई।

नरेन दूसरे ही दिन कलकत्ता लौट गया। अनुरोध करने पर भी वहाँ रहने को राजी नही हुआ। बोला, "दिन-रात जमीन तलाश करनी पड रही है। दादा को क्या है, न जमीन ही की खोज करनी है, न और ही कुछ देख-भाल। जो कुछ करना है सो बस मुझ अकेले को ही करना पड रहा है।"

इस पर क्षमा ने सहमी आवाज से पूछा—"अच्छा, कलकत्ता मे इतनी ज़मीन पडी है, फिर भी खोजना किस बात का?"

"आखिर स्त्री-बुद्धि और कहते किसे है। ज़मीन खरीद लेने से ही सब कुछ हो जाता है क्या? मोहल्ला भी तो अच्छा होना चाहिए, कीमत भी सस्ती हो, निर्दोष, निर्झंझट सब कुछ देख-भाल कर ही तो खरीदूँगा या ऐसी-वैसी जमीन खरीद लूँ और जब सारे रुपए खर्च हो जाएँ तो फिर हजारो अडगे निकले। ऐसा कच्चा काम अपन नही करते।"

इसके बाद महीनेभर किसी का कोई समाचार नही मिला। क्षमा उद्विग्न हो उठी। घर-खर्च के लिए उसके पास था ही कितना? सारा का सारा खर्च हो गया। पर इससे भी बडी दिक्कत और थी—सौदा-सुल्फ कौन लाये? दो अल्पवयसी बहुओ के साथ एक अकेली वृद्धा, बडे बगीचे मे अकेला मकान, पुकारने पर भी

सहसा किसी को सुनाई पडने की सम्भावना नही। एक लडकी बाहर का कुछ काम कर देती, पर उससे तो बाजार का काम नही चलता। हॉ, अगर वह कभी-कभार दूसरे किसी को मेहरबानी कर वही बुला देती और वह कुछ चीजे बाजार से ला देता तो ठीक अन्यथा नही। इसी बीच दो-तीन दिन मे ही चार-पॉच उपवास हो गए थे। बगीचे मे वैसे बडे-बड़े कोहडे फलते थे, उन्ही पर कुछ दिन कटे। फल-फूल, शाक-सब्जी भी पर्याप्त थे, पर भात बिना इन सबके खाने से ही कही तृप्ति होती है भला!

और इसी तरह पूरा एक महीना बीतने पर श्यामा के द्वारा लिखा एक खत भी भेजा गया। राधारानी ने भी अपनी जबानी देवेन के नाम एक खत लिखवाया।

कुछ दिनो बाद देवेन का जवाब आया, मॉ के नाम। कुशल आदि के बाद लिखा—

—'आगे कहना यह है कि, सरकार बहादुर से रुपए मिलते ही श्रीमान् नरेन जी ने अपना आधा हिस्सा लेकर अपने पास रख लिया। मै कदाचित उसके पैसे खर्च कर डालूँ या देने से इन्कार करूँ, उसको यही डर था। पर इसके बाद तो श्रीमान् के दर्शन ही दुर्लभ हो उठे। कहॉ रहता है? क्या करता है? कोई खबर नही। यहॉ कदाचित आता भी है तो तूफान-सा और वैसे ही चला जाता है। पूछने पर कहता है, 'जमीन की तलाश मे दिन-रात एक कर रहा हूॅ।' पर वह जमीन कहॉ है उसका विशद विवरण पूछने पर ठीक जवाब नही मिलता। इधर मैंने कई मकान व जमीने देखी है पर उन्हे आज तक श्रीमान् को नही दिखा सका हूँ। फिर उसकी सम्मति बिना उन्हे खरीदना मेरे लिए सम्भव भी नही। अकेले मेरे हिस्से के रुपये तो इन्हे खरीदने के लिए यथेष्ठ नही है। मैं क्या करूँ, कुछ सूझ नही रहा है। मैं जहाँ नौकरी करता था, उनके यहॉ घाटा हो जाने से मुझे जवाब मिल गया है। मैं नौकरी तलाश करूँ या मकान—या कि श्रीमान को ढूँढता फिरूँ, कुछ समझ मे नही आता। अब आप ही सेवक को आज्ञा लिखे। प्रणामान्ते—निवेदनम्। इति—'

खत सुनकर क्षमा को तो जैसे काठ मार गया। काफी देर गुम-सुम बैठे रहने के बाद सिर्फ पूछा, "छोटी बहू! नरेन ने घड़ी, अगूठी, कुर्ता वगैरह कहॉ से और कैसे बनवाये थे, इस बारे मे तुमसे कुछ कहा था? मुझे तो उसने कुछ बताया नही था।"

श्यामा की उठी नजरे पल भर मे झुक गई, कहा उसने कॉंपती आवाज मे—"कह रहे थे जुए मे जीता हूँ—पर माँ, मुझे विश्वास नही होता।"

क्षमा के विदीर्ण हृदय से एक दीर्घश्वास निकला। वह कोई उत्तर नही दे सकी।

इसके बाद के और भी दो दिन उन बेचारो के एक गहरी दुश्चिन्ता मे कट गये। देवेन को क्या लिखा जाए, क्षमा को नही सूझ रहा था। पर तीसरे ही दिन

नरेन का खत आया। टेढे-मेडे अक्षरो की भद्दी लिखावट। हिज्जे की अनगिनती गल्तियाँ। नमूना यह है · "भैया को बहुत-सा जमीन तलाश कर दिया मैने पर हैरान हूँ कि क्यो एक भी पसन्द नही हुई। ना ही कुछ ठीक करता है, नाही करने देता है। अब हम क्या करे ? आप ही बताओ। इन्ही झझटो मे सारे-पैसे पानी-से बह गए उनके हाथो से। हमे तो शर्म आती है लिखने मे। ऐसा मालूम होता है कि भैया किसी महरारू के चक्कर मे पडा है। रातभर गायब रहता है।' इत्यादि इत्यादि।

× × ×

श्यामा की पढाई खतम होते ही राधारानी धाडे मारकर रो पडी। क्षमा ने बहुत कोशिश की, उसे तसल्ली देने की। श्यामा ने भी जोर लगाकर कहा—"तुम तो फिजूल माथा फोड रही हो जीजी, ये सब झूठ है—इस खत की एक भी बात सच नही है। तुम समझती क्यो नही ?" फिर भी बहुत देर तक राधारानी आँसू बहाती रही। उसे अपने पति पर बहुत कम भरोसा था।

क्षमासुन्दरी रातभर इसी बात को सोचती रही। सुबह होते ही श्यामा से बोली—"छोटी बहू। मेरी तरफ से, तुम उन दोनो बन्दरोको खबर भेजो कि वे फौरन घर चले आएँ। लिख दो कि मै बहुत बीमार हूँ, बचने की आशा नही है। एक बार आ जाएँ तो जबरन उन्हे यही पकडकर रखेंगे। बहुत हुआ जो कुछ रुपए गए जाने दो। अब कलकत्ता मे मकान नही बनेगा। यही पर धान की खेती वगैरह कर ले तो बहुत है। यही एक झोपडी बनवा लेगे अपनी। वरना आखिर तक तो कुछ भी न रहेगा।"

श्यामा पहले तो थोडी-सी हिचकिचाई। फिर चिट्ठी लिखी। सकोच का कारण यह था कि उन दिनो जेठ को खत लिखना एक गुनाह माना जाता था। पडौस के जुलाहे के लडके को बुलाकर उसके हाथो चिट्ठी डाल दी गई। अब उस निर्जन विशाल मकान के अन्दर तीनो औरतो के दिन बीतने लगे—निराशा और सशय से विचलित तीन मन। उन्हे इतजार था—या तो किसी आदमी का या किसी खबर का। पर हर रोज सुबह की रोशनी लम्बी काली रातो की गोद मे ढलती गई। न कोई आदमी ही आया न कोई उत्तर।

इसी तरह जब एक महीना बीत गया तब क्षमा ने मुहल्ले के एक आदमी को कलकत्ता भेजा। उस आदमी ने वापस आकर कहा, "उस डेरे पर तो कोई नही रहता। उनका हाल का पता भी किसी को मालूम नही।"

## 2

इन तीन औरतो के दिन कैसे गुजरे इसका अन्दाज़ तो आप आसानी से लगा सकते है। क्षमा अपनी इज्ज़त का बहुत ज्यादा ख्याल रखती थी। उनके पडौस मे

ब्राह्मणो की संख्या ही ज्यादा थी। शुरू से ही क्षमा उन लोगो से अलग-अलग रहने लगी थी। न कोई लेना न कोई देना। वे भी इस दूरी को ब्राह्मण-कुल की मर्यादा मानकर चुप थे।

किन्तु इस व्यवधान को लेकर जिन्दा रहना अब असभव हो गया। हालत ऐसी हुई कि एक बार तो लगातार तीन दिन तक उन्हे सिर्फ उबले कद्दू खाकर ही रहना पडा। वह भी उन्हे मजूर था, पर राधारानी के दुध-मुँहे बच्चे को कैसे जिन्दा रखें—यही समस्या थी। आखिर पडौसियो के दरवाजे भटकना ही पडा। क्षमा का गर्व था कि ब्राह्मण-कायस्थो के सिवाय और किसी भी जाति से उन्होने कभी दान नही लिया। पर अब वह भी बात नही रह पाई। चावल माँगने के लिए दूसरो के पास भी उन्हे जाना ही पडा। पहले तो काफी कोशिश की जहाँ तक हो सके बरतन वगैरह बेचकर गुजारा करने की। लेकिन ब्राह्मण घर के बरतनो के खरीदार भी नही मिले। पडौस मे किसी के घर धान-चावल की कमी नही थी, प्राय सभी सम्पन्न थे। इनको कुछ सामान भेट के रूप से भेजने मे उन्हे कोई भी तकलीफ नही हुई। रही उस बच्चे की बात। तो वह भी हल हो गई, एक घर से उसके लिए रोज एक लुटिया दूध का भी बदोबस्त हो गया। इस तरह, हालाँकि कुछ समय के लिए, वे भूखो मरने से बच गए, पर सारी समस्याएँ हल नही हुई। जो लोग चाजे भेट मे देते है वे 'हिसाब के पक्के' हो, ऐसी बात नही। अक्सर उनके लेन-देन मे 'गलतियाँ' रहा करती है। और दान के लिए कोई तकाजा भी तो किया नही जा सकता। नतीजा यह हुआ कि जब भी यह भडार खाली पडा रहता तभी बच्चे के लिए कुछ बचाकर वे तीनो सास-दुलहने मिल-जुलकर फाका करती। ताड के मौसम मे वे पक्के ताड खाकर ही भूख मिटाती। कभी सेजने के डठल या इधर-उधर उगी साग-सब्जी से भी कभी-कभी काम चलाती। बहुओ की जवानी थी, वे सब कुछ बरदाश्त कर लेती थी। पर क्षमा की तबियत ने उन्हे सीधा जवाब दे दिया। उनकी सेहत दिनो-दिन खराब होने लगी। तरह-तरह की पेट की बीमारियाँ होने लगी फिर भी वह खुले आम भीख नही माँग सकी। कभी-कभी अपनी मुसीबतो से लाचार होकर आसमान की ओर निगाहे उठाकर आहे भरती थी। 'हाय, हाय! खूब निकले ये बेटे मेरे। तिलतिल कर अपनी ही माँ की हत्या करते चले जा रहे है।'

सकोच के मारे वह अपनी पुत्रवधुओ मे से किसी के मुँह की ओर भी ताक नही सकती थी। यकायक रो पडती। कहती—"मुझे माफ कर दो बेटी। यदि मैं उनकी इतनी बुरी आदतो को पहले मालूम कर सकती तो उनकी शादी ही न करती। बेटी मैं तुम्हे कैसे मुँह दिखाऊँ?"

महीने दो महीने यो ही बीतने के बाद एक दिन क्षमा ने सुझाया— 'जो मेरी तकदीर मे है, भोगूँगी। मेरी लाडलियो तुम अपने-अपने मायके चली जाओ।

कब तक ऐसे धूल फाँकती रहोगी ?"

पर उनका कहना किसी ने मजूर नही किया। राधारानी के पीहर की तो कोई खास अच्छी हालत भी नही थी। दूसरे देवेन उनसे काफी लडाई-झगडा भी कर चुका था। फिलहाल उनसे इनकी खतो-किताबत भी नही थी। शायद देवेन किसी दिन यहाँ तो आ भी जाए, लेकिन ससुराल से अपनी पत्नी को वापस लाने की सद्भावना तो उसमे कभी नही आयेगी। राधारानी यह अच्छी तरह जानती थी।

रही श्यामा की बात। सो उसका भी वही हाल था। उसकी माँ शायद उसे जगह देने से इन्कार नही करती। लेकिन उसने खुद ही जिद पकडी थी ससुराल आने की। अब फिर किस मुँह से वहाँ लौटे ? पर जवाब मे उसने सिर्फ इतना ही कहा, "यह कैसे हो सकता है, माँ ? आपको ऐसी हालत मे अकेली छोडकर हम लोग कैसे जा सकती है ?" सुनते ही खुशी और प्यार से विवश होकर क्षमा ने उसे सीने मे लगा लिया।

× × ×

ऐसे ही बीत रही थी उनकी जिन्दगी। इन कठिनाइयो के बीच आशा और आनन्द का सन्देशा लाते थे निमत्रणो के कुछ दिन। पहले क्षमा ने कभी किसी के भी यहाँ भोजन करना स्वीकार नही किया। पर आजकल दुलहिनो को नही रोकती थी। उपवास तो इन दिनो हर रोज की दुखद घटना हो चली थी। एकाध दिन यदि पेटभर मन चाहा खाना मिल जाए तो क्या हर्ज है—खाये बेचारियाँ। पर मुसीबत होती थी शादी या जनेऊ के निमत्रण मे। चूँकि वहाँ सवाल आता था कुछ देने का। क्षमा अपनी लक्ष्मी जी वाली झोली उतारकर मुश्किल से एक अठन्नी या चवन्नी निकाल पाती। पर श्यामा इससे झिझकती थी। उसके शहरी जीवन के अनुभवो से उसे लगता था कि एक रुपये से कम तो किसी यौतुक मे नही दिया जाता। किन्तु यहाँ उसे विचित्र अनुभव हुआ जब कि उसने देखा कि अठन्नी-चवन्नी की तो क्या कहे, यहाँ के लोग दुअन्नी भी देते है। दरअसल मुहल्ले के गरीबो को तो वे लोग कृपा करके दावत देते है पर आने वाले उस दया को स्वीकार नही करते। कुछ 'नेग' दिये बिना भोजन करने मे उन्हे अपमान महसूस होता था। यही वजह थी कि दावत देने वालो को एक दुअन्नी भी लेनी पडती थी।

हालाँकि शादियाँ या नामकरणो को छोडकर (जनेऊ के मौके बहुत कम आते थे, उस बस्ती मे ब्राह्मणो की सख्या बहुत कम थी) दूसरे सभी निमन्त्रण लोभनीय होते थे। अनगिनती व्रत-पर्व, लगातार एक के बाद एक, आते ही रहते। उन सभी त्योहारो मे शादीशुदा ब्राह्मणियो की हमेशा जरूरत पडती थी। ऐसे अवसर पर सिर्फ भोजन ही नही, सिन्दूर, महावर, मिठाइयाँ, पान-सुपारी ये तो मिलते ही थे समय-समय पर अँगोछे या कपडे के टुकडे भी मिल जाते थे। इस तरह अपनी

कमाई मे क्या आनन्द है, श्यामा ने इसका रस पा लिया था ।

पहले दिन की बात है। उसे आज भी वह साफ-साफ याद है। जुलाहिन ने आकर हाथ जोडे और क्षमा के पास आ खडी हुई। बोली, "पडिताइन माँ, कहने की हिम्मत नही पडती, कल मेरी बडी बहू उद्यापन कर रही है। कुछ नही तो बारह ब्राह्मण सधवाओं का तो भोजन करवाना ही पडेगा । मिन्नते करने आई हूँ माँ, दोनो बहुएँ यदि घर जाने की कृपा करे तो। और भी तो सब आ रही है।"

क्षमा बहुत देर तक कुछ नही बोल पायी। शायद उसे अपने ही मन के साथ कठिन लडाई करनी पड रही थी। यही कल की तो बात है जबकि इसी जुलाहिन के भेजे हुए एक टोकरी चावल से उनके पेट भरे थे—चार दिन के उपवास के बाद। जब उसका दान ले ही रही है तब उसके मन को आघात पहुंचाने मे क्या रखा है ?

दो मिनट चुप रहने के बाद उन्होने केवल एक ही प्रश्न किया—'सब काम ठीक ढग से हो रहा है न ?"

जोर-जोर से सिर हिलाकर जीभ काटकर जुलाहिन ने जवाब दिया, "अरे, बाप रे, क्या कह रही है माँ। क्या मेरे दिल मे डर नही है ? ब्राह्मण की बेटी आयेगी मेरे घर और मैं भला ठीक ढग से काम न करूँ ? अरे बाप रे। क्या मै गोखुरू सापो से खेलकर खतरा मोल लूंगी ?

पर यह व्यवस्था कैसी होनी थी, क्या विशेषता होनी चाहिए इसमे, श्यामा सोचती ही रही। कुछ भी अन्दाज नही लगा पाई । राधारानी से पूछने पर भी कोई सही जवाब न मिल सका। लेकिन सास से पूछने मे उसे शर्म लगी। लगा कि, ब्राह्मण कन्या को बुलावा देने के लिए कैसा इन्तजाम होना चाहिए—यह तो उसे पहले से ही मालूम होना चाहिए था। अब इस बारे मे ज्यादा पूछताछ करने मे उसे काफी सकोच हो रहा था मालूम नही सुनने से भी सासूजी क्या सोचे ?

पर दूसरे ही दिन सारी बाते मालूम हो गई।

दोपहर को लगभग दो बजे के करीब जुलाहिन खुद आकर उन्हे बुला ले गई। तैयारी अच्छी ही थी। एक बडा-सा मडप बँधा था। ब्राह्मण-वैष्णव भी काफी बडी सख्या मे मौजूद थे। दस-बारह सुहागिने और उनके साथ उनके बच्चे-कच्चे। जुलाहिन की बडी पुत्रवधू ने अपने हाथ से उनके पैर धोये। पैरो की धोवन एक बडे कटोरे मे इकट्ठी की। फिर नये अँगोछे से उनके पैर पोछकर महावर लगाई। इसके बाद हर सुहागिन के हाथो मे सिंदूर से भरे लकडी के डब्बे दे उनसे आज्ञा लेकर उनके सीमत और उनके हाथो मे पडी लोहे की चूडियो पर जरा-सा सिंदूर लगाया चूँकि ब्राह्मण कन्या के सिर पर हाथ लगाना है, इसलिए आज्ञा लेना उसका फर्ज था। फिर उसने इन्हे कोरे कपड़े पहना-पहना और हाथ पकड-पकडकर आसनो पर बिठाया।

अब तक भी श्यामा यह नही समझ सकी कि कौन-सी ऐसी खास व्यवस्था है

जो कि सिर्फ उन्ही के लिए ही की गई है। पर सब समझ मे आ गया खाते वक्त। उनकी पत्तलो पर सिर्फ आठ-आठ पूडियाँ, बैगन की भाजी, परवल और कद्दू की भाजी थी। कोने मे नमक का ढेर लगा था। यह क्या बात है? देखा कि किसी भी तरकारी मे हल्दी-नमक नही मिलाया गया। कद्दू का साग भी बिलकुल सफेद-सा है। याने छोटी जाति के घर मे ब्राह्मणो का नमक-हल्दी खाना मना है। अलग से नमक दिया जाता है तो कोई दोष नही लगता।

जो कुछ भी हो श्यामा तो भूल बैठी थी कि अच्छी लूची का स्वाद कैसा होता है। इतने दिनो बाद जब भोजन के लिए सिर्फ पूडियाँ मिली तो उसने जी भर के खाई। अत मे मिले क्षीरमोहन व रसगुल्ले। लौटते समय लोगो की बाते भी उसे सुनाई पडी। वे जी भरकर तारीफ कर रहे थे, 'ओह, बहुत दिनो बाद ऐसा भोज हुआ।' श्यामा सोच रही थी, 'अहा! कलकत्ता के मोतीचूर या दरवेश (एक बगाली मिठाई) और इमरती भी अगर इन्हे खाने को मिलती तो न जाने क्या कहते थे ये लोग! वहाँ के माँस-मछली की तो बात ही क्या पूछना। ये तो यहाँ भाजी मे हल्दी भी नही खाते।' मन-ही-मन एक साँस दबाकर बेचारी श्यामा ने कहा, "मछली तो जैसे याद ही नही रही उसे।" फिलहाल दक्षिणा मे मिली एक दुअन्नी भी उसके हाथ मे थी। श्यामा ने सोचा कि उसी दुअन्नी से कल मछली मँगवायेगी। किसी को कल थोडी-बहुत खुशामद कर बाजार या नदी किनारे जरूर भेजेगी।

कई रोज बाद फिर एक न्यौता मिला। एक कायस्थ के घर से। वहाँ भी उसे और भी एक अजीब बात नज़र आई। बिना नमक की सब्जियाँ तो ठीक आगे की तरह थी। पर इस बार पूडियाँ भी मिली तो तेल से भुनी।—किसी को अपने घर पर बुलाकर उसका कभी तेल की पूडी से स्वागत किया जाता है, यह श्यामा की समझ से बाहर था। पर खाने मे उन्हे ये भी अच्छी ही लगी। घर मे घाने हुए ताजे तेल की पूडियाँ उनमे जितनी खुशबू थी उतना ही स्वाद भी।

बीमारी के डर से थोडा घबरा रही थी वह पर कुछ नही हुआ। सोलह रसगुल्ले और सन्देश। उन लोगो ने घर ले जाने के लिए साथ ही दे दिये। वे भी खुशी-खुशी सारी मिठाइयाँ ले आई—क्षमा का खयाल कर। उनके लिए तो और कोई सहारा नही था इसके बिना।

बैशाख ऐसे ही बीता। दावते मिलती गई। जब एक बार भिन्न जातियो के घरो उनके जाने की बात फैल गई तो फिर क्या पूछना? सभी ने हिम्मत की उन्हे घर बुलाने की। इससे श्यामा को तरह-तरह की विचित्र उपलब्धियाँ होती गई। तेली के घर भोजन को गई, तो वहाँ रसोई का नामोनिशान भी नही था। वहाँ तो इन्तजाम ही दूसरा था। पत्थर के एक बहुत बडे कटोरे मे दही डाल दिया गया भरकर—बडे-बड़े अच्छे मर्तबान केले चार-पाँच, फिर पाँच-सात तरह की मिठाइयाँ

और ऊपर से फैलाये धान। जी भर कर खाओ। फिर अंत मे एक-एक कटोरे भर के खीर। पर हाँ। सबसे ज्यादा भेट भी मिली उन्हे उसी जगह। नये अँगोछे, पीतल के नये बरतनो मे भर-भर के लड्डू-मिठाई, उस पर भी दक्षिणा—एक-एक दुअन्नी और पान सुपारी।

वैशाख बीता, जेठ आया। उसमे भी कोई खास तकलीफ नही हुई उन्हे। आषाढ मे मौसम के आम खाकर भी कुछ गुजारा हुआ। एकाध निमत्रण भी न मिला हो ऐसी बात नही। पर ज्यो ही सावन शुरू हुआ कि फिर से गले पडी मुसीबत। हाल-बेहाल होने लगे। उनके घरवाले हाते मे लगे आम और कटहल के लम्बे-चौडे बगीचे मे जब सावन का अधेरा छा जाता और बाहर लगातार बारिश होती रहती तो पानी और कीचड़ से तमाम पगडडियाँ भर जाती। और बद कमरो के भीतर की भीगी भारी हवा से मानो उसकी साँस रुँध जाती। उस समय, कभी-कभी तो श्यामा मन-ही-मन खुदकशी का इरादा करती। उसे लगता था कि अपने-आप ही गले मे फाँसी लगा ले। पर अपने गर्भ मे पहली औलाद का खयाल आते ही उसकी हिम्मत नही पड़ती। दिन-ब-दिन तन भारी होता जा रहा था। एक अजीब-सी कमजोरी महसूस होने लगी थी। हाथ-पैरो की नसे अकडती रहती। ऐसी अवस्था मे औरतो को अच्छे-भले खाने चाहिएँ पेट भर कर। वह तो दूर की बात रही इन दिनो उसे कई रोज तो भूखे ही बिताने पडते। इस घनघोर बरसात मे कौन किसका हाल पूछे? कौन किसके पेट पालने का ठेका ले? ताड, कद्दू और गुड खा-खाकर उनके जी उकता गए। ऊपर से घना अधकार। जरा-सा तेल भी नही कि दीये जलाए जाएँ। किसी सूरत से सँझा-बाती करके फौरन दीया बुझा देती। यहाँ आने के पहले, डकैतो के डर से सारे जेवर वगैरह तो कलकत्ता ही छोड़ आई थी ये लोग—उसी बहू बाजार के यजमान के घर। बहुत-थोडे से कुछ साथ भी थे—उसमे से भी एक अगूठी और एक जोड़ी बालियाँ तो बेच ही देने पडे। पडौस के एक किसान लडके के सहारे गहने बिकवाये—पर उससे भी क्या होता? कितने दिन गुजारा चलता।

पर सोचने की बात यही थी कि जिस पति ने उसके जीवन के पग-पग मे दु ख और कष्टो का बोझ लादा, उसी पति के प्रति उसके दिल मे उतनी क्रोध-भावना नही थी, जितनी कि हमदर्दी थी गम की, चाहत की। कभी-कभी घनी काली अधेरी रात मे जब सभी सो जाते है तो श्यामा की रात काटे नही कटती। उसे याद आ जाती अपने पति की। उसका खूबसूरत जवान पति। जाने कहाँ-कहाँ भटक रहा है, क्या-क्या करता फिर रहा है। कुछ भी कही पता नही। कही बीमार तो नही पड गया? मुमकिन है कि उसके बारे मे सबका गलत ख्याल हो शायद वह वैसे नही है जैसा कि लोग उसे सोचते है। क्या पता शायद कही रोजगार-धधे के लिए ही गया हो, कही किसी दूर परदेश में—जहाँ से खत नही आते—खबरे

नही आती। एक ममतामयी माँ की तरह उसका हृदय आन्तरिक प्यार से अपने पति के सारे अपराधो को ढँकना चाहता था। जैसे कि उसके सामने कोई प्रतिपक्षी खडा है, जिसे वह समझा रही है, बहस कर रही है और लड रही है। फिर कभी-कभी मन-ही-मन थक भी जाती। यह तो उसे खुद ही नही मालूम था कि वह किससे लड रही है, किसके सामने वह अपने कसूरवार पति को बेकसूर साबित करना चाहती है। फिर भी उसके मन मे तरह-तरह की दलीलें आया करतीं। कितने ही प्रकार की विरोधी युक्तियाँ। फिर कभी-कभी जब उसकी रुह रो उठती—जबकि वह अपनी वेदनाओ की थाह नही लगा पाती थी—तब पास ही सोयी सास को जोर से पकड लेती। नीद खुल जाने से क्षमासुन्दरी भी चौक पड़ती—"क्या हुआ छोटी बहू ? क्या हुआ, बेटी ? डर गई ? क्यो डरने की कोई बात नही, बेटी। मैं जो यही तुम्हारे पास सोयी हूँ। आहा, हा, सपने मे डर गई है बेचारी।"

श्यामा शर्मिन्दा-सी होकर जवाब देती—"कुछ नही माँ।" फिर करवट बदलकर धीरे-से लेट जाती। फिर भी बडी देर तक उसे नीद नही आती। करवटे बदलते-बदलते ही रात कट जाती।

बाहर, घने तम से भरी आँधी-पानी की रात पागल की तरह मस्ती मचाती रहती। ताड व नारियल के पेड़ो से टकरा-टकराकर तेज हवा दहाडती, बद खिड़कियो के झरोखो से कभी-कभी बिजली की तीखी झलक आँखो पर झटके मारती, बादलो की तैश भरी दहाड़े उसके उदास मन को पल-पल मे धक्के देती। और श्यामा अपने पति की याद मे अपने को खो देती। उस समय अपनी मुसीबतो का वह जरा भी खयाल नही कर पाती। हृदय के तार बजने लगते, सिर्फ एक ही शख्स की याद मे।

फिर बहुत बहुत देर बाद घटो तक उसके नैनो से टपके आँसुओ की धारा रह-रहकर बहने लगती। और फिर हार-थककर वह आखिर सो जाती। पर तब रात भी तो ढल चुकी होती थी।

## 3

भादो महीने की शुरुआत मे ही इत्तफाक से एक दिन पन्द्रह रुपयो का एक मनीआर्डर मिला। देवेन ने भेजा था। उसी मे दो शब्द भी लिखे—'अनेक झझटो और काम-काज मे फँसे रहने की वजह से कोई खबर नही दे सका। खैर, जल्दी ही आ रहा हूँ।' बस इतना ही। नरेन के बारे मे कोई जिक्र भी नही था। न सही, इससे उसके मन मे एक नई आशा की रोशनी दिखाई दी, एक नये जोश की झलक आ गई। राधारानी भी यह सोचती थी कि उन दोनो के पतिदेवो के हाल एक ही से है। दोनो ही अध पतन मे एक-दूसरे से मुकाबला करते रहे है। वह

निहायत नाखुश थी। पर अब उसका भी रज कम होने लगा। अब उसकी भी जान मे जान आई। अब उसकी बात-बात मे खुशी झलकने लगी। खोये हुए पति या सौभाग्य को वापस पाकर वह फूली न समायी। नई पालिश की गई चिकनी चूड़ियो की तरह खुशी से उसके दोनो कपोल चमकने लगे। छोटी बहू के प्रति उसे एक अजीब-सी हमदर्दी होने लगी। उसका अर्थ शायद यही था कि 'देखो, इतने दिन जो तुम सोच रही थी, वह सही नही है। मेरे पति और तुम्हारे पति मे पृथ्वी और समुद्र का अन्तर है।'

होने दो। श्यामा इससे घबराती नही। वह भी जेठ के आने की बाट जोह रही थी। दिन ही नही बल्कि क्षण भी गिनने लगी। उसे उम्मीद थी कि जेठ के आने पर उसके पति का सदेशा कुछ तो मिल ही जाएगा। सिर्फ इसी आशा से श्यामा हर तरह का अपमान भी सहने के लिए तैयार थी।

लेकिन इतने मे ही एक घटना और घटी। भादो के बीचो-बीच आधीरात गए श्यामा ने अपनी सास को पुकारा—"माँ, माँ, देखिए न कैसा अजीब-सा दर्द हो रहा है पेट मे। जरा उठिए न।"

तब तक क्षमा की समझ मे कुछ नही आया। उठकर बत्ती जलाई। पर दीवट से मुँह फिराते ही देखा कि श्यामा मारे दर्द के बिस्तरे पर गिर पडी है। ओफ, कैसा भयानक दर्द था। लगा कोई उसके पेट के मास को चिमटे से खीच-खीचकर तोड़े ले रहा है।

"यह क्या बहू-भाई? मैया री! क्या अभी-अभी तेरे बच्चा हो जाएगा? अरे मै तो तुझे कुछ खिला भी नही पाई। अब इस वक्त क्या करूँ? दाई को भी बुलाए तो कौन? बडी बहू, ओ बडी बहू, अरी उठ तो जल्दी बेटी, देखो तो सही उठके जरा।"

"अरे, बाप रे!"—श्यामा के कराहने की आवाज सुनाई दी। उसका चेहरा पीला पड गया। आँखे मानो फटने लगी। सारे शरीर पर तीव्र यन्त्रणा की सिहरने छा गई। पर इस अथाह वेदना के होते हुए भी एक उम्मीद की हलकी रोशनी उसके दिल को खुशी से भी भरे दे रही थी।

क्षमा भागकर गई पडौसी के घर। दौडने लगी—अँधेरे मे जगल के बीच से। उनके होश गायब थे। पडौसिन भी बडी शरीफ निकली। अपने बडे बेटे को दाई की तलाश मे भेज, खुद क्षमा के साथ उनके घर आई। इतने मे ही बच्चा पैदा हो गया। श्यामा के प्यार का पुतला, खूबसूरत बच्चा। गहरी थकान से श्यामा की आँखे बद हो गई। क्षमासुन्दरी दौडती आई और बच्चे को गोद मे उठा लिया। —"पता नही कहाँ भटक रहा है वह बुजदिल! न जाने क्या कर रहा है! अपनी औलाद को देखने का उसी को पहला हक था। पर बदनसीब जो ठहरा।" क्षमा

के अफसोस का ठिकाना नही रहा, नरेन के बारे मे सोचकर विह्वल हो उठी वह।

× ×

आश्विन मास के शुरू मे ही सचमुच देवेन आ ही गया एक दिन। उसे देखते ही क्षमा के आँसू उमड पडे। क्या हाल बना रखा है अपना। कितना खूबसूरत चाँद-सा मुखडा था। और कहाँ आज यह चेहरा। नरेन तो फिर भी कुछ साँवला-सा है, पर देवेन का तो सोने-जैसा गोरा बदन था। पर आज? बदन का रग मानो जलकर काला पड गया है। आँखे धँस गई है, निगाहो मे चमक नही। चेहरा उतर गया है, दुबला हो गया है। मानो उस पर बुढापा छा गया है। हाथ-पैरो मे घाव हो रहे है—अभी अच्छी तरह ठीक नही हुए। राधारानी भी उसकी यह हालत देखकर आँखे पोछने लगी।

देवेन ने कैफियत देने के भाव से कहा—"तो क्या करूँ। छोटे सरकार की तो हालत ही मत पूछो। कुछ पता नही कि कहाँ गायब है वे। इधर मुझे भी नौकरी से हाथ धोना पडा।"

"सो कैसे—मैने तो सुना था कि तेरी नौकरी पक्की है।' क्षमा ने उसे बीच ही मे रोककर कहा।

'अरे पागल हुई हो माँ। नौकरी किसकी पक्की, और किसकी कच्ची खासकर आजकल के दिनो मे। रहने भी दो यह बहस। अच्छा तो, फिर मेरी हालत तो बडी नाजुक हो गई। मकान भी खरीदा नही गया। रुपये-पैसे जो भी हाथो मे थे खर्च होते गए। इधर आमदनी तो कुछ भी नही थी। एक दोस्त ने सुझाया कि उडीसा मे चलो और वही हर्रे का व्यापार खोलो। वहाँ जाना तो खैर मुश्किल है। नाव मे सवार होना पडता है। मीलो पैदल चलना पडता है। लेकिन आमदनी भी खूब होती है। उसी के शैतान के फदे मे फँसकर कारोबार करने गया तो एकदम यह हालत हो गई। देखो न, रास्ते मे लुटेरो ने भी लूट लिया—फिर पडा बीमार, तीन महीने बीते अस्पताल मे। वहाँ से छुटकारा तो खैर मिल गया। पर खाली जेब लेकर तुम्हारे पास भी आऊँ तो कैसे? इसलिए वही से आरा चला गया।

"आरा कहाँ है?"

"—बहुत दूर है पश्चिम की तरफ। बनारस के करीब है। वहाँ जाकर एक मित्र की सलाह से मैंने डॉक्टरी धधा शुरू कर दिया है। यकीन मानो कि मेरा हाल तो सुधर गया है अब।"

"डॉक्टरी?"

क्षमा ने हैरान होकर पूछा—"डाक्टरी करता है और तू, वाह रे! मैने तो सुना है कि उसमे बहुत पढाई लगती है पास भी करना जरूरी है।"

"अरे माँ—तुम तो समझती नही हो। वह ठहरी एक जगली जगह। कोई पढ़ाई पास किये डाक्टर थोडे ही जाते है वहाँ? पाँच-सात किस्म की दवाइयाँ रख

ली है मैने, बस उसी से काम चल जाता है । वहाँ के लोग तो उसी से खुश है ।"

"क्या मालूम बाबा ।" घबराकर क्षमा ने कहा—"कही लोगो को मार न डालना । वरना गले मे फाँसी पड जाएगी ।"

"अरे छोडो भी । यही तो छ महीने हुए मुझे डाक्टरी करते । अब तो सभी आते है मेरे पास ।"

बाते होती गई । बातो ही बातो मे एक कहानी-सी बन गई । असल मे देवेन की आखिरी बात ही सही थी यही डाक्टरी वाली बात । पहले की तो सारी बाते ही बनावटी थी । बिलकुल झूठ । बेवकूफ के हाथो मे पैसे आने से जो हाल होता है वही उसका भी हुआ । कितने ही हमदर्द दोस्त आ गए, कुछ दिन खुशियाँ रही, खूब मजे उडाए, खूब मौजे की । बस थोडे ही दिनो मे रुपये-पैसे गायब सोने की चिडिया फुर्र उड गई । बचा कुछ भी नही । भोगनी पड़ी कुछ बुरी बीमारियाँ । दर-दर की ठोकरे ।

अस्पताल रहने की बात भी सच थी । सिवाय उसके और चारा ही क्या था ? वहाँ से छुट्टी मिलते ही पाँच-सात रुपये कही से कर्ज लेकर वह आरा रवाना हुआ था । दवाई नाम की कोई चीज ही नही थी उसके पास तब । खरीदने के लिए उतने पैसे कहाँ थे ? एक बोतल सीरप और रगीन काँच की शीशियो मे भरा पानी,सिर्फ पानी । हाँ, थोडा-सा सोडा भी था । वह भी एक मित्र की सलाह पर खरीद लिया था उसने । कहा, 'अरे भाई, यहाँ के लोग रोटी-दाल खाते है । तुम यदि पानी मे थोडा-सा सोडा मिला दो तो उससे काफी फायदा हो जाएगा । अरे यार, बीमारी छूटने की हो तो खुद ही छूट जाती है । वरना सैकडो डाक्टर आएँ और हजारो इलाज किए जाएँ तो भी सब बेकार जाता है । क्या डाक्टर सभी मरीजो को बचा लेते है ?' फिर तो बस पूछना ही क्या था ?

इसी मित्र की सलाह से काफी फायदे उठाए देवेन ने । आरा के लोगो से वह चार-चार आने फीस भी लेने लगा । जब देहात जाता तो आठ आने से एक रुपये तक 'चार्ज' करता । बडे ठाठ से नब्ज देखता, छाती पर चोगा ठोकता । घर लौटकर दवा भेज देता । मामला खत्म । एक शीशी दवा की कीमत दो आने होती । बीमारी छूटने पर लोग घर की हरी तरकारियाँ भेट देते । कद्दू, लौकी, गोभी और भी बहुत सारी भाजियाँ । दाल, कलाई, गेहूँ ये तो देते ही थे । खूब आमदनी होने लगी देवेन की । दो-तीन महीने बीते तो उसने एक खच्चर भी खरीद लिया । अब उसी पर सवार होकर वह देहात जाता है—डाक्टरी के लिए ।

दो-तीन दिन बाद देवेन ने जरा सकोच के साथ ही अपनी माँ से कहा—"माँ अब तो मुझे वापस जाना पडेगा ।"

माँ ने कहा—"सो कैसे ? अभी-अभी तो आया है तू । दो ही दिन मे कैसे जाना

हो सकता है ।"

"इलाज कराने के लिए आए रोगियो का क्या होगा। मेरी गैर-हाजिरी मे कही वे दूसरे के पास चले गए, तो ? मुझे तो सच पूछो तो अब इस वक्त आना ही नही चाहिए था। खैर चलो आ ही गया—तुम सबसे मिल भी लिया। यो भी तुम्हारे लिए दिल मे कुछ घबराहट-सी हो ही रही थी।"

माँ ने कहा—"तो फिर ठीक है। मजबूरी है, तो जाना ही होगा। पर हमारा क्या होगा ?"

फिर थोडा हिचककर देवेन ने जवाब दिया—"मै एक कमरा ले चुका हूँ चूंकि खानपान की बडी तकलीफ होती है। दिनभर मेहनत करो, और फिर लौट कर खाना पकाओ—बडी दिक्कते है। सो अब मेरे अकेले से नही बन रहा है।"

"क्यो, वहाँ पर कोई रसोइया नही मिलता !"

"अरी माँ, क्या बोल रही हो तुम। मै भला इतने दिन बाद क्या किसी मामूली रसोइए का बनाया खाने लगूँगा ? उनकी जात-पाँत का भी तो कुछ ठिकाना नही होता है ? टट्टी-मैदान से आकर वे कपडे भी तो धोते नही। ना, ना।"

क्षमा क्या कल्पना मे भी सोच सकेगी कि इसी देवेन का पेट किसी दिन वेश्यालय की गोश्त-रोटी से भी पवित्र हो चुका है। नही क्षमा तो यह सोच भी न सकेगी। और देवेन यह अच्छी तरह से जानता है। इसीलिए निश्चित होकर उसने यही कहा।

थोडी देर चुप रहकर फिर क्षमा ने चिंतित स्वर से कहा—"तो क्या तू हमे ले जाना चाहता है ? पर नरो (नरेन) की तो कोई खबर नही। अगर वह किसी दिन आ ही गया तो, हमारा पता भी न चलेगा उसे।"

अब देवेन बिगड गया। मारे गुस्से के चिल्ला उठा वह। "खबरदार, उस हरामजादे का नाम भी मत लिया करो मेरे सामने। नही तो मैं कत्ल कर डालूँगा तुम्हे। वही तुम्हारी एक पुरानी बीमारी है। जब देखो उसी का नाम, जब सुनो उसी का ख्याल। तुम्हारी इसी आदत से मै परेशान हूँ। तुम्हारे प्यार से ही वह इतना बरबाद हो गया। मरने दो उसे, वह जाय चूल्हे मे। वाहियात, बदमाश, गुण्डा, लुच्चा, जानवर कही का !"

श्यामा दरवाजे की आड मे खडी थी, वही खडी-खडी सिकुडी जा रही थी। उसकी आँखो से आँसू गिरने लगे। जेठ की बातो मे उसकी बदकिस्मती की विषैली गैस छुपी थी—उसी से मानो उसीकी आँखे जल रही थी।

बडे बेटे की इतनी ज्यादा नाराजगी देखकर क्षमा ने तुरन्त अपनी बात मन ही मे दबाकर कहा—"खैर, जाने दो उसकी बात। तुम जो चाहो, जो दिल मे आए, करो। मुझे इससे कोई मतलब नही। यहाँ नही तो छोटी बहू के मायके जाकर खबर ले लेगा। अब और क्या किया जाए ?"

देवेन ने मुँह फिराया कहा "सबको ले जाने की बात ही किसने छेडी है ? मैने तो वहाँ नया-नया धधा शुरू किया है अभी। सभी लोग जाएँगे तो सिर पर इतना बोझ लेकर मै अकेले कैसे सम्हालूँगा ? कुल एक ही तो कमरा है मेरे पास।"

आश्चर्य से क्षमा ने पूछा, "तो फिर ?"

"फिलहाल मे तो तुम्हारी बडी बहू को ही साथ ले जाना चाहता हूँ।" देवेन ने खोये-खोये-से स्वर मे दूसरी ओर नजरे फिराते हुए कहा।

उसकी बाते सुनकर क्षमा दग रह गई। कुछ देर तक उनके मुँह से बोल भी नही निकले। फिर धीरे-धीरे बोली, "तो फिर तुमने यही तय किया है। लेकिन हमारा हाल क्या होगा ? इसी निर्जन पुरी मे, बेसहारे पडी-पडी दिन बितायेगी। दो असहाय औरते ! मुझे इस उम्र मे, बुढापे मे भला-बुरा कुछ हो गया, तो ? कुछ कहा नही जा सकता। छोटी बहू तो अभी बच्ची ही ठहरी। उस पर एक बच्चा भी है साथ। कैसे सम्भालेगी ? और फिर हम दोनो गुजारा भी कैसे करे, कुछ समझ मे नही आता। सभी तो तुम खो बैठे।"

देवेन ने कहा—"सो तो ठीक है। पर, सभी को यही छोडकर चले जाने मे भी तो क्या सहूलियत होगी ? अभी-अभी तो तुम्ही ने कहा कि अगर नरो वापस आ गया तो—सच अगर वह आकर किसी को देख न पाये तो उसका क्या हाल होगा ? जरा यह भी सोचा है तुमने ? उससे क्या एकदम नाता तोड़ना उचित होगा ? आखिर तुम तो उसकी भी माँ हो न !"

क्षमा की हालत अब ज्यादा अचम्भा करने की नही थी। उसकी हैरानी दूर हो चुकी थी। वह चुपचाप देवेन की ओर ताकती खडी रही।

जरा रुककर फिर देवेन ने कहा, "एक काम क्यो नही करती ? छोटी बहू को उसकी माँ के पास पीहर भेज दो। तुम यही रहो। चाहो तो एक नौकरानी रख लो। मैं माहवारी चार-पाँच रुपये भेजता रहूँगा। देखो तो सही, चार-पाँच महीने। फिर भी नरेन यदि वापस न आया तो मैं आकर 'तुम्हे' ले जाऊँगा।" तुम्हे शब्द के ऊपर उसने काफी जोर लगाया था।

क्षमा थोडी देर खामोश रही। फिर उठकर चली गई। जाते वक्त, सिर्फ इतनी ही बात की—"ठीक है। हमारी समस्या हम खुद ही हल करेगी। तुम जरा भी फिक्र मत करो। तुम्हारा जाना जरूरी है, तुम उसी का इतजाम करो। शुभ मूहूर्त मे जल्दी रवाना हो जाओ।'

फिर गुस्से मे आकर देवेन बहुत देर तक बकता रहा—"हाँ-हाँ, मुझे मालूम है, सब कुछ मालूम है। यह तो मै जानता हूँ कि नरेन कुछ भी करे सो सही। मैं जो भी करता हूँ, चाहे वह कितना ही अच्छा हो—सब गुनाह माना जाएगा। खैर ठीक है मैं जो चाहूँगा वही करके रहूँगा। कल ही ले जाऊँगा अपनी बहू को। मेरी माँ क्या नरो की माँ नही है ? मेरे अकेले की जिम्मेदारी है ? मैं भला क्यो अकेला-

अकेला ही बोझा ढोऊँ ? मैंने अकेले ही पैसे उडाये है क्या ? उसने नही उडाये ? उडाये भी तो ठीक किया। अच्छा किया, चलो। मेरे बाप की दौलत थी मैंने उडा दी।" बेकार दहाडता रहा देवेन।

सास के रूठ जाने पर उनका अभिशाप लगेगा इस अकल्याण के डर से राधारानी ने आँखो मे आँसू भरकर कहा—"मुझे माफ कर दो, माँ। आप तो अपने लड़के को पहचानती ही है, कैसे आदमी है वह। पर मुझे सपनो मे भी ऐसा खयाल नही था कि वह ऐसी बाते भी कह सकते है। शर्म से मेरा तो सिर झुका जा रहा है।" और उसने सास के पैर पकड लिए।

उसे प्यार से सीने से लगाकर माथा चूमकर क्षमा ने कहा—"तू क्यो शर्मिन्दा हो रही है, बेटी! तेरा क्या अपराध ? उसे मैं न पहचानूँगी। मैंने ही तो जना है उसे। उसका फल भी तो मुझे ही भुगतना होगा। शर्म तो मुझे होनी चाहिए कि मैंने जो तुम्हे भी यह सजा भुगतने को मजबूर किया। अब क्या करोगी, शादी जब हो ही गई तो पति जहाँ भी ले जाना चाहता है वही जाना पडेगा।"

देवरानी के हाथ पकडकर भी राधा रो पडी। इतने दिनो तक एक साथ थी। दु ख-सुख एक साथ भोगती, उन दोनो मे एक प्रकार का प्रेम हो ही गया था। बोली—"सच कहती हूँ बहुनी, यह मेरी खुशी की यात्रा नही है।"

फिर थोडा हिचककर सिर झुकाते हुए बोली—"मुझे शक हो रहा है, बहनी उन्हे जरूर कोई खराब बीमारी की शिकायत है। मुझे वाकई बडा डर लग रहा है।"

श्यामा को अचभा हुआ, "यह खराब बीमारी कैसी होती है, दीदी ? किस तरह की होती है ?"

"यह तो मुझे भी ठीक मालूम नही। पर लोग कहते है कि बदचलन औरतो के पास जाने से यही खराब बीमारी होती है। भगवान करे—तुम्हे यह मालूम भी न करना पडे। पर मुझे बडा शक हो रहा है।"

दूसरे दिन ही राधारानी को लेकर देवेन चला गया। जाते समय माँ के पैर छूकर प्रणाम किया। तीन रुपये पैरो के पास रखे। दूसरी तरफ की दीवार की ओर मुँह मोडकर बोला—"अब इस समय और पैसे नही है हाथ मे। जाना भी बहुत दूर है। बिलकुल खाली जेब लेकर तो चला नही जाता। वहाँ पहुँचने पर, फिर हो सका तो, दो-एक रोज मे ही कुछ भेजने की कोशिश करूँगा।"

दिन भर क्षमा ने अपने को रसोईघर मे बद रखा। पर अब यात्रा के समय बडी बहू और खासकर पोते के बारे मे सोचते ही बाहर आ गई वह। उसी तरह दूसरी पतोहू और उसके बच्चे के बारे मे भी सोचकर ही वे तीन रुपये देवेन की नाक पर उठाकर नही फेंके। केवल इतना कहा, "बड़ी बहू उससे कह दो कि यदि राह मे ज़रूरत हो तो ये तीन रुपये भी साथ ले ले। मुझे इनकी ज़रूरत नही। जब

उसकी मर्जी होगी, भेज देगा। हमारे दिन नही रुकेगे।"

देवेन तब तक बैलगाडी मे बैठ चुका था—कुछ जवाब नही दिया।

# तृतीय परिच्छेद

## 1

बडा-सा खाली मकान काटने दौडता। एक को छोड बाकी सभी कमरे बद रहते। फिर भी श्यामा की देह मे एक अजीब-सा कम्पन महसूस होता। वही मानो एक विभीषिका थी। देवेन के चले जाने के बाद से क्षमा भी आजकल अधिक बाते नही करती, केवल चुप्पी साधे आँखे पोछती रहती और रह-रहकर लम्बी साँसे भरती रहती। फिर भला श्यामा ही उससे क्या बाते करे, कैसे सान्त्वना दे, उसकी कुछ भी समझ मे न आता। वह भी मौन बनी रहती। यह असह्य गहरी चुप्पी केवल उस समय भग होती जब श्यामा का बच्चा रोता और उसकी रोती आवाज खाली मकान मे गूंज-गूँजकर ऐसी विचित्र ध्वनि-सृष्टि करने लगती कि श्यामा भयभीत-सी जल्दी-जल्दी उसे चुप कराने की कोशिश करती।

यद्यपि क्षमा ने श्यामा से बहुत बार कहा था—"लडके ही जब माँ को नही पूछते, तो बहू तू ही क्यो व्यर्थ कष्ट उठा रही है ? तुझको क्या पड़ी है ? तू कलकत्ता चली जा, मेरे दिन तो किसी तरह कट ही जाएँगे।

पर श्यामा किसी तरह राजी न हुई, उसने भी प्रस्ताव रखा, "तो फिर आप भी कलकत्ता चलिए। मेरी माँ आपको सिर आँखो पर रखेगी।"

क्षमा दाँतो तले जीभ दबाकर बोली, "बहू, मुझे यह पता है। पर इस बुढौती मे एक मुट्ठी अन्न के लिए बेटे के ससुराल की शरण लूँ, इससे बड़ी शर्मनाक बात और क्या होगी। मुझसे यह न होगा।" उन्हे रासमणि की नेक सलाह भी याद आ रही थी अब।

मुहल्ले के सभी धिक्कारते रहते। उनकी वह कटु सहानुभूति तीर की नाई श्यामा को बेधती रहती पर वह क्या कहे ? जैसा उसका पति वैसा ही जेठ—इसीलिए तो उनको कहने का मौका मिलता है ? वे उनके खाने-पीने का बन्दोबस्त कर उन्हे कोसते है,जिन पर कि इसका वास्तविक दायित्व था। इसमे गुस्से या झगडने की कोई बात नही। बल्कि कृतज्ञता ही मान लेनी चाहिए। श्यामा यही जाहिर करने की कोशिश करती। पर उसका पारिवारिक आत्म-सम्मान-बोध उसे तिल-तिल कर जलाता रहता।

उसे तस्वीर की तरह अपने पति की याद आती। फिर मानो उसके मानस-

पट पर उसका चेहरा अस्पष्ट हो उठता। जो पति को बहुत दिनो तक अपने मन मे सँजोकर रख पाती है, उनके बारे मे नही जानती, पर उसे तो अभी से अच्छी तरह याद करने मे मुश्किल हो रही है। केवल इतना ही उसे याद है कि उसका पति सुन्दर है, उसके संग उसके साहचर्य की आनन्दानुभूति आज भी जागृत है उसके मन मे।

कभी-कभी बहुत ही तीव्रता से उन्मत्त-सी याद आ जाती है वे सब बाते। उन्हे फिर पाने के लिए, उसकी जेठ भेरने के लिए उसका जी बेचैन-सा तडफडाने लगता है। कष्ट और पीर से सिर पटकने की तबीयत होती है उसकी। लगता है कि अगर कुछ देह की पीड़ा या तकलीफ हो तो भी कुछ चैन मिल सकता है। तब उसे पति के किसी अपराध की याद नही आती, बस जी चाहता है, 'वह लौट आये। कुछ नही कहूँगी उसे।'

उसी तरह और कुछ महीने बीतने पर एकाएक कलकत्ता से खत आया, उमा की शादी है। श्यामा आ सके तो रासमणि उसे लाने के लिए आदमी भेज सकती है।

क्षमा ने पत्र पढकर श्यामा के मुँह की ओर देखा।

"बहू क्या इरादा है ?"

उमा उसकी जुडवाँ बहन थी। बचपन की साथिन। एक ही गुच्छे को दो फूल जो साथ ही खिले थे।

उमा, वही जिसे छिनभर भी न देख श्यामा बेचैन हो उठती थी। रात को भी दोनो माँ के अगल-बगल सोती तो दोनो ओर से एक-दूसरे का हाथ पकडे रहती माँ की छाती के ऊपर से। उमा मानो उसकी अपनी ही हस्ती की एक अलहदा रोशनी थी।

उसी उमा की शादी है। उसकी देह, मन उसकी सारी सत्ता ने चाहा कि पख लगाकर कलकत्ता के उस दुमजले मकान मे उडकर पहुँच जाये। उसी की छत और ऊपरी कमरे मे उन दोनो बहनो के बाल्यकाल की सैकडो स्मृतियाँ सचित है।

पर उसी उमा की शादी है इसलिए तो जाना सम्भव नही।

बहू को निरुत्तर देख क्षमा ने समझा 'मौनम् सम्मति लक्षणम्।' म्लान हँसी हँसकर बोली, "सोच रही हूँ, क्या भेट दोगी अपनी बहन को। कुछ न देने से तो मान नही रहेगा।"

"नही माँ, मैं नही जाऊँगी।"

"नही जाओगी ? क्यो बहू ?" हालाँकि क्षमा ने पूछा पर उसके स्वर से ऐसा पता चलता था कि कही बहू अपनी राय न बदल दे, उसीकी आशका है।

श्यामा ने नतमुख हो जवाब दिया, "क्या पहनकर जाऊँगी माँ ? थोड़े गहने

भी तो नही रहे। बाकी है भी कि नही, यह भी पता नही। बनारसी साडी भी यहाँ नही है। दूसरी भी कोई अच्छी-सी साडी नही हैं यहाँ। इस हालत मे वहाँ जाने पर लोग तरह-तरह की बाते कहेगे—मै भला कितनो को जवाब दे पाऊँगी ? आपके लडके के विषय मे ही भला क्या बताऊँगी ? और भेट का सवाल तो और टेढा है। इसके अलावा आपको ही किसके जिम्मे छोड जाऊँ ?"

"उसकी क्या फिकर है। नही होगा तो दूले की बहू को दो रात साथ सोने के लिए कह दूँगी। पर बाकी चीजे···" इतना कहकर कुछ देर रुकने के बाद एक लम्बी साँस छोडकर बोली, "तुम्हारी बदकिस्मती है बेटी! नही तो अपनी बहन की शादी और माँ का अन्तिम मगल कार्य है, जाती तो अच्छा ही होता। साथ-साथ मेरी भी फूटी किस्मत कि मैं तुम्हे जाने को जोर देकर कुछ कह भी नही सकती। ठीक ही तो कहा तुमने, क्या पहनकर जाओगी, देने की बात, न हो छोड भी दी तो। अपनी माँ को ही भला क्या जवाब दोगी ? उन्होने तो दहेज देने मे कोई कमी नही की थी।"

इसके बाद, कुछ देर रुककर उसकी पीठ सहलाते हुए वह सस्नेह बोली, "पर एक बात याद रखना बेटी, पति का उल्लेख करने मे अमुक का लडका या अमुक का पिता ऐसा नही लिखते। इससे निन्दा ही होती है।"

× × ×

कुछ दिनो तक श्यामा भूताविष्ट-सी घूमती रही। सिर्फ उसकी देह ही यहाँ थी, नही तो उसकी आत्मा तो अपने मायके वाले मकान मे ही विचरण कर रही थी। वहाँ कब क्या हो रहा है—यह उसे कहने की जरूरत नही। अक्सर काम-काज मे लगे रहने पर भी सारी घटनाएँ मानो उसकी आँखो के आगे खिच जाती। आँखे मूँदने की भी जरूरत नही पडती, यहाँ तक कि आँखो के किसी व्यक्ति या किसी वस्तु पर टिकी रहने पर भी नजर मे दूसरी ही तस्वीर खिच जाती। दीदी आई होगी। दादा बाबू (जीजा) भी आए होगे। छोटू भी। बडी मौसी अपना वह विख्यात लोटा लेकर रसोई की चौखट पर बैठी होगी। वह तो बाल-विधवा है, अत हुताशन की नाई हृदय मे प्रचण्ड ज्वाला लिये आज इसके घर, कल उसके घर घूमती-फिरती है। जीवन मे उनका यदि कोई सहारा है तो वही लोटा। और कही कोई आसरा नही, और कोई जायदाद नही। दो-चार कपडे और वह लोटा बस यही है उनका मालमत्ता। जब जहाँ रहती है, वहाँ किसी के कुछ भी काम नही आती। उन्ही का खाती है और उन्ही को उल्टे गालियाँ भी देती है। कुलीन घर देखकर माँ-बाप ने बूढे के साथ शादी कर दी थी। विधवा हो जाने पर कहा—भवितव्य है। नही तो कितने ही बूढे अभी जीवित है। इसलिए माँ-बाप को गाली दिए बिना तो बडी मौसी जल भी ग्रहण नही करती। उनकी बात चलते ही कहती है 'अँह, कहते थे भवितव्य! जानबूझकर घाट के मुर्दे से शादी कर दी, फिर भवितव्य कैसा ? तुम्ही

तो हो भवितव्य । यह 'भवि' और वे 'तव्य' । दोनो मिलकर मेरे कपाल को कट-कटाकर चबा गये ।'

फिर भी माँ कभी बडी मौसी को नही भूलती । वह रसोई की चौखट पर बैठी-बैठी जरूर पहरा दे रही होगी कि कही कोई उनका निरामिष भोजन अपवित्र न कर दे, या कोई झूठे हाथो से आकर न छू ले । और मझले मामा जी तो आए होगे । मझले मामा तथा उनके लडको ने कभी माँ की अवहेलना नही की । हालाँकि चाचा वगैरह कोई नही आयेगे पर एक चचेरा भाई कलकत्ता मे ही, मेस मे, रहता है, कभी-कभी घर आकर खा-पी जाता है, वह तो जरूर आयेगा ही । और भी इधर-उधर के कितने ही लोग आयेगे—मुहल्ले की चाची, मौसी, भाभियो की भीड । चीज़-बस्त कहाँ रखी होगी, यह भी वह जानती है । पानदान वगैरह तो वही सन्दूक के नीचे रखे होगे । दीदी सभी को उमी की बनारसी साडी दिखा रही होगी । दादा बाबू भी हँसी-मजाक कर रहे होगे और साथ ही साथ उमी की सास के लिए सामान का सरजाम भी । यह काम उन्हे खूब आता है ।

उमी का पति देखने मे कैसा होगा कौन जाने ? उमी वैसे जुडवाँ बहन-सी है पर उसके ही जैसी सुन्दर, पर रंग वैसा गुलाबी नही, ज़रा पीलाई लिए है । माँ कहा करती है, बिलकुल हल्दी की गाँठ है । जो हो, उसी से वह कम सुन्दर नही दिखाई पड़ती—उमा, नाम से तो है ही, देखने मे भी साक्षात् दुर्गा है । उसका पति भी ज़रूर देखने मे अच्छा ही होगा । माँ खुद देखे बिना दामाद नही चुनेगी अब । जीजी को दूजिया से ब्याहा है, पर दादा बाबू का चेहरा भी क्या है, मानो स्वय महादेव है । उनका भी तो । उफ् ! पति का खयाल आते ही तो उसकी आँखे भर आती ।

हे भगवान्, उमा अपने पति के साथ सुखी जीवन व्यतीत करे । चाहे देखने मे वह कैसा भी क्यो न हो । सुन्दर की और जरूरत नही ।

शादी की तिथि ज्यो-ज्यो पास आती गई, श्यामा के दिल मे हूक उठती रही । क्षमा बहू की ओर देखती और खुद ही छिपाकर आँखे पोछती । शादी की तारीख के सुबह ही उसका बाँध टूट गया । रोने की आवाज सुनकर क्षमा ने जागकर देखा श्यामा कमरे से निकल बाहर बारामदे मे फर्श पर लेटी जोर-ज़ोर से रो रही है । अब धैर्य का अभिनय किसी भी तरह सम्भव नही हुआ ।

क्षमा सान्त्वना का भी कोई शब्द न कह सकी । केवल पास बैठकर उसका सिर जबर्दस्ती अपनी गोद मे रख लिया ।

"रात भर श्यामा सोई नही थी । शादी के घर के रतजगे मे, तरकारी काटने, मसाले कूटने आदि काम-काज मे मानो वह अदृश्य रूप मे उपस्थित थी । पर सुबह जल स्पर्श करने के वक्त का ध्यान आते ही वह अपने को किसी तरह भी सयत न रख सकी ।"

ग्राह, सचमुच ही वह उमा की शादी मे शामिल नही हुई !

## 2

पर बढार के दिन के बाद जिस दिन नियमानुसार उमा की फूल शैया (सुहाग-रात) मनाई जाने वाली थी, उसी दिन वहाँ शाम से कुछ पहले बिलकुल ग्रचानक ही नरेन ग्रा धमका।

श्यामा को ग्रपनी ग्राँखो पर यकीन नही हुग्रा, विह्वल दृष्टि से वह देखती ही रह गई। नरेन ने मज़ाक के तौर पर कहा, "ग्ररी भूत देख लिया क्या ? ग्रहा, तुम्हे खूब नखरे करना ग्राता है।"

श्यामा उसकी शक्ल देख ग्रौर भी ग्रधिक विस्मित हुई। इससे पहली बार जाते वक्त तो सिल्क का कुर्ता व ताँत की धोती पहने था, सोने की चेन की घडी भी बाँधे था। वही ग्राज उसकी देह पर मैली, फटी धोती, फटा कोट। घुटनो तक उठी धोती, धूल से सने खाली पाँव। एक गठरी बगल मे दबोचे। चेहरा भी बदला-बदला, रूखे बाल, सारे शरीर पर मानो किसी ने स्याही पोत दी हो—ऐसा काला तो उसका पति कभी नही था। पहले से ही दुबली गर्दन ग्रौर भी पतली हो गई थी। फूले हुए गाल मानो किसी ने थप्पड मार-मार कर ग्रन्दर घुसेड दिये हो। वे बडी-बडी ग्राँखे भी तो ग्रन्दर धँसी है। इसके ग्रलावा उसे सन्देह हुग्रा कि शायद इसी उम्र मे बाल भी पकने लगे है। कलाइयो मे भी पैरो की तरह खुजली के घाव है। शरीर पर इतना मैल जमा है कि जैसे कई महीनो से स्नान ही न किया हो।

वह ग्रभी ग्रवाक् खडी देख ही रही थी कि इतने मे ही, "कौन ग्राया है, बहू ?" कहती हुई क्षमा रसोई से निकली ग्रौर लडके को सामने देख बुत बनी रही। कुछ कहने का प्रयत्न भी किया तो बस एकाध बार होठ हिलकर रह गए, मुँह से कोई ग्रावाज नही निकली—जब नरेन उसकी ग्रोर बढा, प्रणाम करने को शायद—तो कुछ कहे बिना ही रसोईघर का दरवाजा जोरो से बन्द कर लिया।

—"वाह, वाह ! खासा तमाशा है। माँ ने भी कैसे नखरे सीख लिए है।" थोड़ा भी विस्मय न दर्शाते हुए नरेन पीछे हट ग्राया। इसके बाद गठरी नीचे श्यामा के पास रखकर बोला, "उमीकी शादी होगई। तुम लोग तो गए नही वहाँ ?

यह सवाल नरेन के सिवाय ग्रौर कौन पूछ सकता था। श्यामा को इतने दिनो मे पति का इतना ही परिचय हुग्रा था। इसीलिए उसने कोई शिकायत नही की। पर उसे इस पर बहुत ग्रधिक ग्राश्चर्य तो हुग्रा ही। सब भूलकर उसने पूछा—"तुम्हे कैसे पता चला ?"

"ग्ररी, मैं क्या जानता था कि तुम लोग ग्रभी यही हो। मैंने तो सोचा था सास ने तुम्हें कलकत्ता जरूर बुलाया होगा—उनकी लाड़ली लड़की भी तो हो तुम।"

शिकवा करने की इच्छा न रहने पर भी कभी-कभी सहना बर्दाश्त के बाहर

भी हो जाता है, श्यामा बोल उठी—"और तुम्हारी बूढी माँ, उसे कहाँ छोड जाती ?"

"मैने तो सोचा था, माँ शायद इतने दिनो मे मर गई होगी। नही तो दादा उसे साथ ले गए होगे। इसीलिए मैं पहले कलकत्ता मे ही गया था।'

"तुम, तुम इसी वेष मे वहाँ गए थे ?" श्यामा सिहर उठी, एक तरह से आर्तनाद ही कहा जा सकता है।

इस बार नरेन भी जरा हिचकिचाया, "अरी, मैं क्या शादी जानकर गया था। फिर सास जी ने नही छोडा, तो क्या करता। देखा कि वे तो हमारी सारी बाते जानती भी न थी। मेरी ही जबानी सब सुना। तुम भी तो कमाल की लडकी हो। पर बडी चतुर हो।"

बाद मे अपने मज़ाक पर खुद ही जरा हँसकर कहा, "पर हाँ, तुम यह नही कह सकती कि स्वार्थी की नाई मैं अकेला-अकेला ही शादी की मिठाइयाँ खा आया तुम्हारे लिए भी बाकायदा माँग-मूँगकर साथ बाँध लाया हूँ। पूरी, तरकारी, मिठाई सब कुछ। मछली तो खराब हो जाती इसी से· ·"

श्यामा के लिए अब चुप रहना कठिन हो आया।

"गले मे फाँसी लगाने को रस्सी नही मिली। ये सारी चीजे माँगकर ले आए। गले मे जनेऊ तो था ही कि वह भी बेच खाया ? छीः, छी, मेरी खुद ही गले मे फाँसी लगाकर मरने की इच्छा हो रही है!"

श्यामा ने भी अपने कमरे मे जाकर द्वार बन्द कर लिया।

"ओह, बडी बड़ी लम्बी-चौडी बाते करना सीख लिया है। देखो, कहे देता हूँ हाँ, तुम सब मिलकर मुझे इस तरह तग न करो। गले मे फाँसी! गले फाँसी लगाना वगैरह अभी सब निकाल दूँगा—वाहियात झाड-झखाड कही के सब। पहले की भाँति उछल-कूद मचाने पर भी उसके स्वर मे वैसी तेजी नही थी। बल्कि थोडी देर बाद उसने क्षमा से रसोई के पास जाकर कुछ बेढगी, बेसुरी और बेतुकी आवाज़ मे क्षमा-प्रार्थना भी की!

क्षमा को ही बाहर आना पड़ा। नालायक पर शक्ति रहे तो दण्ड किया जा सकता है पर उस पर मान करने जैसी बेवकूफी दूसरी नही। बेकार जानते हुए भी उसने जरा तिरस्कार किया।

पर नरेन ने बडे ढाढस के साथ आत्मसमर्पण कर दिया। बोला—"वाह जी, क्या मेरा ही सारा दोष है ? एक तो कलकत्ता-सा शहर, उस पर मैं ठहरा लडका, पास मे इतने सारे रुपए—कही दिमाग ठीक रह सकता है ? माना कि मैंने ठीक रखा भी, पर और पाँच क्यो रखने देते ? देखते-देखते चारो ओर से यार-दोस्त आ जुटे—बस शराब और औरत, इतने से रुपये और कितने दिन चलते ?

"हाय!" क्षमा प्रायः आर्तनाद कर उठी, "तूने मकान बनाने के सारे रुपये

शराब और औरतो के पीछे फूँक डाले ? और वही अब गला फाड-फाडकर मुझे सुना रहा है ? अरे तुम लोगो मे घिन लगने जैसी भी कोई चीज नही रह गई है ! उधर उसने भी न जाने क्या कारबार करके सब उडा दिया और तुमने—"

एक कुत्सित भगिमा दिखाकर नरेन बोला, "ये लो ! अरे किसने कारोबार कर पैसे उडा दिए, सुनूँ तो जरा मैं भी, दादा ने ?"

क्षमा को जरा शक हुआ। उसने अस्फुट स्वर मे कहा—"हाँ, ऐसा ही तो कुछ कह रहा था वह।"

नरेन हो-हो कर बड़ी देर तक हँसता रहा, "मैं सच कहता हूँ, दादा बना-बना कर खूब कह सकता है। नॉवेल लिखता तो चार पैसे भी कमा लेता। सुनो, मैं जिस राह गया था, दादा भी उसी राह का राही था। एक पाड़े मे ही हम दोनो जाते थे। भैया किसके घर जाता था, यह क्या मैं नही जानता। हम दोनो को ही तो बुरे रोगो ने भी पकडा, मैने अपने को इलाज करवा के सम्भाल लिया, वह आज भी भोग रहा है।—कारोबार, हाँ वही तो था !"—बिलकुल निर्लज्ज की तरह हँसकर नरेन गर्व से माँ की ओर देखता रहा। भाई की पोल खोलकर वह आज सचमुच ही बडा खुश था !

क्षमा जड बनी बैठी रही। नरेन नालायक है, यह वह पहले से ही जानती थी पर देवेन ? वह भी झूठ बोल गया ?

नरेन बोला, "दादा और क्या-क्या बाते बनाकर गया है, सुनूँ तो ?"

"—उसने झूठ कहा है या तू ही झूठ बोल रहा है क्या जानूँ ? खुद पूँछ-कटी लोमडी हो, दूसरे की भी पूँछ काटना चाहते हो या नहीं, क्या पता ?"

"मै बिलकुल सच कहता हूँ···तुम्हारी कसम···"

नरेन माँ को छूने ही जा रहा था कि क्षमा डर से पीछे हटकर बोली, "छुओ मत—तुम्हे जना था इसी पाप से मुझे नरक मे जाना पड़ेगा—अब छूकर पाप बढाना नही चाहती। न जाने कितने जन्मो का पाप सचित था, जो ऐसे लडकों को पेट मे पाला।"

नरेन को इतनी आशा न थी। कारण अपने अपराध के विषय मे वह इतना सचेतन कभी नही रहा। वह माँ की जेठ भरने जा ही रहा था कि एकाएक उनके पीछे हटते ही वह गिरते-गिरते बचा। अपने को सँभालने मे उसे कुछ तकलीफ भी हुई और शर्म भरी जरा हिचकिचाहट भी। उसने यह पहले ही क्यो नही समझा ! बाद मे अपने जी का मलाल निकालने के लिए उस शून्य बारामदे मे खडा-खड़ा वह बडबडाता रहा, 'उँह, मत छुओ—मेरा क्या बनता-बिगड़ता है। बड़ी आई हैं। जैसे न छूने से मेरा सब चौपट हो जाएगा।—दादा ने खूब बना-बनाकर कही तो 'सत्यवादी' हो गया। मेरी बिरियाँ ही रखी है ये सब आचार-विचार की बाते। ठीक है, मैं भी नही छुऊँगा। मुझे क्या परवाह है !'

रात को खा-पीकर जब श्यामा अन्य दिनों की तरह क्षमा के बिस्तरे पर आ बैठी तो क्षमा जरा विस्मित हुई। थोडी उद्विग्न भी। बोली, "अब इतनी रात बीते यहाँ क्यो बैठी है, बहू, जा उसी कमरे मे सो जा। बच्चे को न हो तो यही रहने दो। यदि रात मे रोएगा-चिल्लाएगा तो मैं जगा दूंगी।"

श्यामा रोज की नाई सास के पैरो को सहलाती हुई जरा देर चुप रहने के बाद बोली—"माँ, मैं यही क्यो न सो जाऊँ, मुझे कुछ भी अच्छा नही लग रहा।"

क्षमा उठ बैठी। बहू को गोदी में खीचकर बोली, "मुझे पता है बेटी। मैं भी तो एक औरत हूँ, ये सारी बाते सुन लेने पर ऐसे पति से घृणा ही होती है। सौत को हम सहज मे ही अपना सकती है चूंकि वह उतनी घृणित या बेहया नही हो सकती। पर बहू क्या किया जाए? यह हिन्दू-विवाह है, इन्कार और तलाक की गुजायश नही। जब इसी के साथ गिरस्ती चलानी है तो सहे बिना दूसरा उपाय ही क्या है। उसे तो पहचानती ही हो—बेकार का हल्ला, टटा-बखेडा, मार-पीट करना भी इसके लिए कोई विचित्र नही। सूनी रात मे, ज़रा-सी आवाज़ भी गूँज उठती है। मुहल्लेभर मे ढिंढोरा पिट जाएगा, बेटी।"

श्यामा कुछ क्षण तो सास की गोद मे मुँह ढके रही। फिर उसे उठना ही पड़ा। आँचल से आँखे पोछकर जरा-सा घूँघट काढे वह चुपचाप बाहर चली आई।

"किवाडे बन्द कर सो जाइये आप।" बाहर ही से स्वाभाविक पर कुछ उखडे-उखडे स्वर मे कहा उसने यन्त्रचालित की तरह।

श्यामा कमरे से निकली, बारामदे मे आई। क्षमा के कमरे से सटा था ज़ीना। उस ओर के कमरे मे ही आज नरेन का बिस्तरा लगा है। यानी उन दोनो की सेज।

चाबी लगी गुडिया की तरह श्यामा दो कदम आगे बढ़ी पर सीढी के पास आते ही मानो उसकी चेतना लौट आई। अभी तो एक उपाय है। क्यो न आखिर वह इस घर से निकल भागे।

यह रहा जीना। ज़ीने से उतरते ही नीचे आँगन—और फिर किवाडे खोल भाग निकलने पर किसी को ज़रा भी पता न चलेगा।

पर उसके बाद?

बगल मे ही कुड तालाब है। जरा और बढते ही गगा जी है।

हमेशा के लिए छुटकारा मिल जाएगा। रोज-रोज की यह यातना और नही सहनी पडेगी।

श्यामा अचल खडी रही। मोह? हाँ शायद मोह ही हो। जिन्दगी के प्रति इतना मोह हो सकता है, कौन जानता था। अभी उसकी उम्र ही क्या है—पद्रह-सोलह वर्ष का अल्हड़ यौवन। इतने दिनो तक कितनी आकुलता से उसने कामना की थी पति के पाने की। निर्मोही निर्बोध जानवर, फिर भी उसने उसे चाहा था, अपने प्रथम यौवन की समस्त उग्र कामना से एकमात्र पति का ही!

ध्यान किया था उसने। आज उसका वही पति आया है, करीबन एक साल की जुदाई के बाद।

लेकिन ?

पर यह भी क्या उसकी कम ज्यादती है। जिसके घर मे खिले कमल-सी रूपसी पत्नी अन्तर की सारी वासना कामना का दीप जलाकर बाट जोह रही हो, स्वप्निल-सी प्रणय-रजनियाँ जहाँ आवेग, आकुल वासना से उन्मुख हो, वहाँ न जाकर, नव परिणीता वधू की ओर न देखकर, जो शख्स एक घृणित रूपाजीवा (वेश्या) के यहाँ गया और कुत्सित रोगो से अपनी सेहत और तरुणाई सदा के लिए पगु कर आया वह क्या पशु से भी अधम नही है। पशु तो केवल अपनी देह-लिप्सा ही मिटाते हैं—उन्हे भले-बुरे का तनिक भी ज्ञान नही रहता—पर जहाँ उसकी कोई भी आवश्यकता नही, जहाँ केवल जघन्य जीवन है, सिर्फ कीचड है, मलिनता है, उस स्थान के प्रति जिसे मोह हो उसे किस श्रेणी मे रखे वह।

और आज उसी को निविड भाव से अपनी देह समर्पित करनी होगी ?

कल्पना से सिहर उठती थी, वह फिर भी···

खोका (मुन्ना) फूल की तरह मासूम, कमल की तरह पवित्र जो फूल उसकी देह-लता मे मुकलित हुआ है, जो उसे भगवान् की देन है, उसे छोडकर जा सकेगी क्या वह ? माँ, दीदी, उमी, सगी माँ-सी स्नेहशील यह सास ?

श्यामा जीने के पास से खिसक आई। दक्षिणी खिडकी की ठण्डी-ठण्डी लोहे की छडो पर अपने उत्तप्त ललाट को रखकर खडी हो गई वह। आहा, कितनी शीतलता है ! कितनी शान्ति है !

रात जितनी अधियारी थी उतनी ही निस्तब्ध भी। दूर कही एक सरीसृप (रेगने वाला जानवर) सूखे पत्तो पर रेगता हुआ निकल गया। उस सरसराहट ने मानो यहाँ उसकी आच्छन्न चेतना पर आघात पहुँचाया। इस सरीसृप का स्पर्श भी शायद इतना घिनौना नही होगा।

× × ×

नरेन इस बार अपने साथ हुक्का-चिलम भी ले आया था। तमाखू पीने का नया शौक लगा था। अभी वह बैठे-बैठे हुक्का पी रहा था। तमाखू की गध और हुक्के की गुडगुडाहट यही से महसूस हो रही थी। श्यामा ने मन ही मन एक दुराशा की थी कि शायद हारा-थका नरेन जल्दी ही सो जाएगा।

पर एकाएक वह कमरे से निकल आया। अधेरे बरामदे मे श्यामा को इस तरह चुपचाप खडी देख वह ज़रा सहमकर साँस रोके खडा रहा। फिर उसके पास जाकर कडवी, पर धीमी-सी आवाज मे बोला, "क्यो, यह क्या नखरा हो रहा है कि जो इतनी रात बीते यहाँ खडी हो ? मैं क्या सारी रात जगा पड़ा रहूँगा।"

वही क्रूर, क्रुद्ध कण्ठ स्वर। इसके बाद ही मार-पीट शुरू हो सकती है—यह

श्यामा अच्छी तरह जानती है।

पर न जाने उसमे कहाँ से कुछ अजीब-सी हिम्मत आ गई। सहज शान्त भाव से बोली, "तुम जाकर सोओ—मै अभी कुछ देर बाद आऊँगी।"

नरेन ने उसका एक हाथ पकडकर खीचते हुए कहा—"यह सब नखरे छोडो चाँद। भला चाहती हो तो सीधी तरह सोने चलो। वरना···'

"वरना क्या ?" श्यामा की मृदु व दृढ आवाज़ ने नरेन को चौंका दिया।

"वरना भाग्य मे दु ख बदा है, क्यो यही न ? क्या करोगे–तुम मारोगे? खूब ज्यादा। बुरी तरह मार सकोगे ? गर्दन पर दराँत चला सकोगे ? सच कहती हूँ, मैं चूँ भी नही करूँगी, रोऊँगी भी नही, कोई भी नही जान पाएगा।"

श्यामा का यह रूप नरेन ने पहले कभी नही देखा था। वह घबडा गया।

"यह सब क्या ढोग कर रही हो ? चलो सोने चलो···" हकलाकर कहा नरेन ने। उसके स्वर मे अब पहले जैसी रुखाई नही थी, न उतनी दृढता ही।

नरेन की पकड से अपनी कलाई छुडाकर श्यामा बोली, "तुम जाकर सो जाओ। मैं सोने अपनी तबियत से जाऊँगी। जबर्दस्ती की तो सच कहती हूँ इसी दम ऊपर से नीचे कूद पडूँगी, मेरा इरादा टस से मस नही होगा।"

नरेन ने सहमकर पूछा, "तो तू क्या मेरे साथ गिरस्ती नही होगी ?'

"वह सब बाते पीछे, पर इस रात तो मुझे माफ करो।"

नरेन धीरे-धीरे मुडकर अपने कमरे मे चला गया। पर अन्दर घुसते ही उसने फिर वही रुख अपनाया। वही बक-झक मचाने लगा—"आ हा, जैसे कोई वेश्या के यहाँ जाता ही नही। एक बार जाकर देखो न कितने बडे-बडे व्यक्ति आते है वहाँ, मैं ही क्या गया था, दुनिया भर के आदमी आते है वहाँ। जब से आया हूँ, देखता हूँ सास-बहू ने मिलकर एक तमाशा बना लिया है। ऐसा सती-पना बहुत देखा है। यह सारा ढकोसला एक फूँक से उडा दूँगा मैं! कहे देता हूँ हाँ—खैर! आज जो जी चाहे करो, आज की रात और छोडे देता हूँ। कल सुबह तुम्ही रहोगी या मैं ही।''

पर थोडी देर बाद ही कमरे से खर्राटे सुनाई पडने लगे।

श्यामा वही अचल बनी खडी रही, उसी तरह खिडकी की छडो को थामे, शान्त, निष्क्रिय। बैठी तक नही, बहुत काफी देर हो गई। सोचती थी, 'आज उमा की सुहाग रात है। न जाने उसकी सुहाग रात भी कैसी कटी होगी।'

—'ईश्वर उसकी रक्षा करे।—ऐसा अपमान उसे कभी न सहना पडे।'

उमा का खयाल आते ही उसे अपनी माँ की याद भी हो आई—माँ की कैसी लाडली बेटी थी वह। बचपन के वे मधुर दिन—जिन्हे बीते अभी दिन ही कितने हुए है। अभी हाल ही मे तो उन्हे पीछे छोड़ आई है वह।

एकाएक चट्टान फोडकर मानो तेज झरना बह निकला। श्यामा सुबकती-सुलगती रही।

## 3

रासमणि बहुत ही सजीदे स्वभाव की महिला थी—बहुत ही सहनशील। बाहर से देखने पर उनकी अन्तर्व्यथा की थाह पाना बडा कठिन था पर श्यामा की घटना से उनके हृदय पर गहरी चोट पहुँची। उनकी ऐसी सुन्दरी कन्या, चतुर, गृहकर्म निपुणा बेटी, जहाँ भी जाएगी सबको खुश कर देगी, भविष्य मे घर का भार सँभाल सकेगी, यह बात वह प्राय गर्व से कहती थी। उसी श्यामा की यह हालत होगी कौन जानता था। रासमणि ने भी अपने जीवन मे बहुत आघात सहे थे। सौत रहते हुए और बूढे पति के साथ विवाह हुआ। नाव से गुजरता हुआ एक अट्ठावन वर्ष का वृद्ध धनी एक तेरह वर्ष की बालिका को गगा स्नान करते देख चचल हो उठा। विवाह का प्रस्ताव लेकर नाई भेजा गया। कुलीन जमीदार ब्राह्मण का प्रस्ताव देख माँ-बाप तुरन्त राजी हो गए। ऐसे पति को पाकर रासमणि दुखी हुई, यह तो नही कहा जा सकता। पर प्रथम यौवन मे ही तीन कन्याओ की माँ बनकर विधवा हो गई। मरते वक्त वह स्वामी के पास भी न रह सकी। देवरो ने सौत की सन्तान के साथ षड्यत्र कर उसे वहाँ से पहले ही हटा दिया और मरते दम बेहोश पडे निरक्षर पति के अँगूठे का निशान लगाकर झूठा वसीयतनामा भी लिखा लिया। रासमणि सारी सम्पत्ति से वचित हो गई। उनके नाम पर झूठी लाछनाओ से ससुराल के आस-पास का वातावरण कलकित हो उठा। तब अपने काफी गहने बेचकर और पास मे जो कुछ भी थोडे बहुत रुपये-पैसे बचे, उनके सहारे इन तीन कन्याओ का पालन करना पडा। मुकदमा चलाने पर शायद उन बदमाश रिश्तेदारो को पाठ पढाया जा सकता था—पर कौन करता उसके लिए पैरवी और दौड-धूप ? जो थोडे-बहुत रुपये-पैसे उनकी पूँजी थी उसे भी वकील-मुख्तारो की जेब मे डालने का साहस नही हुआ उन्हे।

इतने कष्ट सहकर लाडली लडकी की शादी की—उसकी भी यह दशा। पर रासमणि अब पत्थर बन चुकी थी। लडकी चुप है, वह कुछ भी नही कहती। पर नरेन से जो खोज-खबर लगती वही क्या कम है। बाकी का अन्दाज वह सहज ही मे लगा सकती हैं। कितनी राते तो वह सो भी नही सकी। दुनियाभर का ऊँच-नीच सोचती रहती। कभी ऐसा लगता कि वह पागल हो जाएँगी ? और कभी ऐसा मानो उनका हृदय विदीर्ण हो गया। 'बाप रे!' कहकर वह एक लम्बी साँस छोड़ती। और उसी वेदना-भरी आवाज से उमा की नीद उचट जाती।

इसी तरह बैठे-बैठे ही रात बीतती, बिहान मे चार बजते ही वह घर मे ताला लगाकर गगा-स्नान करने चली जाती।

पर उनकी ये तकलीफे, परेशानियाँ पास-पडौस के लोगो को कभी नही मालूम पडी। बस सिर्फ एक ही लक्षण प्रकट हुआ था कि वह उमा की शादी नही करना चाहती।

"लडकी तो पेड की तरह बढती चली जा रही है। अब और कब शादी होगी, उमा की माँ? लडकी बिना ब्याहे तुम्हे खाना कैसे रुचता है? तेरहवाँ भी निकल गया—लडकी अगर कुँआरी ही जवान हो जाए तो पुरखो को नरक भोगना पडेगा।" ऐसे ही कितने ही वाक्यबाण और शास्त्र-वचनो का सामना करती, पर रासमणि फिर भी अचल-अटल बनी रहती।

मेरे पास रहकर लड़की हँस-खेलकर जितने दिन काट सके अच्छा ही है। मैं उसकी शादी मे किसी तरह की भी जल्दी नही करूँगी।

केवल उनकी बडी बहन समर्थन करती, "कतई नही। क्या होगा इतनी जल्दी शादी करके? लोग तो बात-बात मे भाग्य की दुहाई देते है—इसकी विरिया भाग्य कहाँ गया? अगर कोई पूछे तो कह दे जब भाग्य मे होगा तभी शादी होगी। मै क्या जानूँ?"

बाएँ हाथ से लोटा थामे रसोईघर की चौखट पर बैठकर जरा उत्तेजित ढग से ही बोलती थी वह।

पर उमा जब चौदह पार कर गई तो रासमणि भी स्थिर नही रह सकी। चारो ओर सुयोग्य वर की तलाश शुरू कर दी और उसके बाद एक साल मे ही यह सम्बन्ध तय हुआ।

"लडका कुलीन है इतना सुन्दर कि ऐसा रूप बहुत-से बगाली परिवारो मे सुदुर्लभ है। कच्चे सोने-सा रग, माँग के दोनो ओर गुच्छेदार घुँघराले बाल, कमान-सी मूँछे—मानो, साक्षात् कार्तिकेय। उम्र भी कोई अधिक नही—बाईस-तेईस के लगभग। लेकिन माली हालत जरा गिरी हुई है। मकान, जमीन-जायदाद वगैरा कुछ भी नही है। किसी प्रेस मे काम करता है। तनख्वाह भी कोई खास अच्छी नही, कुल बीस रुपये। ओवरटाइम खटने पर कुछ अलग से भी मिल जाते है। परिवार मे माँ और एक भाई जो किसी जमीदार की कचहरी मे अभी काम सीखता है, शायद जल्दी ही कुछ वेतन मिलने वाला है।" नाई से सारी बाते सुन लेने पर भी रासमणि बोली, "अपना घर ही नही है तो मैं लडकी को कहाँ भेजूंगी।"

"पर, दीदीमनी, लडके की माँ यह भी कह रही थी कि मानिकतल्ला मे कही बयाना दे रखा है, जमीन पडी है—वही एक-दो कमरे वाला खपरैल का मकान बनवा दे—टट्टीघर वगैरा कुल मिलाकर छ सौ मे हो जाएगा। फिर वे दहेज मे नकद एक पैसा भी नही लेगी। इसमे बुरा ही क्या है आपकी बेटी अपने मकान मे ही रहेगी।"

रासमणि बोली, "छ सौ रुपये नकद। ऐसे लडके को छ: सौ नकद दूँगी—

गहने तो जो है वे अन्दाजन पच्चीस-तीस तोले के होगे। शायद छ सौ के होगे पर ऊपरी चीज-बस्त और दूसरे खर्च। ना बेटा, इतना कहाँ से लाऊँगी ? यह रिश्ता अपने वश की बात नही। मै एक गरीब बेवा ही तो हूँ।"

नाई फिर समझाने लगा, "दीदीमनी, मकान तो आपकी बिटिया का ही रहेगा। उसमे तो आपके ही बेटी-दामाद रहेगे। वह बूढी सास भला कितने दिनो की मेहमान है ? गहने—न हो तो जरा कम ही दे दीजिएगा।"

रासमणि बोली, "तो फिर पहले वह मकान की ज़मीन लड़की के नाम करदे। घर मै बनवा दूंगी—छोटा भाई भी तो उसी मे रहेगा। सास के नाम ज़मीन है—अगर कही सास-बहू मे न पटी, तो ?"

"यह तो नामुमकिन है। पट्टे की जमीन भला अभी कैसे बेची जा सकती है। एक उपाय है, वे पहले जमीन छोड दे, फिर आपकी लडकी के नाम लिखा-पढी करा दे पर इसमे फिर सलामी देनी पडेगी।"

"तो फिर तुम इस रिश्ते की बात छोडो—कोई दूसरा लडका देखो।"

यह नया नाई बडा ही चालाक था। बडी व मँझली लडकी के रिश्ते जिसने कराये थे, रासमणि ने श्यामा की दुर्दशा के कारण उसे नही बुलाया, पर नाई ने उनकी सारी बाते जान ली थी। जरा आँखे नीची करके बोला, "इतनी जल्दी साफ इन्कार करना ठीक नही दीदीमनी। जरा सोचकर देखिये। नया रिश्ता कहाँ से ढूंढ दूँ। अच्छा रिश्ता तो ढूंढना चाहिए ही ऐसी अच्छी लडकी के लिए। पर आप तो जानती ही है यह देश ही विचित्र है। जहाँ भी जाता हूँ आपकी ससुराल की बाते वहाँ पहले से ही पहुँची हाती है। बहुत अच्छी-अच्छी जगहो पर तो कोई बात ही नही सुनना चाहता। फिर इतनी बडी लड़की घर बैठी है। यह भी तो एक मुश्किल ही है। पूछते है सब, इतने दिनो तक क्यो नही हुई शादी ?"

रासमणि का चेहरा अपमान से तमतमा उठा। दृष्टि कठोर हो उठी। बोली, "तो नही होगी तो लडकी की शादी ही नही करूँगी। तुम अब जाओ—हो सके तो दूसरा रिश्ता ढूंढना—'

पर नाई भला कब पीछे हटने वाला था। वर-पक्ष से अच्छे-खासे इनाम की आशा थी उसे। उमा की सबसे बडी बहन कमला से जाकर कहा। कमला खुद तो अच्छे पति से ब्याही गई थी अत दुनिया मे बुरे लडके ही ज्यादा है यह मानो उसे विश्वास ही नही होता था। और श्यामा की शादी तो दुर्भाग्य है। ऐसा ही बार-बार क्यो होगा भला ?

कमला ने माँ को समझाया, "इतना सुन्दर कार्तिक-सा लडका है। मैने उनसे भी कहा था, वे कहते है यदि माँजी बुरा न माने तो मैं कुछ रुपये दे दूँ।"

रासमणिने सूखी हँसीके साथ कहा, "बुरा माननेका तो सवाल ही नही उठता।"

कितनी ही बार रासमणि को दामाद से मदद लेनी पडी है। नकद रुपये हाथ

पसारकर कभी नही लिए तो क्या वह अपनी शहर के पास की जमीन के बाग-बगीचे की पैदावार चावल-दाल, साग, फल-फूल तो आजकल प्राय भेजता रहता है। ये सारी चीजे उसी के खेतो और बाग की होती है या नही इसमे रासमणि को सन्देह है पर वह अधिक पूछताछ नही करती। वह क्या जानती नही कि हालत अब उतनी खराब नही है। परचूनी का पावना अब काफी कम हो चला है, साग-भाजी का खर्च भी अब उतना नही होता—यह उनके ऊपर कितना बडा अहसान, यह तो अन्तर्यामी ही जानते है। 'वृद्धस्य तरुणी भार्या' के नाते उन्हे पति से गहने तो काफी मिले थे पर आखिर वह तो कुबेर का भण्डार नही है। कलकत्ता जैसे शहर मे किराये का अलग मकान लेकर रहना—जमीदारी की शान की यही एक आदत वह छोड नही पाई थी—इसी मे तो कितने ही रुपए खर्च हो जाते है। एक नौकर भी रखना पडता है, नही तो सारी देख-भाल सौदा-सुल्फ खरीदना वगैरा कौन करे? और गगरी का जल तो घटते-घटते कभी न कभी चुकता ही है।

रासमणि पल भर चुप रहकर बोली, "रुपयो के लिए नही सोच रही। दामाद से तो ले ही रही हूँ, और हो सकता है जरा-से आश्रय के लिए उसी के द्वार खड़े होना पड़े। पर लडका भी तो कोई खास अच्छा नही है। छापेखाने की नौकरी—'

"पर नाई तो कह रहा था वह जल्दी ही अपना छापाखाना खोलने वाला है। अपने ही किसी दोस्त के साझे मे।"

"नाई तो कहता है पर उसकी सारी बातो पर तो विश्वास नही किया करते, बेटी। जो सामने है वह तो इतना ही है। लडकी को हो सकता है बर्तन-भाँडे भी खुद ही माँजने पडे और मुहल्ले के नल से पानी भी भरना पडे।"

"सिर पर बोझ पडते ही सब ठीक हो जाएगा। इतना सुन्दर लडका—उमी के साथ कितना अच्छा लगेगा, यह भी तो जरा सोचो, माँ।"

"फिर बाहरी चीजे देखकर भूल रही हो। एक बार ठोकर खाकर भी तुम्हारी आँखे नही खुली?"

"पर बार-बार क्या एक ही-सा होता है। फिर डॉक मे उनका मकान आ गया, नही तो क्या ऐसी दयनीय दशा होती?—वे तो कह रहे थे लडका बातचीत से बडा भला जान पडता है, छापेखाने के दूसरे मूर्खों जैसा नही है। अगर यह सही है तो क्या वे उसे एक अच्छी-सी नौकरी नही दिला सकते कही?"

रासमणि लम्बी साँस छोडकर बोली, 'देखो, तुम लोग जो उचित समझो, करो। मैं तो कुछ भी अच्छी तरह सोच नही पा रही हूँ। तेरा वर यदि उचित समझे तो वही सम्बन्ध पक्का कर लो ''। खुद तो वह एक भी अच्छा लड़का नही बता सका अभी तक।"

कमला नीचा मुँह किए फर्श की एक छेद मे अँगुली डाले रगीन सीमेण्ट का एक तह-सी खुरचती हुई बोली "माँ तुम तो जानती ही हो। वे यह सब कुछ

जानते नही।—घर मे दूसरा कोई बडा भी नही है। इसीलिए कुछ भी नही कर सके। फिर कही भी लड़का देखने जाएँगे वही कुछ-न-कुछ पता लगाने की चर्चा होती है। तब ? उनकी भी नाक कट जावेगी। सभी कहेगे इन्होने भी वही शादी की है।"

अपने पेट की औलाद के मुँह से भी वही इशारा पा रासमणि का हृदय रो पडा। भगवान् जानता है कि उनका कोई अपराध नही।

वे आफत के दिन उन्हे आज भी अच्छी तरह याद है। वृद्ध पति इलाज के लिए कलकत्ता चले आए। सात-आठ दिन बाद सौतेले लडके ने जाकर कहा, "छोटी माँ, पिताजी की तो अन्तिम घडी करीब है अब—आपको और लडकियो को अन्तिम बार देखना चाहते है।" रासमणि उसी वक्त वही साडी पहने बाहर निकल आई पर पुराना बूढी नौकरानी बोली, "छोटी बहू, जमीदार घराने की बात है यह ! जो कुछ भी गहने वगैरह और नकदी है छोडना मत। लौटकर पाओगी या नही, सन्देह है।" तो भी रासमणि ने ज्यादा कुछ नही लेना चाहा तो उसी बूढी ने काठ के सन्दूक मे जो चुपचाप हाथ लगा भर-भराकर जबरन नौका पर साथ ले लिया। कलकत्ता पहुँचने पर सुनाई पडा कि स्वामी देश लौट गए है। लडका बोला, "अरे, यह क्या तमाशा है ?—आप तब तक जरा सुस्ताएँ, मैं अभी पूछ-ताछ करके आया।" और वह हमेशा के लिए खिसक गया वहाँ से।

एक महीने के लिए वह मकान किराए पर लिया गया था। लम्बा-चौड़ा मकान था। उस वक्त भी कुछ बर्तन वगैरह फैले पड़े थे। दवाइयो की शीशी-बोतले, मैले फटे-पुराने कपडे-लत्ते। जल्दी-जल्दी छोड भागने के चिह्न सर्वत्र दिखाई पडते थे। वही बैठकर भूखी-प्यासी रासमणि ने सारे दिन प्रतीक्षा की, फिर लड़कियों को पडौसी महिला और नौकरानी के ज़िम्मे छोड वह फिर ससुराल अकेली ही रवाना हुई। साथ मे सिर्फ़ एक पुराना नौकर गया। ससुराल मे पता लगा कि उधर उनके वृद्ध पति को हवा बदली के बहाने घर ले जाकर यह दिखाया गया था कि छोटी बहू भाग गई है। (उस जघन्य कलक को सुनकर आज भी गगा मे डूब मरने की इच्छा होती है ! ) नौकर के साथ कुल-त्याग किया है। गहने-कपडे, रुपए-पैसे सब साथ ले गई है—और क्या सबूत चाहिए। बस बूढा बीमार तो था ही बेहोश हो गया। कब वसीयतनामे पर हस्ताक्षर किये शायद ही यह उसे पता चला हो। बेहोशी मे ही उनके अँगूठे की मुहर लगा, चश्मदीद गवाहो से भी हस्ताक्षर करा लिये गए। वह जानते थे कि अभी काफी दिन जीवित रहेगे, कलकत्ता मे जाकर कुछ आराम भी हुआ था। पर हवा बदलने के लिए पश्चिम चलने की बात पर उन्होने यही कहा था, "इसके पहले देश लौट चलो, छोटी बहू को साथ ले ले। उसके सिवाय किसी को भी मेरी सेवा करनी नही आती है।" पर जब इतनी उम्मीद से लौटे तो छोटी बहू के बारे मे ही ऐसी बाते सुनकर भला

वे आहत क्यो न होते ?

रासमणि को मकान मे अन्दर घुसने की मुमानियत हो गई। कहा गया कि वह कुलत्यागिनी है। इसलिए स्वर्गीय जमीदार पति उसके अथवा लडकियो के भरण-पोषण की कोई व्यवस्था नही कर गए। वसीयतनामे मे उसके उल्लेख के साथ अधिकाश चल सम्पत्ति व जायदाद वे अपने बडे लडके तथा थोडी-बहुत दूसरे छोटे भाइयो को दे गये है। असल मे उन्हे तो यही आशका थी कि अन्तिम समय निकट जानकर रासमणि ही कही सारी जायदाद अपने नाम न लिखा ले। और भी सुना कि वह पति की विवाहिता स्त्री नही है—रखैल है—इसे प्रमाणित करने का सबूत भी देवर के हाथ मे है।

उसी दिन रासमणि बेचारी ससुराल से लौट आई और फिर कभी वहाँ नही गई या कहिए न जा सकी।

रासमणि फिर एक लम्बी साँस लेकर बोली, "जो अच्छा समझो करो, बेटी, दामाद की सलाह ले लो, मैं अब और कुछ नही सोच सकती।"

कमला ने खुद लडका नही देखा था, केवल नाई के मुँह से ही रूप का वर्णन सुनकर और बिना कुछ देखे-सुने ही एक तरह से ज़बरन वही रिश्ता पक्का कर दिया।

## 4

उमा की शादी तो निर्विघ्न हो गई। मकान पहले ही बनवा दिया गया था ताकि नई बहू सीधी नये मकान मे ठहर सके। मिट्टी से चिनी ईंटों की दीवाल चूने से बनी फर्श और खपरैल की छत। पर छ सौ पूरे नही पडे, कुछ और भी रुपये लगे। लेकिन कितने लगे यह रासमणि नही जानती, चूंकि अन्त मे उन्होने इन्कार कर दिया तो कमला ने ही बाकी के रुपये चुपके से उमा की सास को दे दिए थे।

विवाह-मण्डप मे वर को देख सभी ने एक स्वर से उमा के भाग्य को सराहा। 'शुभदृष्टि' के समय तो वह अच्छी तरह नही देख पाई पर बाद मे उमा ने भी अच्छी तरह वर को देख लिया। श्यामा की अनुपस्थिति उसे काफी अखरी थी। सच तो यह कि वह काफी घबडा उठी थी, पर पति को देखने पर उसका सारा दुख जाता रहा। बल्कि नरेन के एकाएक आ धमकने से जब एक दबी धिक्कार की लहर चारो ओर उमड पडी तो उसकी माँ सिहर उठी, उसके हाथो को अपने हाथो मे लेकर बोली, "पता नही बेटी, यह कैसी शादी है।" उस वक्त उमा को श्यामा के भाग्य पर दया हो आई थी, और साथ-ही-साथ यह विचार भी कि मेरा भाग्य ऐसा कदापि नही निकलेगा जिसके पास इतना रूप है उसमे गुण भी बहुत-से होगे। अपने स्वामी के सौभाग्य पर उस दिन उसे थोडा गर्व ही हुआ था।

पर पहले दिन उसे खटका लगा। इक-मजिला नीची खपरैल का मकान !

जीवन मे उसने कभी ऐसे मकान मे रहने की कल्पना तक नही की थी। कुआँ भी नही खुदा था, न अभी वहाँ नल ही लगा था, पडौस के कुएँ से जल लाना पडता था। भले आदमियो की चहल-पहल भी कोई खास नही नजर पडी। उसकी सास, दयामयी, ने बहुत थोडे रिश्तेदारो को न्योता दिया था, बोली, "नकद तो एक पैसा भी नही मिला। खर्चा कहाँ से करूँ, लडके की शादी मे भी आखिर कर्ज ले लूँ?"

सास का नाम दयामयी किसने रखा, कौन जाने, पर उमा को तो उनमे दया का एक कण भी नही मिला। नारी-पुरुष-सी गठन, चौडी-चौडी हड्डियाँ, जवान मर्दो की तरह गले की आवाज भी वैसी ही मोटी, भद्दी। उमा पालकी से उतरी भी न थी कि वह बोल उठी, "यही है सुन्दरी बहू, इसी को सुन्दरी कहते है? वह नाई का बच्चा गया कहाँ? खैर आने तो दो उसे। मेरे लडके के सामने तो यह कुछ भी नही है।"

उसके बाद उसका हाथ झटककर बोली, "आओ, उतरो, अच्छी माँ की बेटी। बूढी हाथिन-सी बहू को क्या मैं गोद ले पाऊँगी?"

किसी तरह आरते वगैरह की रस्म अदा कर उमा घर मे घुसी। तीन या चार ही स्त्रियाँ थी बस। शायद अच्छी तरह शख भी नही बजे। कौड़ी खेलने की रीति-नीति भी नाम मात्र के लिए ही हुई। अच्छा हुआ जो कुशडिका (माँग मे सिन्दूर भरना आदि प्रथाएँ) मायके मे ही कर आई थी, मन ही मन सोचा उमा ने, 'नही यहाँ तो वह भी नही होती।' इसके बाद ही सास उसकी देह पर एक विलायती कोरी साडी फेक कर बोली, "लो यह बनारसी साडी चटपट बदल डालो। वहाँ पानी रखा है मुँह-हाथ धो लो। पर देखना, पानी किफायत से खर्च करना, यह तुम्हारे मायके की तरह नलका पानी नही है, बडी कठिनाई से खुद मुझे लाना पडता है दो चार नौकर-चाकर तो है नही मेरे।"

उमा को काटो तो खून नही। उसका पति शरत् कनखियो से एक बार उसकी ओर देखकर वहाँ से हट गया, और एक तरफ जाकर उमा के मायके से आई दासी को बुलाकर बोला, "तुम ही क्यो नही उसके कपडे बदलवा देती?"

दासी ने फुसफुसाकर कहा, "मैं तो कब की चली गई होती, पर आपकी माँ की मूरत देख मुझे डर लग रहा है।"

"अरे कुछ डर नही है। माँ का तो स्वभाव है यह, उनकी बातो पर ध्यान न दो।"

शरत् चला गया तो दासी ने उमा के कपड़े बदलते हुए कहा, "तुम्हारा पति बड़ा भला आदमी है, दीदी। इतने मे ही तुम्हारे लिए कितना दर्द है उसके दिल मे, तुम्हे कठिनाई हो रही है, देखकर खुद ही मुझे बुलाकर तुम्हारे पास भेज दिया। पर तुम्हारी वह सास न जाने कैसी है?"

इतने मे दयामयी आ गई।

"भला, बिना कुछ कहे-सुने तू इस कमरे मे क्यो आई ? हमारे यहाँ दास-दासियो की बहार नही है। दासी बिना यदि इस नवाब-नन्दनी का काम नही चलता तो माँ-चुडैल ने इस खपरैल के मकान मे बेटी की शादी ही क्यो की ? यहाँ पानी भरना पडेगा, बर्तन माँजने पडेगे—सारा काम खुद करना होगा। दास-दासियो की शान यहाँ नही चलेगी।"

"सो तो दो दिन बाद होगा ही, माँ। आज तो वह नयी दुलहिन है इसीलिए तो · मैं साथ आई हूँ ··"

"चुप रह ! हरामजादी। तडाक से जवाब देती है ! इतनी हिम्मत ! यह मेरा मकान है, मैं जो कहूँ वही होगा।"

दासी कुछ देर तक दयामयी का मुँह ताकती रह गई। फिर उमा की जो बनारसी साडी तह कर रही थी उसे वही नीचे पटककर बोली, "दीदी तुम सँभालो अपने पति की गृहस्थी। मै तो चली। हम अपने गाढे पसीने की कमाई खाते है, जहाँ काम करते है वहाँ इज्जत नही बेचते। मै भला इनकी गालियाँ क्यो सुनूँ। ऐसे भद्र घर की ऐसी-तैसी।"

दयामयी की आँखे आग बरसाने लगी, "निकल हरामजादी, अभी निकल। फिर कतरनी-सी जबान चलाती हो।

"क्यो न चलाऊँ। मैं क्या तुम्हारे बेटे की 'बहू' हूँ जो दबकर तुम्हारी गालियाँ सुनूँ ?"

दासी चली गई। उमा हतप्रभ हो उठी, अनजाने आँखे डबडबा आई। आँसू देखते ही दयामयी गरज उठी, "बस-बस हो चुका—ज्यादा नाज-नखरे न करो। झटपट साज-सँवार लो सब कुछ। ऐसे कौन हजार-पाँच सौ रुपए दिए है तुम्हारी माँ ने, जो शान दिखाकर एक दासी भी साथ भेज दी। और भेज भी दी तो भला ऐसी मुँहफट दासी भेजता है कोई। तमीज नही है जरा भी। भद्र घराने मे कभी काम ही नही किया जैसे। समधिन कैसी है यह तो दासी को देखकर ही पता लग गया। जैसा नीच घराना है वैसी ही दासी भी है।· मैं साफ कहे देती हूँ, आँखे तरेरकर, जो यह दासी चली गई है इसका बदला मैं तुम से लूँगी। समधिन से कह देना जाकर। बीतने दो कुछ वक्त अभी।" शान्ति और सान्त्वना की बात तो अलहदा है पर डर से उमा उसे यह भी न बता सकी कि वह उनकी बारह महीनो की दासी नही थी। 'घर की दासी को कोई नयी दुलहिन के साथ नही भेजता।' यह सब कहने पर और भी गालियाँ न सुननी पडी तो।—आँसू पीकर नाम मात्र को हाथ-मुँह धो वह बाहर आ बैठी। जरा भी देर करने की हिम्मत न पड़ी। इतने मे ही एक आवाज आई, "नई बहू को जलपान नही कराया अभी ?"

जवाब मिला, "अभी-अभी तो मायके से निगलकर आई है। अब और किस पेट मे भरेगी। फजल लोक-दिखावा मुझसे नही होता।"

उस दिन उसके बाद दिन भर उमा रोती रही। पर फिर भी चोरी से अगर कोई देख ले तो खैरियत नही। इतने पर भी एक अभयवाणी को वह महामत्र की नाई जपती रही—अपनी दासी की बात, 'तुम्हारा पति बडा भला आदमी है।' यही था अब उसका एकमात्र सहारा। इसी एक आशा की लौ को वह अपने अन्तर की समस्त भावना, समस्त कामना से घेरकर चारो ओर से उठे हुए उस निष्ठुर बवण्डर मे सँजोये रही।

'बहू-भात' का आयोजन भी सामान्य ही था। कुल मुश्किल से पचास आदमी जीमे। दयामयी तथा अन्य दो औरतो ने खुद ही रसोई की। कोई खास नेगाचार भी नही हुए और हलवाई भी नही बुलाया गया—मानो गुड्डे-गुडिया की शादी हो। उमा ने दोनो बहनो की शादी मे सारी बाते सुनी थी, मुहल्ले मे भी कई शादियाँ देखी थी पर ऐसी भी शादी कही होती है, यह उसने कभी नही सुना था।

तो भी उसने सोचा, पति यदि अच्छा हो, मनपसन्द हो तो ये बाहरी तुच्छ दिखावे ठीक-ठीक न भी हुए तो क्या। ईश्वर ने वहाँ तो कजूसी नही की। पति के प्रेम के अमृत-प्रलेप से उसके सारे जख्म भर उठेगे।

पर उसे क्या पता था कि विधाता ने उसके लिए सबसे बडा परिहास अभी उठा रखा है।

विवाहोपरान्त के सारे लोकाचार ज्यो-त्यो समाप्त होने और सबके चले जाने पर उमा धडकते हृदय से उस शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा करने लगी— पति की ओर से प्यार का पहला सकेत उसे मिलेगा, पति शायद उसे पास बुलाएगा या उसका हाथ पकडकर सीने से लगाएगा अथवा कुछ और जो उसने किसी से कभी नही सुना —एक दबा स्वर सुनाई पडा, "सुनो, जरा इधर आकर बैठो।"

हृदयगति बन्द होते-होते बची। पर कण्ठ स्वर कैसा अजीव-सा लग रहा है। यह क्या।

उमा बैठी-बैठी पसीने से तर हो रही थी। शरत् ने फिर पुकारा, "खूब जरूरी बात कहना है तुमसे, इधर ध्यान दो। मैं प्रेमालाप करने नही बुला रहा हूँ आओ, पास खिसक आओ।"

शेड की रोशनी मे उमा को अच्छी तरह दिखाई नही दिया वह चुपचाप बैठी रह जाती। दृष्टि और भी धुँधली हो गई। सारा मकान निस्तब्ध था—कोई भी आहट नही ले रहा—उमा यह अच्छी तरह जानती थी। वैसा कोई इस मकान मे रहता ही नही।

शरत् बडबडाता हुआ खुद ही उसके पास खिसक आया, उसके मुँह के पास मुँह ले जाकर बोला, "देखो, एक बात मैं आज ही साफ-साफ कह देना चाहता हूँ। मुझे गलत न समझना। मुझसे कोई आशा मत करना। माने, पति से पत्नी जिस प्यार

की आशा करती है वैसा प्यार मैं तुम्हे नही दे सकता। माँ से तग आकर ही मैंने शादी की है, लेकिन तुम्हारे साथ सहवास करना मेरे लिए सम्भव नही।"

उमा क्या पागल हो गई है? यह क्या? वह यह सब गलत सुन रही है? कही देह की रक्त-सचालन क्रिया ही न बन्द हो जाए?

तब वह क्या सोच रही थी, क्या सुन रही थी, आज उसे अच्छी तरह याद नही आता। उस रात की बाते उसने आगे भी अनेक बार सोची उनका कुछ अर्थ भी लगाना चाहा, पर····

मानो, कोई लाखो कोसो की दूरी से कुछ बोल रहा है, 'क्यो?'

शरत् बोला, "तुम्हे पता है रखैल किसे कहते है? नही? तभी तो! याने, मै एक और लडकी से प्यार करता हूँ, सहवास भी उसी के साथ करता हूँ। अत उसके सिवाय मै और किसी के साथ जीवन नही बिता सकता। तीन वर्ष की पुरानी आदत है, यह अब भला कही बदल सकती है? लडका चरित्रहीन हुआ जा रहा है, इसलिए माँ ने जबर्दस्ती तुमसे शादी की है, काफी तग किया करती थी। इसलिए मुझे ज़बरन शादी करनी पड़ी। नही तो मेरी कतई इच्छा नही थी। पर करता क्या—माँ वहाँ तक जाकर हल्ला मचाती थी। अत गुलाबी ने भी सलाह दी, 'क्यो बेकार रोज-रोज़ की आफत मोल लेते हो—कर न लो एक शादी।'—मैंने सोचा था, लडकी वाले कुछ तो जाँच-पडताल करेगे ही। और मेरी माँ कैसी है, जान लेने पर कोई भी अपनी लडकी मुझे नही देना चाहेगा। पर तुम्हारी माँ ऐसी एकाएक राजी हो जाएगी, यह कौन जानता था। तुम तो वाकई खूबसूरत हो, माँ ने खर्च भी काफी किया—फिर ऐसे घर मे क्यो ब्याहा?"

उमा ने केवल एक ही प्रश्न पूछा था—"आपने उसी से शादी क्यो नही की?"

प्रशान्त भाव से कहा शरत् ने—"राम राम। अरे वह तो वेश्यापुत्री है, पर वह भी कमाल की खूबसूरत है। नीची जाति की है पर चेहरे पर कैसा लजीलापन है। और वह मुझे खूब चाहती है। मैं तो उसे अधिक पैसे भी नही दे पाता, माँ महीने की पहली तारीख को ही छापेखाने मे आकर सारी-की-सारी तनख्वाह खुद वहाँ खडी रहकर वसूल कर लेती है। केवल ओवरटाइम के पैसे ही मुझे मिल पाते है, पर वे भला कितने होते है। गुलाबी ही मुझे खिलाती है। उसकी माँ का मालमत्ता कुछ जमा था, और इधर-उधर मे भी वह कुछ कमा लेती है, उसी से काम चल जाता है। नही तो, दो प्राणियो की गुजर कैसे चले, तुम ही कहो, आज-कल क्या कम बुरा ज़माना है?"

उमा आधुनिक लडकी नही थी। उस दिन तो यह न उसके दिमाग मे ही आया कि पूछे इस हालत मे किस अधिकार से शरत् ने शादी की? उसके नारी जीवन को बर्बाद करने का क्या अधिकार था उसे? पर उस जमाने मे तो लड़कियाँ पति प्रेम से वञ्चिता हुईं तो अपने ही भाग्य को कोसती थी। उमा ने भी उस वक्त

वही रुख अपनाया। दरअसल उसके पास कहने को कुछ था ही नही—अत वह विस्मित हो, जड-सी बैठी रही।

और शरत् केवल माँ से तग आकर ही एक लडकी का सारा जीवन बर्बाद करने चला है—यह बात कहते हुए ज़रा भी नही झिझका। उसकी जबान ज़रा भी नही लडखडाई।

पर हाँ आश्वासन तो उसने दिया ही, कहा, "हाँ, मै तुम्हे कोई कष्ट नही दूँगा। तुम पर भला क्या नाराजी। तुम अपनी गृहस्थी लेकर रहो, मै अपना काम लेकर रहूँगा। माँ के साथ भी यही तय हुआ कि तुम्हारी गृहस्थी के लिए एक बहू ला दूँगा। बस, फिर मुझे तग न करना है। उन्होने शायद यही सोचा था कि सुन्दर बहू आ जाने पर मैं खुद ही उस पर लट्टू हो जाऊँगा और कुछ नही कहना पडेगा। पर अपने बेटे को तो वह अभी पहचानती नही!"

जरा मुस्करा उठता है शरत्। शायद अपने इस कडुवे मजाक का मजा लेने ही पल भर रुका, फिर बोला, "बस यही पाँच-छ दिन। इसके बाद फिर क्या मै इस ओर मुँह करूँगा। सोचा है?· ····ये कुछ दिन बीच मे तकिया रखकर सोओ। और करोगी भी क्या? देखो। मैने सब कुछ साफ-साफ बता दिया है। फिर मुझे कभी दोष न देना।"

# चतुर्थ परिच्छेद

## 1

दो-तीन दिन घर मे बिताकर जब नरेन ने पुन कलकत्ता लौटने की इच्छा प्रगट की तब स्वभावत. सास-बहू के चेहरो पर एक ही प्रश्न-चिह्न दिखाई पडा—'इसके बाद?'

पर नरेन बुद्धू की तरह हँसने और सिर खुजलाने लगा, कोई उत्तर न दे सका।

क्षमा ने जरा कठोर स्वर मे ही पूछा—"मुझ पर रहम करके अपनी स्त्री और बच्चे को ले जाने का इन्तजाम करो, मेरे लिए यही काफी होगा। माँ गगा को यह देह समर्पित कर मैं भी निश्चिन्त हो जाऊँ।"

नरेन ठहाका मारकर बोला, "खासा तमाशा है! कल रात को वह भी यही कह रही थी, माँ का कोई इन्तजाम करो—तो मरकर छुटकारा पाऊँ। हा · हा ···हा· ·शायद तुम दोनो आपस मे यह सलाह करके कह रही हो।"

"इसमे सलाह करने की कोई बात नही। तुम जैसो के साथ जिसका पाला पडता है—इसके अलावा उनके लिए दूसरा इलाज ही क्या है?"

"वाह वा। सारा कसूर क्या मेरा ही है। झटपट शादी कर मुझे ससारी बना दिया इसलिए अब क्या सारा बोझ मुझे ही ढोना पडेगा ?"

"शादी जब की थी तब काफी रुपये-पैसे भी थे। इतने थे कि जीवनभर बैठकर खा सकते थे। तुम लोगो ने सब-कुछ फूंक दिया तो यह भी क्या मेरा कसूर है ?"

"खूब। तो मैं क्या मर्द होकर जरा भी शौक न करूँ ?"

ऐसे नालायक से बात करना ही बेवकूफी है, यह सोचकर क्षमा चुप ही हो गई। पलभर सोचकर नरेन बोला, "खैर, देखा जाएगा, कुछ दिन तो घूम ही आऊं।"

"उसके बाद ? फिर हमारे ये कुछ दिन कैसे कटेगे ?'

"राजा के बिना भी कही राज-काज रुकता है ? इतने दिन कैसे कटे ? है•• है • तुम्हारे पास भी कुछ तो होगा ही। तुम क्या कुछ कम चालाक हो।"

घृणा से इतनी ओछी बात का जवाब भी नही दिया क्षमा ने।

अपने कपूत के चले जाने पर सिर्फ तुलसी-चौरे पर जाकर सिर पटकने लगी, 'भगवन मुझे उठालो। प्रायश्चित्त क्या अभी पूरा नही हुआ, ऐसा मैंने क्या पाप किया है, भगवन् !'

इसके बाद फिर वही लम्बी इन्तजारी। दिन और राते मानो और भी दीर्घतर होने लगी। ये दिन कैसे कटे यही समस्या थी उनकी। इस बार सास के कारण श्यामा और भी एक आफत मे पडी। नरेन के जाते ही उन्होने दो-चार दिन तो खाना-पीना ही छोड दिया। जो कुछ थोडा अनाज जुटा पाती उसे पुत्र-वधू तथा पोते के लिए रख देती। लेकिन फिर श्यामा के बहुत हठ करने पर उन्हे एक जून तो खाना ही पडता। पर वह भी नाम मात्र के लिए ही—एक छोटी चिडिया से कम खाती वह।

पहले-पहल श्यामा ने उन्हे बहुत समझाया, इतना-सा खाकर कैसे जिन्दा रहोगी ?

"अब भी क्या बचे रहने की जरूरत है ? अब भी जिन्दा रहने को कहती हो ? आत्महत्या महापाप है, इसीलिए नही करती। अन्यथा मुझे तो मृत्यु का तिल मात्र भी डर नही है, बहू !"

"आपके बाद हम लोग कहाँ जाएँगे ? हमारा क्या हाल होगा ?" श्यामा पूछती।

"कोई भी उपाय मैं नही सोच पा रही हूँ बहू, यही तो रज है मुझे। फिलहाल जैसे दिन कट रहे है इससे बदतर और क्या होगे ? अभी तुम्हारी माँ जीवित है, मुट्ठीभर अनाज तो तुम्हे मिल ही जाएगा—यह तो मै जानती ही हूँ।"

बहू को भी कोई उचित उत्तर नही सूझता।

नरेन का कोई समाचार ही नही मिलता। देवेन का भी वही हाल था। राधारानी जरा लिख-पढ़ सकती थी, पर खत लिखने की आदत जो नही थी उसे। इसी

बीच देवेन ने सिर्फ एक ही पत्र लिखा था, जिसमे नरेन को लेकर सिर्फ गालियो की बौछार थी, पर इन दो असहाय औरतो के दिन यहाँ कैसे बीत रहे है इसकी चर्चा भी नही थी—उसमे।

बीच मे एक बार जब न रहा गया तो क्षमा ने ही श्यामा से बडी बहू के नाम पत्र लिखवाया। बालक क्या भूखा मर जाए ? देवेन कम-से-कम पाँच ही रुपए भेज दे। देवेन ने भेजे तो पर दो ही रुपये। साथ में लिखा था, "यहाँ एक अग्रेजी पढा-लिखा डाक्टर आ टपका है—हालाँकि इलाज करने मे वह मेरे मुकाबले कुछ भी नही, फिर भी अग्रेजी बोल-बोलकर मेरे किये-किराये पर पानी फेरना चाहता है। अभी तो मेरी गृहस्थी का खर्च चलना ही कठिन हो गया है। नही तो इन हजरत को तो मैं अच्छी तरह देख लेता।"

श्यामा माँ को लिख सकती थी, और क्षमा ने भी इस ओर इशारा न किया हो ऐसा भी नही, पर वह अटल थी। किसी भी हालत मे वह अपनी माँ के सामने हाथ पसारने को राजी नही थी। कम-से-कम वह अपनी यह हालत माँ को नही बतायेगी। सास ने भी बहू का इरादा जानकर साफ-साफ कहने का कभी साहस नही किया।

पर छ महीनो मे ही क्षमा का स्वास्थ्य बहुत गिर गया। खून की कमी के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। हाथ-पाँवो मे सूजन आ गई। अब श्यामा सचमुच घबडाई। पर परदेश मे वह अकेली क्या करेगी ? एक तो उसकी छोटी उम्र, उस पर देखने मे खूबसूरत—ये दोनो मिलकर क्या आफत ढाते है, आजकल श्यामा यह पद-पद पर महसूस करती। पडौसिन जुलाहिन वैसे काफी मदद करती, तेली-पाडे के दो-तीन परिवार भी भरसक सहायता करते, इससे आफते पास तो नही फटकने पाती, पर इर्द-गिर्द तो मँडराती ही रहती—श्यामा को इसका बार-बार आभास मिलता।

कच्ची उम्र के उन लडको की इस पाडे मे भी कमी नही थी, जो दिन-दोपहरी के सन्नाटे और साँझ के अँधेरे मे सीटी बजाते हुए दीवारो के आस-पास घूमा करते है, पेड की डालो पर चढ दुमजिले की खिडकी से झाँकने वाली की नजर अपनी ओर खीचने का व्यर्थ प्रयास करते है—और जो, अगर धनी है तो, दूतियो द्वारा गहने-कपडो का लालच भी देते है। पर जुलाहिन के ही पाँच-पाँच जवान लडके थे। वह प्राय ही ऊँची आवाज मे कह जाती, "बहू, यदि कोई जरा भी बुरी नजर उठाए या कोई इशारा-फिशारा करे तो उसी वक्त मुझे बता देना, बेटी—दिन-दहाडे मेरे बेटे उसकी गर्दन मरोडकर तुम्हारे कदमो पर ला पटकेंगे, हाँ, अगर वे पाँचो लाठी उठा ले तो कम्पनी की सारी फौज भी उनका बाल-बाँका नही कर सकेगी।" इसलिए आगे बढने का किसी को हौसला नही होता।

आखिर महीने भर सोचने-विचारने के बाद श्यामा ने अपनी माँ को ही खत

लिखा। सब कुछ साफ-साफ लिखना ही पडा। झूठ-मूठ छिपाने से अब कोई लाभ नही था।

पर उस खत के जवाब से तो श्यामा को जैसे काठ मार गया। अपने पति के किसी भी आचरण से वह आज विस्मित न होगी, ऐसी वह धारणा भरे थी पर माँ का उत्तर पाकर तो उसे ऐसा लगा कि उसे पहचानने मे उसने अभी काफी भूल की है।

माँ के पत्र की तारीख मिलाकर श्यामा को पता चला कि यहाँ से जाकर थोडे दिन बाद ही नरेन ने रासमणि से भेट की और श्यामा के नवजात बच्चे की किसी काल्पनिक बीमारी का सविस्तार वर्णन कर कुछ मदद माँगी। नरेन के स्वभाव की जानकारी रहने पर भी उसके मुँह से दयनीय वर्णन सुनकर वह स्थिर नही रह सकी, उधार लेकर कुछ रुपये दे दिए। इसके बाद दो बार और रुपए देने पर उन्हे सन्देह हुआ और माफ-साफ कह दिया 'लडकी के हाथ का लिखा खत लाये बिना मैं अब और एक अधेला भी नही दूँगी।' लाचार हो नरेन बडी साली कमला के पास गया और कृत्रिम आँसू बहाकर वहाँ से भी दो बार मोटी रकम वसूल की। दैवात् कमला एक दिन मायके आई और बातचीत के दौरान मे नरेन की बात भी चल पडी तो वह भी आइन्दा के लिए सावधान होगई। आखिर एक दिन कमला द्वारा बहुत खदेडे जाने पर नरेन ने वहाँ जाना भी बन्द कर दिया।

इसके सिवाय उस पत्र मे एक और भी बहुत बुरा समाचार था। उमा का पति कभी रात मे घर नही जाता। विवाह के पहले से ही वह वेश्यागामी है। सुना है, यह बात उसने सुहाग रात को उमा को सच-सच बतादी थी। और सासके अमानुषिक अत्याचारो की खबरे जो उन्हे दूसरे लोगो की मुँहजबानी मिलती है—खत मे लिखने योग्य नही है। उमा कुछ नही बताती, पर उसने बहुतो के मुँह वही एक बात सुनी है, अत अविश्वास की कोई गुजायश भी नही है। वैसे रासमणि को बहुत दिनो से रात को अच्छी तरह नीद नही आती, पर फिलहाल तो दौरे भी आने लगे है। अकेले रहना पड रहा है—किस दिन मरी पडी रहे—इस भय से बडी मौसी को लाकर रखना चाहा था पर वह दो-चार दिन बाद ही लड-झगडकर चली गई। इस हालत मे यदि श्यामा किसी कदर अपनी सास को समझा-बुझाकर उनके पास ले आये तो अप्रत्यक्ष रूप मे यह उनके प्रति उपकार ही होगा।

पत्र पढते-पढते श्यामा की दृष्टि धुँधला गई और आँसुओ की वैतरणी बहने लगी। क्षमा ने व्याकुल हो पूछा—"क्या लिखा है समधिनजी ने, कोई बुरा समाचार है क्या ? जरा मुझे भी तो पढकर सुनाओ।"

श्यामा आँखे पोछकर पढने का प्रयत्न करती पर केवल होठ फडफडाकर रह जाते—कोई आवाज नही निकलती। आखिर काफी देर बाद, थोडा-थोडा करके उसने सारा हाल सुना दिया। क्षमा कुछ पक्तियाँ ही सुनकर आर्तनाद कर उठी

एक बार, "हाय भगवन्, इस लडके की और कितनी कीर्ति सुनवाओगे ? अब तो उबारो, अपने चरणो मे शरण दो।" पर अन्तिम हिस्सा सुन न जाने क्या वह भी जरा आश्वस्त हुई। उमा के सुख-सौभाग्य का समाचार आने पर शर्म से उनकी नाक कट जाती—इसलिए दूसरे के दुर्भाग्य के समाचार से उन्हे अपने अनजाने ही कुछ सान्त्वना मिल गई।

वह बोली, "बहू तुम्हारी माँ तो दिल-दरिया है, इसलिए ऐसा लिखा है। भीख कैसे दी जाती है यह वे जानती है। तुम्हारी माँ साक्षात् देवी है।"

श्यामा पल भर मे आशान्वित हो उठी, बोली—"तो फिर माँ को लिख दूँ कि हम लोग आ रहे है ?

क्षमा जरा रुककर बोली, "बहू इतनी जिन्दगी तो कट गई अब और कितने दिन जिन्दा रहना है, मै जान गई हूँ कि जीव अन्दर-ही-अन्दर घुटता जा रहा है। अब और किस लिए कम-से-कम इस अपमान से तो मुझे उबार ही लो।"

इसका कोई प्रतिवाद नही कर सकी श्यामा—पर आशका से उसे रात भर नीद नही आती। दिन-ब-दिन क्षमा शय्याशायी होती जा रही है, उसके बाद तो उन्हे ले जाया नही जा सकता।

पर दो दिन बाद क्षमा ने ही बात उठाई। श्यामा को बुलाकर कहा, "बहू अब और यहाँ रुकना उचित नही। खूब समझ रही हूँ—अबकी जो गिरी बस उसी को अन्तिम समझो। हालाँकि ये लोग है, देखभाल भी करेंगे, जानती हूँ, तो भी जहाँ तक बन पडे तुम्हारी अपनी माँ के पास ही इस समय रहना उचित होगा। एक काम करो बहू, उसी मुहल्ले मे मेरे ससुर का एक वकील शिष्य भी रहता है, उसे खत लिखो, जैसे भी हो, एक कमरा ढूंढने को अपने मकान के नजदीक ही। बर्तन-भाँडे जो है, यदि जुलाहिन के लडको द्वारा थोडे-थोडे कर के भी बेच सकी—वे नवद्वीप भी तो जाते है, वहाँ भी बेच सकते है—तो दो-एक महीने का खर्च तो निकल ही आवेगा। फिर बाद मे तो वहाँ तुम्हारी माँ है ही—तुम्हारी देखभाल तो कर ही सकेगी।"

श्यामा ने इसमे कितनी ही अडचने पेश की और फिर एक बार समझाना चाहा, पर क्षमा ने रोकर उसके दोनो हाथ पकडकर कहा, "बेटी, इससे तो गगा मे डूब मरना भी मेरे लिए बेहतर है।"

लाचार हो कलकत्ता के उस वकील शिष्य को खत लिखा गया। वकील बाबू ने पत्र पढते ही जवाब लिखा, "अपना ही एक कमरा खाली पड़ा है, बिलकुल अलग। आप सानन्द वहाँ रह सकती है। इसके बाद यदि वहाँ सहूलियत न हो तो खुद ही आस-पास मकान ढूंढ लेगी।'

क्षमा जवाब सुनकर बोली, "यद्यपि लडको का बर्ताव देख उन्होने गुरु-वश त्याग दिया है, फिर भी मुझे पता था कि एकबारगी नही त्याग सकेंगे। अपने

लडके को दीक्षा दिलाने से पहले भी मुझ से अनुमति लेकर ही उन्होने दूसरा गुरु अपनाया था—वही चलो बेटी, पति-ससुर का शिष्य-वश है। वहाँ फिर भी कुछ जोर है।"

जुलाहिन से कहने पर उसके लडको ने नवद्वीप से कसेरा बुला दिया चूँकि वहाँ ब्राह्मण पुरोहित के बर्तन लेने को राजी नही हुआ था। जो रुपए मिले उससे आस-पास का कर्जा चुकाने पर केवल तीस-चालीस रुपए ही बाकी बचे। उन्ही कुछ रुपयो का सहारा ले एक दिन उन दोनो असहाय औरतो ने बहुत-से दिनो का आश्रय गुप्तीपाडा छोड दिया।

## 2

कलकत्ता आते ही क्षमा का स्वास्थ्य एकबारगी गिर गया। रासमणि ने काफी देखभाल की—कुछ दिनो बाद उन्होने लडकी से कहा, "बेटी, लक्षण अच्छे नही दीखते, अब तो तुम्हारे जेठ को लिखना जरूरी जान पडता है।"

नरेन का तो किसी को पता नही था। इस हालत मे देवेन को लिखने के सिवाय उपाय ही क्या था?

श्यामा ने जिठानी को सविस्तार पत्र लिखा—फिर भी देवेन को आते-आते चार दिन लग गए। अत मे वह जब आया ही तब क्षमा की साँस रुक चुकी थी। देवेन पास बैठकर रोने लगा। क्षमा ने बडी तकलीफ से काँपते हाथ से उसके आँसू पोछकर उसे आशीर्वाद दिया।

"माँ कोई इच्छा हो रही है तुम्हारी?" देवेन ने पूछा।

क्षमा थोडी मुस्कराई। उसके बाद बडे कष्ट से कहा, 'नरेन।'

"उसकी बात फिर मुँह पर लाई, माँ। तुम्हे शर्म नही आती।—उसका तो नाम ही मत लो मेरे सामने—साफ कहे देता हूँ।"

रासमणि अभी तक घूँघट लगाए चुपचाप बैठी थी। इस बार उन्हे भी बाध्य होकर मुँह खोलना पडा। बोली, "नरेन जैसा भी हो आखिर तो वे उसकी जननी है। खून का खिचाव कहाँ जाएगा, बेटा—तुमने भी तो कम कसूर नही किया, फिर भी तुम्हे आशीर्वाद दिया या नही।'

देवेन जल-भुन गया, "वह हरामजादा सूअर का बच्चा देखिए न जाकर किसी खानगी के घर मे पडा होगा। मै क्या उसे वहाँ बुलाने जाऊँगा।'

रासमणि ने फिर कुछ नही कहा। देवेन खुद थोडी बहुत आनाकानी करके साँझ के वक्त बाहर निकल पड़ा। साँझ बीती, रात गहराई, क्षमा की साँस बन्द होने लगी फिर भी किसी का पता नही। न देवेन लौटा, न नरेन ही। रासमणि अपनी गलती समझ गई। बहुओ से बोली, "तुम लोग थोडा गगाजल दो और हरिनाम सुनाओ—उन पाखण्डी लडको के हाथ से जल-ग्रहण करने का अपमान

शायद भाग्य मे नही है।" वह स्वय भी समधिन की छाती पर हाथ फिराकर हरि-नाम सुनाने लगी।

भोरे होते-होते देवेन आया। तब तक क्षमा आखिरी साँस छोड चुकी थी। थोडा चौका और खडा-खडा बोला, "मै क्या करूँ। इस मरी माँ के चक्कर मे तो यह हुआ। उस साले को खोज-खोजकर हैरान हो गया। एक पुरानी जगह पहुँचा कि बस उन सबसे पल्ला छुटाना मुश्किल हो गया। अन्त मे माँ के अन्तिम दम तोडते वक्त एक चम्मच पानी भी नह पिला सका। दुर्भाग्य!"

## 3

नरेन को समाचार नही मिला तो नही—लेकिन मृतक-सस्कार और तेरहवी के खर्च का सवाल टेढा है, इसलिए घाट के क्रिया-कर्म के दूसरे दिन आया। जैसे अभी-अभी खबर मिली हो—ऐसे दौडा-दौडा आया और अन्दर घुसते ही डकराने लगा—"एँ माँ नही रही! अरी मेरी माँ री।" चीख-चीखकर वह बुरी तरह रोने लगा।

देवेन थोडी देर तो चुप रहा फिर धमकी देकर बोला, "मेला-तमाशे की एक्टिग मत कर, नरो—चुप हो जा—तुझे पहचानते है सब। खबर क्या तुझे आज ही मिली है?"

"सच दादा, तुम्हारी कसम, सच कहता हूँ।" कहता-कहता नरेन उसके दोनो पैर छूने बढा—शायद शरीर छूकर शपथ करता।

"खबरदार मुझे छुआ तो। झूठा कमीन कही का। नहीं जानता तो चेहरे पर यह दाढी-मूँछ किस लिए बढा रखे है? पैर नगे क्यो है?"

नरेन को इतना सोचने की फुर्सत कहाँ थी। थोडा अचकचाकर चुप रहा फिर नाक के स्वर से रोता-सा बोला, "मैं भी तो बीमार था, आज एक महीने से तकलीफ पा रहा हूँ।"

"हाँ—एक महीने के रोगी का ही तो डील-डौल है यह। तेरी झूठी बाते सुन-कर और भी घृणा होती है।"

"देखो दादा, बहुत ज्यादा सत्यवादिता का ढोग मत रचो। तुमने वह रात कहाँ काटी थी, मैं क्या यह नहीं जानता?"

"देखा, देखा—नालायक बदमाश की झूठ पकडी गई न। देखा।"

प्राय: मार-पीट की नौबत आते देखकर रासमणि ही आगे आ गई। वे तेरहवी के सामान वगैरह जुटाने के लिए दो-तीन दिन पहले से ही यहाँ मौजूद थी। सारा खर्च भी उन्ही ने किया था—देवेन तो खबर पाते ही सिर्फ कपडे पहने ही चला आया था। इसीलिए कुछ किया नही। रासमणि ने कहा, "देवेन—इन दो-चार दिनो मे भी तुम लोग शान्ति से माँ का त्रयोदशा आदि न कर सको तो यह सब करने की

जरूरत ही क्या है । चीज-बस्त सब गगा मे बहाकर निश्चिन्त हो जाओ ।"

इस कण्ठ-स्वर से सिर्फ देवेन ही नही, नरेन भी निस्तब्ध हो गया ।

बस, किसी तरह माँ की तेरहवी होने के बाद नरेन फिर गायब हो गया । नियम भग होने के दिन भी नही रहा ।

तीन-चार दिन बाद सिर खुजलाते हुए देवेन ने कहा, "वहाँ बहुत नुकसान हो रहा है माँ, अब मै तो और इन्तजार नही कर सकता ।"

"अब और क्यो ठहरेगा बेटा, तू अब जा । मैने जब उसे गोद मे पनाह दी है तो हँडिया मै भी दे सकूँगी ।"

राधारानी श्यामा से विलग होते वक्त काफी देर रोई । वह ककाल-सी हो गई थी । सारे शरीर मे घाव—आँखो से भी अब मवाद निकलने लगा था । बोली, "मै और अधिक दिन नही जिऊँगी, बहनी, शायद यही अन्तिम भेट हो ।"

"छि, ऐसा नही कहा करते, दीदी ।"

"नही बहनी ! बस्ती मे जाकर यह बुरी बीमारी मोल ले आया था—अब वही रोग मेरे शरीर मे भी फैल गया है । और अब बचे रहने की इच्छा भी नही है । बस केवल अपने मुन्ने के लिए ही डरती हूँ—उसकी भी तो हालत देख रही हो न । वह भी अधिक दिन नही जिएगा—साफ समझ रही हूँ मै । पर तुम लोग ईश्वर से मनाओ ताकि मै ही पहले आँख मूँद लूं ।"

श्यामा ने सुना और सिहर उठी ।

बुरे रोगो के विषय मे उसे कोई ख़ास जानकारी नही थी पर फिर भी सन्देह हुआ नरेन को भी कुछ ऐसा ही बुरा रोग लगा है । इसके पहली बार उसने इस बारे मे पूछा भी था । उस पर नरेन ने अकडकर जवाब दिया था, "होगा क्यो नही, हुआ है । 'डॉक साइड' की उन बस्तियो मे जाने से होगा ही—पर मै क्या दादा की तरह हूँ ? बाकायदा मैंने इलाज करवाया है । कविराजी इलाज ।"

पर श्यामा को विश्वास नही हुआ । उधर उसकी देह मे एक और सन्तान के आगमन की सम्भावना आसन्न हो पडी । क्या होगा न होगा इसी मे पडी रहने से उसे नीद नही आई ।

माँ बोली, "तो फिर तू भी तैयार हो जा ।"

श्यामा ने सिर हिलाकर कहा—"माँ, मैं कही नही जाऊँगी ।"

"क्यो ? यहाँ तुझे कौन देखेगा ? भला मैं क्या रोज आ सकूँगी ?"

"पर माँ—वहाँ जाने पर वह मुझे फिर कभी वहाँ से नही ले जाएगा, सारा का सारा बोझ–तुम पर लादकर बेफिक्र हो जावेगा, शायद खुद भी वही आ जाएगा ।"

"उसका इलाज मेरे पास है बेटी ! तू चिन्ता न कर । तुम्हे वहाँ ले जाने पर उसे घर मे प्रवेश करने दूँगी यह न सोचना ।"

श्यामा क्या करे सोच न सकी ? लेकिन यहाँ अकेली रहना, आनेवाली सन्तान,

बडी आफत है। लम्बी साँसे छोड, आँखे पोछते-पोछते वह उठ खडी हुई। काफी दिनो बाद मायके जाना था पर माँ के पास जाने से उसे तनिक भी खुशी नही हो रही थी। ऐसे निरानन्द ही मायके जाने की बात की कोई लडकी शायद कभी कल्पना भी नही कर सकती।

माँ पति को घर मे नही घुसने देगी। वह यदि कभी आए तो ? चिरकाल तक क्या मायके मे ही पडे रहेगी ? फिर भला माँ ही कितने दिन जिन्दा रहेगी ? दुश्चिन्ता से हाथ-पाँव फूल गए—जल्दी-जल्दी हिल-डुल भी नही सकी वह।

## 4

श्यामा को अधिक दिन अकेली नही रहना पडा। महीने भर मे ही उमा भी आ जुटी। एक दिन शाम को श्यामा माँ को महाभारत पढकर सुना रही थी कि किवाडो की साँकले बज उठी—कट्-कट्-कट्।

"इस तरह साँकल कौन बजा रहा है री।" रासमणि विस्मित हो नौकरानी के साथ नीचे उतरी।

दरवाजा खुलते ही देखा, एक प्रौढा गहनो से लदी, चौडी पाड की कीमती साडी पहने खडी थी और उनके पीछे उमा। उमा सिर झुकाकर खडी-खडी रो और थर-थर काँप रही थी।

"एँ—क्या बात है।" रासमणि ने मुश्किल से पूछा।

"अच्छा तो तुम ही इसकी माँ हो।"

"जी हाँ।"

"अरी इसे पेट मे ठौर दिया है तो हँडिया मे नही दे पायी ? लडकी को किस लिए वहाँ रख दिया है ? इससे अच्छा तो दासीवृत्ति कराती, खुराकी भी मिलती और कुछ तनख्वाह भी पाती। उस ताडका राक्षसी के यहाँ न रख के एक डोरी और एक कलसी ही खरीद देती।"

रासमणि तब तक सँभल गई। बोली—"मैं आपको पहचानती नही—और यह सारी बाते क्यो सुना रही है सो भी नही जानती, पर माँ लडकी को ससुराल से मायके लाकर रखना क्या शोभा देता है ? ससुराल मे दासी-वृत्ति करना भी अच्छा है। यही सीख मिली है हमको तो।"

"यह क्या मै नही जानती, बेटी ?" जरा नरमाकर बोली वह, "पर हम भी हिन्दू घर की ही लडकियाँ है। रा० बाजार के राजघराने की लडकी हूँ मैं···उचित-अनुचित सब समझती हूँ। पर बेटी· सम्भव-असम्भव भी तो कोई वस्तु है।··· मेरा मकान भी उसी मुहल्ले मे है। तुम्हारी समधिन का आँगन मेरी खिडकी से दिखाई पड़ता है सब देखती हूँ। आज तीन दिन से इस लडकी को खाना नही मिला है, उसपर भी लगातार काम करा रही है। आज कलसा भरकर पानी लाते

वक्त ठोकर खाकर आगन मे गिर पडी तो सास दौड आई और पहले कलसा देखा कि टूटा तो नही। मै सहन न कर सकने के कारण बोली, 'पहले उस मासूम लडकी को तो देख।' तो जानती हो, क्या उत्तर दिया, 'बहू गई तो और आ जायेगी। पर कलसा फूटा तो रुपये देकर खरीदना पडेगा।' इसे वही छोड दिया—आज भी सारे दिन खाना नही दिया। सौभाग्य समझो कि शाम को वह चुडैल लडके के दफ्तर या कही और चली गई थी—उसी मौके मैं इसे निकालकर ले आई हूँ। अब यदि पाल सको तो पालो—नही तो एक कलसी गले मे बाँधकर खुद ही अपने हाथो गगा मे डुबा दो "

एक साँस मे इतनी सारी बाते बताकर मानो वह हाँपने लगी। रासमणि झुककर प्रणाम करने लगी तो इतनी सारी जबान निकालकर बोली, "अँ-हँ-हँ-हँ—करती क्या हो ?·ब्राह्मण हो तुम लोग। क्यो पाप लाद रही हो ?"

"माँ, केवल पहनने से ही तो ब्राह्मण नही होते—आप अनेक ब्राह्मणो से ऊँची है।"

"खैर रहने दो। बापरे जो हो, हो तो ब्राह्मण-कन्या, गोखरू साँप की जात।"

वह और नही बैठी—वही से विदा ली। "पालकी खडी है, उसी मे लौटना पडेगा।"—कहकर रुकी नही।

उन तीनो दुखियाओ की रात कैसे बीती, यह अवर्णनीय है। दोनो बहनो के आंसू तो एक-पल भी नही रुके—केवल रासमणि पत्थर बनी बैठी रही। भोर वेला दो एक बार अचेत होने पर उनकी आँखो मे भी आँसू दिखाई दिए।

दूसरे दिन सुबह ही दयामयी आ धमकी। अन्दर जाकर आँगन से ही आवाज़ लगाई, "कौन है, कहाँ गये सब। रुकने के लिए मेरे पास वक्त नही है।"

वह स्वर सुनते ही उमा श्यामा से चिपक गई। रासमणि बाहर निकली, "सुनो अपनी लड़की को जो सीख दी है, उसके उपयुक्त ही उसने काम किया है—कल कुल त्यागकर वह निकल गई। कर्तव्य समझकर बता चली हूँ इसके बाद मुझे दोष न देना।"

"ससुराल की सीख और अधिक दिन मिलती तो शायद वह वही करती।" रासमणि कडी आवाज मे बोली, "पर मेरी सीख अभी तक नही बिसरी इसीलिए वैसा नही किया, उसे मैं यहाँ लिवा लाई हूँ।"

"ओ—! तभी तो कहती हूँ—तो माँ की साजिश है यह। तो देखो, भला चाहो तो मेरी बहू को इसी दम बाहर निकालो, वरना कोर्ट-कचहरी से भी बाज नही आऊँगी।'

"हिम्मत हो तो वही करो। मेरी लड़की अब उस मकान की देहरी पर कभी पैर नही रखेगी।" स्वर शान्त रहने पर भी रासमणि की आँखो से चिनगारियाँ निकल रही थी।

"यही क्यो, मैं थाने-पुलिस की परवाह नही करती, खुद मै ही ले जाऊँगी। देखूँ कौन अटकाता है।" दयामयी दो कदम बढ आई।

दयामयी आँगन मे थी, रासमणि देहरी के ऊपर खडी थी। एकाएक उनका खून खौल उठा—उन्होने पास रखी दरॉत (हॅसिया) उठा ली।

"नरहत्या महापाप है, पर, जानती हूँ, माँ जगज्जननी इसे अपराध न समझेगी। तुमने जैसे किया है, उसके बाद तुम्हारे साथ पागल न होना असम्भव है। अब अगर एक मिनट भी और यहाँ खडी रही तो इसी दरॉत से दो टुकडे कर दूँगी। गुरु की कसम खाकर कहती हूँ।"

उस समय रासमणि ने जो चण्डीमूर्ति धारण की उसे देख दयामयी भी सहम उठी। किसी तरह एक-एक कदम पीछे हटकर अन्त मे वह भाग खडी हुई। आगे एक शब्द भी बोलने की हिम्मत नही पडी।

# पंचम परिच्छेद

## 1

एक पूरे मकान मे वे तीन ही प्राणी—माँ और दो लडकियाँ। श्यामा का लडका तो अभी शिशु ही था। हालाँकि एक नौकरानी भी थी। मुहल्ले के आवारा छोकरो के डर से रासमणि ने नौकर रखने का साहस नही किया—एक तो सुन्दर व जवान लड़कियाँ घर मे थी, दूसरे असहाय तीन अबलाएँ ही घर मे रहती है पता नही नौकर कैसा हो ? खून करके सर्वस्व लूट ले जाने की कहानियाँ सुन रखी थी।

जो हो—इनके दिन किसी कदर नही कट पाते। काम थोडा ही होता, जिसे रासमणि ही कर लेती। वह गगा-स्नान और पूजा-सेवा भी करती। भगवान् से अपनी वेदना व्यक्त कर और रोकर उन्हे जरा शान्ति ही मिलती। दोनो लडकियो को कुछ परामर्श भी कोई न कोई देता, मुहल्ले मे आस-पास आनेवाली स्त्रियाँ—पर रासमणि ऐसा कोई प्रयत्न नही करती। जानती थी कि यह सब ढकोसला है। देह की जिस अवस्था मे मन ईश्वराभिमुखी होता है, उनकी वह अवस्था आने मे अभी काफी देर है। वह कहती, "यह भगवान् को लेकर खिलवाड है। इससे पाप ही बढता है। इष्टदेव को सामने रख यदि किसी अन्य मनुष्य का ध्यान किया जाये तो इससे बढकर पाप और क्या हो सकता है ? इससे यही अच्छा है कि वे रोती रहे। भगवान् ने उन्हे रोने के लिए पृथ्वी पर भेजा है नही तो ऐसा होता ही क्यो!"

इन्ही दिनो उमा को एक विचित्र अभिज्ञता हुई। किसी की असीम वेदना की कहानी ईर्ष्या का कारण हो सकती है स्वय अनुभव किए बिना शायद वह इसका

विश्वास ही नही करती । श्यामा जब एक के बाद एक अपनी तीव्र दुखभरी कहानियाँ कहती रहती तब सहानुभूति से उमा की आँखे छलछला आने पर भी मन ही मन वह एक प्रकार की अकारण ईर्ष्या भी महसूस करती। जी कहता श्यामा ने इतने दुखो के रहते भी जीवन का कुछ तो स्वाद पाया। उसे दिली चोट पहुँची है—पर क्या इसी से यह साबित नही होता कि पति से उसने कुछ पाया भी है? चोट भी तो प्राप्य ही है। शरत् की तरह उदासीन नही है नरेन। जबरदस्ती अपना अधिकार जताता है, पशु की तरह बल-प्रयोग करता है—पर इससे उसकी आसक्ति भी तो प्रकट होती है। और शरत् ? रूपवान् मिष्टभाषी हर लडकी को पसन्द होने लायक—पर उसके पास से तो वह अपने परिपूर्ण यौवन की सारी चाह, प्यार भरी डाली लिए लौट आई, उसके कठोर, उदासीन एव अनासक्ति के व्यूह को वह जरा भी न तोड सकी। कभी-कभी वह यहाँ तक सोचती कि शरत् भी यदि नरेन जैसा ही निष्ठुर और पशु होता तो वह अपना जीवन धन्य और सार्थक मानती। जिस सुख का स्वाद उसको कभी नही मिला केवल सकेत मिलने से क्या होता है—उस सुख के लिए चाहे जितने आघात आते वह खुशी-खुशी सह लेती। शायद यही स्वाभाविक होता। नही तो श्यामा अपने नर-पशु पति के लिए भी पलक-पाँवडे बिछाए क्यो बैठी रहती।

उमा श्यामा की बाते सुनती और रह-रहकर उसकी छाती फाडकर लम्बी साँसे निकलती। श्यामा सोचती यह उसके दुख के प्रति समवेदना है—पर उमा बेशर्म की तरह मन-ही-मन यह मानने को बाध्य होती कि ऐसी बात नही है जिसे पाकर श्यामा दुखी है उसी को न पाकर उमा का यह दीर्घश्वास है।

जीवन मे ऐसा ही तो होता है। एक के लिए जो दैन्य है वही दूसरे के लिए ऐश्वर्य है। दुनिया के सारे अभाव इसीलिए आपेक्षिक है। जो इन्सान वृहतर वेदना का चित्र अपने सामने देखता है वह अपनी वेदना मे भी सहज सान्त्वना पा जाता है।

खैर, छोडो इन बातो को।

श्यामा के प्रसव का समय पास आता गया। रासमणि को अपनी बेबसी और भी महसूस होने लगी। बडा दामाद धनी है, रुपए-पैसे की मदद देना तो उसके बाएँ हाथ का खेल है। पर इन दिनो तो रुपयो की बनिस्वत लोक-बल ही ज्यादा काम आता है। घर मे जरूरत थी एक मर्द की। रासमणि कभी-कभी बर्दाश्त नही कर पाती—अनुपस्थित दामाद को लक्ष्य कर या लडकियो से कटु वचन भी कह डालती "भात खिलानेवाला भर्तार नही है, नाक काटनेवाला स्वामी है।"

पर इससे तो सिर्फ श्यामा के आँसू ही ज्यादा बढते। कभी-कभी तो वह गुस्से से खाना ही छोड देती। पति का विछोह जितना लम्बा होता है मानो उतने ही उसके सारे अपराध श्यामा के मानस पटल से न जाने कैसे मिट जाते। रह-रह-

कर उसे यही अनुभव होता कि यदि वह इसी वक्त आ जाए तो उसकी सारी समस्याएँ हल हो जाएँ। हालाँकि वह जानती थी कि ऐसी कल्पना भी हास्यास्पद है

× × ×

रासमणि आखिर एक घटना के बाद सहारा पा गई। वर्षा की रात मे वे तीनो एक ही कमरे मे सोई थी, उनके सिवाय सारा मकान खाली पडा था। अचानक गली के ओर की बरामदे मे किसी की पदचाप सुनाई पडी।

भयभीत हो चिल्लाना स्वाभाविक था पर रासमणि जरा दूसरे स्वभाव की थी, उठी और खिडकी की सन्दो से झाँकने लगी। पर नजर पडते ही जो आकृति देखी तो रासमणि का चेहरा सूख गया। मुहल्ले के एक विख्यात जमीदार का आवारा लडका—खुद भी गुण्डा और एक जबर्दस्त गुण्डो के दल का पृष्ठपोषक। उसकी कुकीर्ति घर-घर मे व्याप्त थी पर अभी औरतो के साथ छेडछाड सिर्फ दो कुख्यात वेश्या-बस्तियो तक ही सीमित थी। कुछ इसलिए और कुछ पैसो के बल पर पुलिस की आँखे उसकी ओर से बन्द रहती थी पर अभी हाल की एक घटना से उसे कोई भी न बचा सका था। कुछ ही दिन हुए वह एक वर्ष की सजा भुगतकर लौटा था पर छूटते देर न हुई कि आज फिर इतनी हिम्मत! रासमणि ने स्वप्न मे भी न सोचा वह लैम्प पोस्ट के सहारे बरामदे तक पहुँचा था। उसके लक्ष्य मे भी सन्देह नही रहा। रासमणि स्तम्भित हो गई। उस आदमी ने—रजत था उसका नाम—भी उन्हे देख लिया पर वह बडे सहज स्वर मे बोला, "भला चाहो तो किवाडे खोलकर अलग हट जाओ। किसी को कानो-कान खबर नही लगेगी। नही तो बेकार की फजीहत होगी—मुहल्ले मे किसी को मुँह भी नही दिखा सकोगी। मुझे तो जानती हो धुन का पक्का हूँ।"

रासमणि जिन्दगी मे पहली बार डरी। उनके हाथ-पैर काँपने लगे। क्या जवाब दे, नही सोच पा रही थी। बेसब्र रजत की भी उस वक्त और अधिक इन्तजार करने की हालत नही थी। उसने जोर से किवाडो मे एक लात मारी उस पुराने मकान की जीर्ण-शीर्ण किवाडे लात के आघात से कडकडा उठी।

लडकियाँ भी तब तक जाग गई। वे लोग डर के मारे चीखने लगे। सबने दरवाजे पर अपना सम्मिलित जोर लगाकर चिल्लाना शुरू किया। इधर रजत के मुँह से गन्दी गालियाँ निकली और पैरो की ओर से लाते तडातड पडती रही। हू-हल्ला सुनकर भी मुहल्ले के किसी पडौसी की नीद नही खुली, ऐसी बात नही थी। आस-पास कई खिडकियाँ भी खुल गई। रासमणि के प्रति सारे पडौसियो की सद्भावना थी, पर रजत को देखकर आगे बढने की किसी की हिम्मत नही पडी। खुली खिडकियाँ चुपचाप बन्द हो गई, जैसे किसी की नीद नही टूटी हो। आखिर एक मुसलमान परिवार बाहर आया। घर के मुड्ढ का नाम था सादिक मियाँ, राधा बाजार मे कुछ कारबार था। सात जवान लडके थे उनके—उन्ही को

रजत से डर नही था ज्यादा। "कौन है? क्या है रे ?" करते सातो लड़के नौकर-चाकरो सहित जब घर तक आ गये तब रजत बगल के बरामदे से, "अच्छी बात है, फिर देख लूँगा," कहकर कूदा और भागा। पल-भर मे ही न जाने कहाँ नौ-दो-ग्यारह हो गया।

फिर तो सभी निकल आए। "मारो, पकडो" आदि बाते भी सुनाई पडने लगी अन्तर्हित रजत के खिलाफ। बुद्धिमती रासमणि को सारी वस्तुस्थिति समझते देर न लगी। वह फौरन सिर ढक घूँघट-सा काढकर बाहर निकली और सादिक मियाँ से हाथ जोडकर बोली "अब्बाजान, आज आपने ही मेरी बेटियो की इज्जत और जान बचाई है। अल्लाह आपका भला करे और क्या कहूँ। यह अहसान चुकाने की ताकत नही मुझमे।"

सादिक मियाँ की भी आँखे भर आई। बोले, "खुदा गवाह है बेटी, तुमने मुझे अब्बाजान कहा है—आज से तुम मेरी लडकी हुई। मेरी और इन लड़को की रगो मे एक कतरा भी खून रहते-रहते कोई भी तुम्हारा कुछ नही बिगाड सकेगा। तुम निडर होकर रहो।"

सादिक मियाँ ने सचमुच उस दिन से उन्हे बेटी ही मान लिया था। दूसरे दिन बुड्ढे ने खुद मिस्त्री बुलाकर दरवाज़े मे अन्दर से मजबूत और एक सिटकनी लगवा दी और बरामदे को कटीले तारो से घिरवा दिया। उस दिन से वे रोज शाम को अपनी लडकी या बहू को इन लोगो की राजी-खुशी जानने के लिए भेज देते। वे बडी सावधानी से भीतर के चौक मे बैठती—इनकी शुद्धता नष्ट न हो जाए इसका पूरा ख्याल रखती। पर धीरे-धीरे रासमणि ने उन्हे जबर्दस्ती अपना लिया। उन्हे खिलाने-पिलाने के लिए एक सेट पीतल के बर्तन भी बना लिए जिन्हे आग धुलाकर चुपचाप मँजवा लिया जाता, पर अतिथियो को इसका पता नही चलने देती। श्यामा और उमा को साथ ले कभी-कभी रासमणि भी उनके घर जाती—लौटकर कपडे बदलती। इतनी छुआछूत अच्छी नही, यह वह जानती थी, पर कहती, "क्या करूँ, बताओ, जन्म से ही जिन आचार-विचारो की छाप पडी है, वह क्या आसानी से मिट सकती है ? आदमी आदमी सब एक-से जानती हूँ, फिर भी···" धीरे-धीरे इन दोनो परिवारो मे खूब घनिष्ठता हो गई। श्यामा और उमा सादिक की नतनियो, राबेया और नसीबन, की सहेली बन गई।

## 2

इस बार श्यामा के लड़की हुई। खूब गोरी चिट्टी सुन्दर लडकी। सादिक मियाँ की मेहरबानी से दाई बुलाने और बाजार से चीज-बस्त मँगाने आदि मे कोई तकलीफ नही हुई। किन्तु इधर से आश्वस्त होने पर भी रासमणि को कुछ अच्छा नही लगता। हाय भगवान्, यह कैसी मुसीबत है, दो-दो विवाहिता लड़कियाँ गले

मँढ गई—जिनमे से एक तो लडके-लडकी सहित है। इनकी क्या स्थायी व्यवस्था होगी, यही सोचकर बेचारी हर वक्त परेशान-सी रहती। अगले जन्म के लिए इष्टदेव की ध्यान-पूजा करने मे भी व्याघात पडता।

श्यामा की लडकी का नाम रखा गया, 'महाश्वेता'। मौसी कमला ने रखा था यह नाम। उसने नॉवेल पढे थे खूब। लडके का नाम भी उसी ने रखा था—चिट्ठी मे लिख भेजा था—हेमचन्द्र। महाश्वेता नाम श्यामा को पसन्द नही आया पर रासमणि को अच्छा लगा।

श्यामा के दिल मे यही एक उम्मीद थी कि कम-से-कम प्रसव के वक्त तो नरेन आ ही जाएगा—वैसे ही तो अकस्मात् आता है वह।

क्यो यह उम्मीद थी वह नही जानती। पर यही आस लगाए रहती थी वह। पर दिन, हफ्ते, महीने—करीबन तीन महीने—गुजर गए पर नरेन का कोई समाचार भी नही मिला। चुपचाप अकेले-अकेले श्यामा रोती रहती। यह भी कह डाला उसने एक दिन शायद वहाँ आकर लौट न गया हो माँ—और कुछ दिन रहना चाहिए था मुझे वही। माँ ने तब सजीदगी के साथ इतना ही जवाब दिया था, ठीक तो है, किराये का मकान ठीक किये देती हूँ, वही रहो जाकर। उसे इस घर का तो पता नही है, शायद वही खोजना होगा।

फिर कभी हिम्मत नही पड़ी श्यामा की कि वह इस प्रसग को दुबारा उठाये।

अन्त मे शायद भगवान् ने ही उसकी पुकार सुन ली। एक दिन ठीक दोपहरी के वक्त कमला पालकी मे बैठकर आई—प्राय हाँफते-हाँफते। नरेन उसके यहाँ आया है, इन लोगो को देखना चाहता है। सीधे ससुराल आने की हिम्मत न हुई, इसलिए बड़ी साली के पास पहुँचा था।

श्यामा ने उम्मीद भरी नजर से माँ की ओर ताका। रासमणि ने सिर्फ सिर हिलाकर 'ना' कर दी।

सब लोग स्तम्भित हो गये। श्यामा के चेहरे का रग उड गया। उसने ज़मीन की ओर निगाह कर ली। कमला की कुछ देर तो बोलती-सी बन्द रही फिर मानो बड़े कष्ट से बोली, "ना ?"

तब रासमणि ने गले मे कुछ और भी दृढता और कठोरता लाकर कहा, "नही। रहने की जगह ठीक करे पहले और फिर इनके भरण-पोषण का प्रबन्ध करके जिस दिन गाडी लेकर इस दरवाजे पर बाहर आ खडा होगा, उसी दिन मैं श्यामा को लड़की-लड़के सहित भेज दूँगी। दामाद के लिए इस घर मे अब कोई जगह नही रही।"

कुछ क्षण सबकी बोलती बन्द रही। बाद मे कमला ने ही कुछ क्षुब्ध स्वर मे ही कहा, "पर यह आपकी ज्यादती है।"

रासमणि ने शान्त, स्थिर दृष्टि से उसे ताकते हुए कहा, "बेटी, मैं तुम्हारे पेट से

गाना गुनगुनाते बाहर आया और कुर्ता-धोती पहनकर फिर सो गया। पर खाना आदि खत्म होते ही फिर रात मे टिकने को किसी तरह राजी नही हुआ, बोला, "दीदी, आज तो बहुत दिनो बाद कुछ आराम मिला है। उसे सम्पूर्ण कर दूँ। यहाँ सोया तो नीद ही नही आई। एक रुपया दीजिए न। नही तो कम-से-कम आठ आने ही दीजिए। मैं वापस कर दूँगा, कुछ फिक्र न करे।"

कमला ने लम्बी साँस भरकर एक रुपया दे दिया।

अच्छा ही हुआ जो उसके पति अभी तक लौटे नही थे। काम-काज करके वह वरा नगर का बगला देखने गए। इस रिश्तेदार को उन्हे दिखाकर वह और भी अधिक शर्मिन्दा ही होती।

× × ×

इसके शायद पन्द्रह दिन बाद, नौकरानी की गलती से सदर दरवाजा खुला रह गया था सो नरेन धडधडाता हुआ दुतल्ले तक पहुँच गया।

रासमणि तब दोपहरी के आराम के बाद बैठी-बैठी सुपारी काट रही थी। उसे देखकर वह सिर्फ विस्मित ही नही हुई, बल्कि तीव्र घृणा से इतनी अभिभूत हो उठी कि एक शब्द भी नही बोल सकी। चुपचाप सिर्फ देखती ही रह गई उसे।

बडे ही नाटकीय ढग से हाथ-पैर नचकाकर, नरेन ही बोला, "इन्तजाम करके ही आया हूँ। अब फौरन मेरी औरत और लडके-लडकी को बाहर निकालिए।" यह कहते ही उसने रासमणि के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही खूब जोर से चिल्ला-कर कहा, "कहाँ है री? तैयार हो जा चटपट।"

रासमणि ने गम्भीरता से कहा, "उससे पहले यह तो सुनूँ कि क्या इन्तजाम किया है?"

"क्यो? आपको क्या ज़रूरत है यह जानने की? अपने परिवार को मैं जहाँ चाहूँगा ले जाऊँगा।"

रासमणि शायद कुछ कडी बात कहने वाली थी पर उनके पहले ही श्यामा बोल उठी, "कहाँ ले जाओगे, यह जाने बिना मैं एक कदम नही रखूंगी बाहर। मै तुम्हारा यकीन नही करती, अगर कही किसी ऐसी-वैसी जगह बसा दिया तो।"

यद्यपि वह आज तक इसी प्रतीक्षा मे थी पर इस क्षण उसकी आकाक्षा से आशका ही अधिक प्रबल हो उठी। और उसे देखते ही एक प्रकार का उद्यत अभि-मान भी हुआ उसे।

नरेन ने धमकी दी, "चुप रह। ज्यादा बक-बक मत लगा। छोटे मुँह बडी बात। हजार हो, फिर भी हम गुरु वश के है, कान मे मन्तर फूंकने से ही हमारी आमदनी बँध जाती है। मदनग्राम मे सरकारों के मन्दिर मे पूजा-सेवा की नौकरी मिल गई है। एक कमरा भी देगे। फिलहाल तो उसी में ठहरना है जाकर। चलो, चलो, जल्दी तैयार हो जाओ। अभी से पैदल चलेगे तो रात तक पहुँचेगे वहाँ।"

"पैदल जाएंगे ! इतनी दूर ? यह क्या ?" उमा ने पूछा।

"हूँ। नही तो नवाब नन्दिनी के लिए एक पालकी लाऊँगा क्या ? मेरी सामर्थ्य नही है इतनी।"

रासमणि अपने को बहुत कुछ सँभाल चुकी थी। कमरे से बाहर निकलकर उमा को बाहर बुलाया, कहा, "इस बेहया से कह दे कि इस रात अब बच्चो को नही भेज सकती। कल सुबह लिवा ले जाए। गाडी-भाडा मैं ही दे दूँगी।"

उसी क्षण सारी बक-झक मिट गई। निस्पृह निरासक्त से स्वर मे नरेन बोला, "ठीक है, जैसी आप लोगो की मर्जी। पर मैं अपनी मर्जी से नही ठहरना चाहता, बाद मे उलाहना न मिले।"

उसके बाद बिना निमत्रण के ही जमकर बैठ गया वह और बोला, "उमा भाई, मुझे तो तमाकू पीने की लत पड चुकी है। जरा नौकरानी को बाज़ार भेज-कर एक नारियल का हुक्का और थोडा-सा तमाकू मँगा लो।"

रात को श्यामा ने सब पूछ लिया। ठाकुरजी के पासवाले कमरे मे ही रहना होगा। आध सेर अर्वा चावलो का एक नैवेद्य और रात मे भोग का एक पाव दूध और चार बताशे मिलेगे। इसी भरोसे पर नरेन पत्नी, पुत्र-पुत्री को उस अनजानी नगरी मे ले जा रहा है। कहाँ पर है यह जगह, इस बारे मे श्यामा कोई अन्दाज़ नही लगा सकी। सुना कि शिवपुर के कम्पनी बाग से दो कोस आगे है—बिलकुल देहात है।

श्यामा कुछ देर तो निर्जीव-सी रही फिर पूछा, "इससे कैसे चलेगी गिरस्ती ?"

"शख मे फूंक देकर। पुरोहिताई से। बहुत-से यजमान जुट जाएँगे। बाप-दादा इसी काम से इतना कमा कर रख गए थे तो मैं अपनी गिरस्ती का भी खर्चा नही जुटा सकूँगा ?"

"उनके पेट मे तो विद्या भी थी। तुम तो मन्त्र भी नही जानते ?" गुस्से से फट पडी श्यामा।

"अरे, शख-घडियाल तो बजा सकूँगा। उसी से काम चल जाएगा। और मन्त्र भला क्या है यही तो—'मै हूँ ठाकुर हाबू-गाबू। भोग लगाओ ठाकुर, खाबू-खाबू।' यही तो है बस मन्तर-वन्तर।"

अपनी रसिकता पर खुद ही हा-हा करके हँस पडा नरेन। पास ही के कमरे मे माँ सोई है यह खयाल आते ही श्यामा ने झटपट उसका मुँह बन्द कर दिया हाथ से।

हँसी रोककर अचानक नरेन ने स्वर पलटा, "तेरी मा राँधती खूब है। खाना भी बडे ज़ोर का हुआ था।"

उसके बाद कुछ देर चुप्पी साधकर बोला, "उमा कैसी खूबसूरत है देखने मे।

साढ़ू साला सचमुच काठ का उल्लू है।"

हाय रे ! श्यामा अँधेरे मे ही सिहर उठी। डर से या घिन से—वह खुद ही नही समझी।

सवेरे उठते ही नाश्ता आदि करके नरेन ने सास से कहा, "तो माँ कुछ बासन-भाँडे, दरी-तकिया वगैरा कुछ नही देगी क्या ? नई गिरस्ती बसाने चला हूँ। यह तो आप समझती ही है। गाडी करके ही जाना है तो गाडी जैसा सामान वगैरा भी तो होना चाहिए।"

उत्तर देने की तो इच्छा नही थी पर फिर भी कह ही डाला रासमणि ने, "सन्दूक भरी थी बासनो से—एक भी नही बचा ?"

"जो मिले थे, उनमे से तो कुछ भी नही है। कब के बेच डाले। बाकी के जो उस यजमान के यहाँ जमा थे—वे उस साले ने दिए नही—मार दिए।" बडी बेतकल्लुफी से जवाब दिया नरेन ने।

रासमणि ने आँसू पोछते-पोछते फिर नई गिरस्ती बसाने के साज-सामान का जुगाड किया। जाते वक्त गाडी-भाडे के अलावा नरेन ने पाँच रुपये और माँग लिए, जाते ही सौदा-सुलफ कुछ खरीदना पडेगा। आप तो जानती ही है। मेरी तो जेब बिलकुल खाली है। और आपने तो नाती-नातिन दूध पिला-पिलाकर पूरे नवाब बना दिए है।

## षष्ठ परिच्छेद

### 1

खाली मकान और भी सुनसान-सा लगता। एक विराट् नीरवता से मानो सारा मकान भर उठा था। सिर्फ श्यामा ही नही उसके साथ हेम भी चला गया। दो साल के शिशु की तोतली बातो से सारे मकान मे जो जीवन छाया रहता था वह अन्त मे मर ही गया।

रासमणि और भी अधिक समय देने लगी पूजा-सेवा मे। पर उमा तो कुछ भी नही कर पाती थी। कभी-कभी एक भयानक शून्यता और निष्क्रियता से उसे ऐसा जान पड़ता मानो वह पागल हो उठेगी। उस निर्जनता मे बस वह कभी-कभी अपना सिर फोड लेती।

सादिक मियाँ या सादिक मुसलमान (इसी नाम से विख्यात थे वह), समझाते, "नीचे का तल्ला किराये पर दे दो बेटी, उससे घर मे अकेली भी नही रहोगी और तुम्हे किराया भी कम देना पडेगा।"

पर रासमणि राज़ी नही होती। किरायेदार के साथ रहना क्या है यह वह कुछ-कुछ जानती थी। आस-पास के घरो मे रोज-रोज की चख-चख सुन-सुनकर ही परेशान रहती थी वे। किसी ने अपनी विरियाँ सीढियाँ साफ नही की तो किसी ने अपना पाखाना सुबह-शाम साफ करवानेकी शर्त नही मानी—किसी ने कभी पानी ज्यादा खर्च कर दिया तो किसी ने कुछ किया। ऐसे ही हजारो झंझट लगे रहते है। और कही बहुत-से बाल-बच्चे हुए तो दुनिया भर की गन्दगी फैलाएँगे, चिल्ल-पो मचाएँगे। नही, वह नही सह सकेगी यह सब।

"अगर कोई बूढा दरबान जो दूकान या ऑफिस मे काम करता हो और रात मे रहने की जगह चाहता हो और थोडा-बहुत काम कर दे तो यहाँ रह ले। यही चेष्टा करिये, अबबाजान।"

दो महीने बाद सादिक उससे भी अच्छा प्रस्ताव लाए, "एक भला आदमी एक छोटा-सा प्रेस खोलना चाहता है। नौ बजे प्रेस खुलेगा, बहुत हुआ तो शाम तक खुला रहेगा। उसके बाद ताला बन्द करके घर जला जाएगा। बीस रुपये महीने किराया देगा। यह मिल जाए तो फिर तुम्हे ज़्यादा भाडा नही देना पड़ेगा। तीस रुपयो मे से बीस तो मिल ही जाएँगे।"

रासमणि को यह प्रस्ताव बुरा नही लगा। औरते होगी तो बच्चे भी रहेगे। ऊधमबाजी, चिल्ल-पो—हजारो तरह के झंझट लगे रहेगे। सिर्फ कुँआरे या रँडुआ आदमी के रहने मे भी असुविधा और परेशानी हो सकती है पर इस किरायेदार को रखने मे वह झंझट भी नही है। सारा दिन काम करेगा, दिया जले घर चला जाएगा। दिन मे नीचे जाने की ज़रूरत ही क्या है?

पर रासमणि ने जरा चिन्तित-से स्वर मे कहा, "पर नलघर, पाखाना वगैरा तो सब नीचे के हिस्से मे है।"

सादिक ने कहा, "उसके आगे से एक आड लगाने से ही काम चल जाएगा। उससे कह दूँगा, घर का नलघर और पाखाना इस्तेमाल नही कर सकेगा। बाहर तो सरकारी नल मौजूद ही है। इधर की सीढियो को भी शामिल करके मैं कारुगेट का एक बेडा-सा बाँधे देता हूँ, उनके साथ भी सम्पर्क नही रहेगा।"

रासमणि भी राजी हो गई। रुपयो की बात भी उडाई नही जा सकती। घडे का पानी निकालते-निकालते बस तले तक पहुँच गया है—और कितने दिन इस तरह चलेगा यह सोचते ही घबैडा उठती है वे।

सादिक मियाँ ने आदमी भेजकर कहे मुताबिक कारुगेट का बेडा बना दिया। उसमे एक दरवाजा भी लगा। उसे खोलने से बाहर के बाकी मकान से सम्बन्ध हो जाता था। अन्दर की ओर एक छोटी-सी कोठरी भी उन्हे मिल गई। सिर्फ बाहर के दो कमरे ही दे देने पडे उन्हे। यही तय हुआ कि अन्दर से वह दरवाजा बन्द रखेगी पर बाहर से खुला रहेगा। उन्हे तो बाहर से ही काम पड़ेगा, अन्दर से

मतलब ही क्या है ?

महीने की पहली तारीख से किरायेदार आ गया। दो दिन पहले से ही चीज बस्त आने लगी थी। टाइप रखने के छोटे-छोटे खानो वाले केस, गैली रखने के रैक, स्टूल, कुर्सी, मेज़। दो एक मिस्त्रियो ने आकर एक छोटा-सा ट्रेडिल प्रेस भी लगा दिया। इसके अलावा कुछ रबर स्टैम्प बनाने का साज-सरजाम भी आया।

उमा को ये सारी चीजे अजायबघर की चीजो-सी जान पडी। उसने छिपे-छिपे यह सब देखने का बन्दोबस्त कर लिया था, जीने की एक सीढी पर बैठने से रेलिग मे से किरायेदार वाले हिस्से के बड़े कमरे के आर-पार देखा जा सकता था। उमा वही से विस्मित-सी देखती रहती। उसकी आँखे आश्चर्य-विस्फारित बनी रहती, रेलिग पर दबाकर रखने से उसके शुभ्र गौर ललाट पर उसकी छाप आ जाती—फिर भी न वह उस जगह से हिलती, न नजर हटाती।

अचरज! एक के बाद एक अचरज!

शुरू से अन्त तक उसे सारा काम अचरज-भरा ही लगता। स्टूल पर बैठे-बैठे कम्पोजीटर कैसी तेजी से उन छोटे-छोटे खानो से टाइप निकालते और फौरन एक के बाद एक सजाकर लगा देते। क्या उठा रहे है, यह नही देखते सिर्फ कागज की लिखावट ही देखते रहते। सभी के कपडे-लत्ते भी कुछ ऐसे ही थे—फटे कुर्ते, नगे पैर। स्टूल पर बैठे-बैठे उनकी गर्दन नही दुखती ? नौ बजे आकर बैठते है तो कोई उठता है शाम के छ. बजे बाद और कोई और भी बाद मे। दोपहर को सिर्फ एक बार उठकर मूडी (चिर्वे) खाते। अधेला के चिर्वे और अधेले की बेगुनी या फुलूरी।

और मशीन चलाकर छापना—वह भी कम आश्चर्यजनक नही था। पैर से न जाने क्या दबता कि पहिया घूमता और लूची बेलनेवाले बेलनो की तरह एक नही दो-दो बेलन लोहे की गोल पटरी से स्याही लेकर जस्ता के अक्षरो पर फिरा देते और उस पर कागज, जो कि पिनो से अटका रहता है, उन पर पडता और फौरन छप जाता। क्या-क्या देखे उमा, कुछ सोच ही नही पाती।

इन लोगो का मालिक भी देखने लायक है। ठिगना कद, काला रग और मोटी-मोटी दुहरी देह। हाथ-पैरो की गठन काफी मजबूत। पर छोटी आँखे बडी धूर्त लगती थी। धोती पर मिर्जई पहने घूमता था। एक कुर्ता भी था पर वह हमेशा कील पर ही टँगा रहता था। प्रेस की चाबी उसकी अटी मे लगी है और धोती घुटनो तक उठ जाती है, एक मिनट भी बेकार नही बैठता। अगर कोई ग्राहक आता है तो कुर्सी पर आ बैठता है, नही तो कर्मचारियों पर ही चिल्लाता रहता है, अथवा रबर स्टैम्प ही बनाता है। कर्मचारी भी तो कुल तीन ही हैं, दो कम्पोजीटर तो एक मशीनमैन, वही इधर-उधर के छोटे-मोटे काम भी कर देते है। मालिक ही खुद रबर स्टैम्प बनाता है पर ग्राहक कुछ मीन-मेख निकालता है तो कहता है, अभी मिस्त्री नही है, कल बनवाकर रखूँगा। यानी किसी को यह पता

नही चलने देता कि वह खुद ही यह काम करता है।

इस आदमी की भाव-भगिमा देखकर उमा किसी भी तरह हँसी नही दबा पाती। उम्र कितनी होगी, यह उसे कुछ अन्दाज नही—तीस भी हो सकती है और चालीस होना भी कुछ विचित्र नही। लेकिन सिर्फ हँसी ही नही आती, कुछ डर भी लगता है। कुछ-न-कुछ आतककारी चीज है इस आदमी मे—उसकी ओर ज्यादा देर देखते ही देह काँप उठती है—और वह जितना चाहती है कि उधर न ताके, उतना ही आँख फिरा लेने पर भी नजर वही जा अटकती है फिर मानो जैसे आँखे वही जमी रह जाती है।

चोरी-चोरी देखनेवाली की यह कारस्तानी प्रेस के मालिक फटिक की नज़र से छिपी नही रही। पर उसने यह कभी पता नही लगने दिया कि वह जानता है। पर नजर बचाकर वह इसी रूपवती युवती की ओर देखता रहता था। उसे सारी बातो का पता लग चुका था।

एक दिन दोपहर बाद आदत के अनुसार मौका देखकर उमा वहाँ आकर बैठी ही थी कि अकस्मात फटिक ने मुँह उठाकर उसकी ओर ताका। उस दिन किसी कारणवश कर्मचारी छुट्टी ले गये थे। फटिक अकेला बैठा-बैठा कुछ हिसाब किताब कर रहा था। पीठ किये बैठा रहनेपर भी वह उमा की न जाने आहट कैसे पा गया और मुँह मोडकर बोला, "खूकी सुन, माँ है ऊपर ?"

उमा की बोलती बन्द। अब क्या करे—दौडकर ऊपर भागे या जवाब दे, कुछ ठीक नही कर पाई। अनजाने आदमी के साथ बाते करना ठीक नही यह वह अच्छी तरह जातनी थी, किन्तु उसकी चोरी पकडी गई है और जब आँखो के सामने ही एक आदमी कुछ पूछ रहा है तो जवाब न देना बदतमीजी नही है, भला। यही सोचने लगी बेचारी अपनी सारी अकल लडाकर।

क्या करे, न करे, सोचती-सी उमा उसकी ओर ताकती ही रही तो फटिक ने ही फिर कहा। उसने पहली नजर मे ही उमा के शर्मिन्दा चेहरे और सहमी नजरो को देखते ही सारा हाल ताड़ लिया था। बोला, "माँजी, हो तो कहो कि मैं उन्हे एक बार प्रणाम करना चाहता हूँ।"

इस बार उमा को कुछ राहत मिली। वह फौरन दौडकर ऊपर गई और हाँफते-हाँफते माँ से बोली, "माँ वह प्रेसवाला आदमी आपसे कुछ कहना चाहता है। कहता है,'प्रणाम करुँगा'—"

रासमणि ने लडकी की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से ताका, बोली, "उसने तुझे कहाँ देखा, जो यह कहलाया है ?"

उमा का गोरा चेहरा लाल हो उठा। वह सिर झुकाये दोषी की तरह खडी रही।

"जीने से उधर झाँक रही थी शायद ? अब कभी नही करना यह। समझी, इससे निन्दा होती है। जाओ भीतर अब।"

उसके बाद वह स्वय बाहर निकलकर जीने तक आई और मुहाने पर खडी होकर बोली, "क्या कहते थे बेटा, ऊपर आओ।"

उस दिन शायद सक्रान्ति थी। अभी महीना पूरा नही हुआ था, फिर भी फटिक ने टेट से भाडे के बीस रुपये निकालकर उनके पैरो के पास रखकर प्रणाम की और पैरो की धूल अपने माथे लगाई।

रासमणि थोडी अप्रतिभ-सी हो उठी, बोली, "इतनी जल्दी क्या पडी है भैया, अभी तो महीना पूरा नही हुआ।"

"उसकी कोई बात नही माँ। जो देना है उसे न दे डालने तक मुझे रातो नीद नही आती। लेकिन आपको तो इसलिए नही बुलाया माँ—एक बात कहूँ, कई दिन से सोच रहा हूँ, आज साहस करके कहता हूँ ····"

वह बीच मे ही रुक गया, रासमणि उत्सुक हो बात पूरी सुनने के लिए उसकी ओर ताकती रही।

"माँ, मैं तो आपका लडका जैसा हूँ," सविनय फटिक ने फिर शुरू किया, "अगर बुरा न माने तो कुछ कहूँ।"

"कहो न भैया, बुरा क्यो मानूँगी ?"

"माँ, आपकी इस लडकी ने सब बाते सुनी है। ससुराल जाने का उपाय नही और आप कितने दिन बैठी रहेगी। उसके बाद क्या होगा इसका ?"

बेशक यह ढीठता थी पर फटिक के बोलने का तरीका कुछ ऐसा घर के आदमी जैसा था कि रासमणि की नजर कडी तो हुई पर आवाज मे तुर्शी नही आई। काफी नर्मी के साथ बोली, "जो जिसके भाग्य मे है होगा, बेटा, पर ये सब बाते बाहरी आदमी के साथ न करना ही अच्छा है।"

"इसीलिए तो मैंने आपसे पहले पूछा था कि बुरा न माने तो कहूँ। एक काम मैंने सोचा था इसीलिए बात उठाई है। उसे कुछ दस्तकारी सिखाएँगी—ताकि वह अपने-आप भी कुछ आय कर सके।"

"कौन काम ?" रासमणि के स्वर मे सन्देह का पुट था।

"मान लीजिए—रबर स्टैम्प तैयार करने का काम। अभी तो नया-नया धधा है, बहुत-से आदमियो ने नही सीखा। आर्डर भी खूब आते हैं—यह यदि घर बैठे-बैठे ही तैयार कर ले तो मै पैसे और आर्डर आदि का काम सभाल सकता हूँ। इससे काफी आय भी हो सकती है।"

"लेकिन यह काम उसे सिखायेगा कौन ?"

"अगर आज्ञा दे तो मैं ही सिखा दूँगा "

"यह कभी हो सकता है, भला।" दृढ स्वर से रासमणि ने जवाब दिया, "बेकार की बाते करने से क्या लाभ ?"

"क्यो नही हो सकता माँ। आप बैठी रहियेगा, आपके सामने ही मैं उसे सब

कछ सिखा दूँगा। उसके बाद तो चीज-बस्त सब कुछ वह अपने कमरे मे ही रखेगी—मैं तो सिर्फ आपको आर्डर इकट्ठे कर दूँगा और आप ही मे स्टैम्प ले लूँगा—वह तो अन्दर बैठी-बैठी काम करेगी। आप देखिएगा, काफी आमदनी हो जाएगी।"

"पर तुम, मान लो, आज हो कल नही। फिर कहाँ से काम मिलेगा उसे?" ऐसा कारबार कही औरतो के वश की बात है भला?"

स्पष्ट कह दिया रासमणि ने। फटिक की इस अनधिकार चेष्टा से कुछ नाराज भी हो गई वह।

पर फटिक आसानी से पीछा छोडनेवाला नही था। बोला, "मैं भी नही रहूँ तो क्या है माँ, पते-ठिकाने तो सब बता ही दूँगा—फिर तो आप नौकर भेजकर भी काम चला सकती हैं। कुछ-न-कुछ तो आमदनी होगी। और काम सीख रखने मे तो कोई नुकसान नही है?"

पर सन्देह कैसे हटता? रासमणि ने कहा, "यह सब काम औरतो को करते देख लोगो मे बातचीत नही होगी क्या?"

"लोगो को पता ही कैसे चलेगा?—आप और आपकी इस लडकी के सिवाय किसी और को जताने की जरूरत ही क्या है?"

"अच्छा सोचकर बताऊँगी।" इच्छा न रहने पर भी रासमणि को भद्रता की खातिर कहना ही पडा—बहुत कुछ उसे टालने के लिए ही।

पर उमा ओट मे बैठी सब सुन रही थी। वह जिद करने लगी, सीखने दो न माँ, इसमे बुराई ही क्या है? आपके सामने ही तो सीखूँगी—लोगो को पता ही क्यो लगेगा भला। इसके बाद जो होगा—अभी तो कुछ आमदनी होगी ही। ऐसी ही सब बाते भी कही।

कई दिन लगातार यही सब बाते सुनते-सुनते अन्त मे रासमणि बिगड उठी, "नही, इन सब झमेलो मे पडना अच्छा नही।"

## 2

उमा की अतृप्त अन्तरवासिनी फटिक के इस प्रस्ताव को मानो प्राणपण से पकडे रहना चाहती थी। माँ की साफ 'मना' सुनकर मानो एक सहारा भी जाता रहा। उसे यह बिलकुल अन्याय ही जान पडा। क्या करेगी वह? अभी तो माँ है पर उनके बाद? भीख माँगनी पडेगी या दीदी के यहाँ, बिना तनख्वाह के नौकरानी-गीरी। पर क्यो करेगी वह यह सब? क्यो न वह अपने लिए एक रास्ता ढूढ निकाले, अपने इस हक से वचित क्यो हो?

उसका मन एक तरह के तीव्र विरोध से भर उठा। पर रासमणि के मुँह की ओर ताकते ही उसकी सिट्टी गायब हो जाती। माँ से डरना उसकी आदत ही नही प्रकृति बन चुकी थी। उसे बदलना अब उतना आसान काम नही था।

दो दिन तक उसने अच्छी तरह खाया भी नही और बहुत ही जरूरत पडे बिना माँ से बोली भी नही। पर रासमणि पर इसका कोई असर नही पडा। वह अपना काम उसी निश्चिन्तता से करती रही। उमा मे हुए परिवर्तन उन्हे अज्ञात न थे, पर वह उसे बढावा नही देना चाहती थी। वह जानती थी कि इस पर अधिक चे-चे-मैं-मैं करने से कटुता ही बढेगी। सिर्फ उन्होने उमा से छिपाकर उस पर थोडी कडी नज़र रखना शुरू कर दिया था।

उमा भी डर के मारे कुछ दिन तो जीने की ओर गई ही नही। पर कामकाज और मिलने-जुलने का अभाव उसकी प्यास को अब और भी असह्य बनाते जा रहे थे। फटिक भी आजकल काफी रात तक अकेला ही बैठा अपने कमरे मे कुछ करता रहता। क्या काम करता है यह ऊपर से जाना भी नही जाता। सिर्फ इतना पता चलता था कि दो बत्तियो वाले लैम्प की तेज रोशनी मे बैठा-बैठा वह कुछ करता है—कभी थोड़ी खुट-खुट की आवाज होती थी बस। यह रासमणि ने भी देखा और एक दिन सादिक मियाँ को बुलाकर कहा, "अब्बाजान, आपने तो कहा था कि साँझ होने से पहले ही प्रेस बन्द हो जाएगा, पर ये लोग तो अब रात के दस बजे तक न जाने क्या करते रहते है।"

सादिक को विस्मय हुआ। बोले, "अच्छा ऐसा ? अच्छा मैं अभी पूछता हूँ।"

पूछताछ कर सादिक मियाँ बोले, "सब चले जाते है, सिर्फ फटिक बाबू ही रह जाते है। उनका वह रबर स्टैम्प का काम बहुत चलने लगा है। प्रेस की हालत तो आजकल कुछ अच्छी नही है, अत खुद ही थोडा-बहुत कम्पोज़ भी कर लेते है, आदमी एक भी नही बढाना चाहते।"

"प्रेस की हालत अच्छी नही है ? पर काम तो काफी आता है। जो आदमी थे उन्हे भी तो छुडाया नही है अभी, और फिर खुद भी इतना खटता है—तब तो हालत अच्छी ही होनी चाहिए थी।"

वह चुप हो गए। किरायेदार रखकर इतनी छोटी-सी बात पर तो बहस-मुबाहसा नही किया जा सकता। सादिक मियाँ को ही ऐसी क्या गर्ज है—उन्होने किरायेदार बसाकर कोई अपकार तो नही किया। बेकार उन्हे तग करने से क्या लाभ। पर धीरे-धीरे फटिक रात मे वहाँ और भी ज्यादा वक्त बिताने लगा। कभी-कभी रात के दस भी बज जाते थे।

रासमणि को शाम को ही आह्निक जप आदि करके थोडा सोने की आदत थी। रात के नौ बजे उठकर वह लडकी को खाना खिलाकर थोडा-बहुत खुद भी खा लेती और फिर अच्छी तरह बिछौना वगैरा करके सो जाती। पर उन्हे फिर नीद नही आती थी··

उमा को मालूम था कि वह रात-भर छटपटाती रहती है। कभी लम्बी साँस भरती है तो कभी बिस्तरे पर बैठी नाम-जप करने लगती है। शायद इसीलिए

साँझ के बाद ही उन्हे पहली गाढी नीद आ जाती है। उमा इस मौके का फायदा उठाने का लालच नही रोक पाई। साँझ के बाद तो नौकरानी भी चली जाती थी तब रासमणि ने नयी व्यवस्था की थी—वह सिर्फ दुपहर को पेटभर भात खाती और साँझ-सबेरे दूसरो के काम पर चली जाती। लौटती कभी रात को नौ बजे तो कभी साढे नौ बजे बाद। उमा माँ के पास सगृहीत पुस्तको मे से हर किताब को पचास-साठ बार पढ चुकी थी। अब वे भी अच्छी नही लगती थी। कभी-कभी वह खुद ही कविता लिखने की कोशिश करती—बाकी वक्त घर भर मे इधर-उधर बन्दिनी-सी घूम-फिरकर काट देती।

इसलिए ·

कुदरत के कडे कानून के मुताबिक वही एक बात उमा ने भी की, उसी सीढी पर फिर जा ही बैठी।

सामने की खिडकी की छडो से अन्दर का जो दृश्य देखा उससे वह बाकायदा विस्मित ही हुई। फटिक अपने स्टूल पर हमेशा की तरह बैठा था—हमेशा की तरह केस बक्स पर कुहनियो को सहारा देकर। रात इतनी होने पर भी बैठे रहने का मतलब था काम करना, पर यह तो काम-काज कुछ भी नही कर रहा, चुप बैठा है। मानो किसी के इन्तजार मे है। उधर का दरवाज़ा बन्द है, कमरे मे दूसरा प्राणी नही, फिर किसके इन्तजार मे बैठा है ?

काफी देर हो गई इसी तरह, शायद बीस-पचीस मिनट बीत गए। अन्त मे अपना कौतूहल अधूरा ही छोडकर उठना ही चाहती थी कि साँप की तरह फुस-कारती-सी आवाज़ सुनाई पडी, "खूकी, सुन।"

सिहरकर चौंक पडी उमा।

कौन, किसने पुकारा ? फटिक तो वैसे ही मुंह मोडे बैठा था, एक बार भी इधर को मुह नही किया। फिर उसने उमा की ज़ीने पर मौजूदगी किस तरह जान ली। पर यह आवाज तो उसी की लगती है।

यह कही भूत लीला तो नही हो रही ?

उसी क्षण पसीना आ गया उसे। सूखे होठो पर जीभ फिराकर एक बार कोशिश की पर पैरों ने भी साथ नही दिया, न कुछ कह सकी, न हिल ही सकी वहाँ से। एक अजीब-से आतक से उसकी नस-नस अवश हो उठी।

अब फटिक ने मुंह उसकी ओर मोडा और स्टूल से उठ खडा हुआ।

"डर क्या है, सुन तो।"

इतनी देर बाद मानो उमा की जान मे जान आई। वह जी-तोड कोशिश कर उलटी ही ऊपर उठने की कोशिश करने लगी और आखिरी सीढी पर कदम रखते ही उसने दम लिया। लगा कि जैसे अब वह खतरे से बाहर हो गई है। पर अभी उसे फटिक का पूरा परिचय नही मिला था, इन कुछ ही क्षणो मे फटिक साँप की

तरह पैरो की आवाज़ किए बिना ही पर तेजी से चलकर एकदम उमा के सामने आ खडा हुआ और उसी तरह फुसफुसाकर बोला, "डर क्या है ? मैं तो तेरे लिए ही बैठा था। तुम रबर स्टैम्प बनाना सीखोगी ?"

"माँ ने मना जो किया है।" बडी मुश्किल से रुक-रुक उमा के गले से ये शब्द निकले। उसका गला सूख रहा था और सारा शरीर काँप रहा था।

"वे तो पुराने ज़माने की है, सब चीजो मे खराबी ही नज़र आती है। पर तुम तो कोई गलत काम करने नही जा रही हो, फिर डर किस बात का ? उन्हे तो इस वक्त नीद भी आती है , बस इसी वक्त मे तुम थोडा-थोडा सीख सकती हो। यह तो एक हुनर है—हुनर सीखने मे क्या दोष है ?"

फिर भी उमा राज़ी नही हुई—इधर-उधर करने लगी।

"तुम्हारी हालत देखकर अच्छा नही लगता, इसीलिए कहता हूँ, नही तो मुझे क्या पडी जो दूसरो का सिर-दर्द मोल लेता। रोज़ इतनी रात तक इसीलिए बैठा रह देख रहा था कि दो-चार दिन बाद तो इधर आओगी ही।"

"तु ··आपको मालूम कैसे पड जाता है ?" उसे कौतूहल ही हुआ सबसे ज्यादा।

फटिक हँसा थोडा। अँधेरे मे भी उसके दाँत चमक पडे। खूब सख्त और मजबूत। "आओ। आओ। क्या मजे का काम है इधर आकर देखो न। दो मिनिट लगेगे, माँ को पता ही नही चलेगा।"

अनिच्छा रहते भी उमा नीचे उतर आई। उसने कोई खोटा काम नही किया यह ठीक है पर फिर भी दोनो पैर थर-थर काँपने लगे, सारी देह पसीने से तरबतर हो उठी।

पर फटिक बिलकुल ज्यो का त्यो बना रहा। सहज भाव मे ही कितनी ही गप-शप करता रहा। उसे रबर स्टैम्प तैयार करने की चीजे दिखाई। एक लाइन तैयार करके भी दिखाई।

धीरे-धीरे उमा का डर कम होता गया। पर उसके कान ऊपर की ओर ही लगे थे।

थोडी देर बाद फटिक ने ही कहा, "अब ऊपर जाओ खूकी, शायद माँ की नीद टूटने वाली ही होगी। तुम्हारी नौकरानी भी आती होगी।" उमा ने मानो ऊपर आकर ही जान बचाई। चुपचाप झटपट वह ऊपर चढ़ गई।

दूसरे दिन उमा ज़ीने की ओर गई ही नही। ऊपर के कमरे से ही नीचे जीने की ओर पडती रोशनी से उसे पता चल गया था कि फटिक आज भी इन्तजार मे बैठा है। पर उसने मन समझा लिया था कि अब नही जाएगी वह उधर। उसकी माँ मना करती है तो क्या ज़रूरत है इस झगडे मे पडने की।

पर उसके एक दिन बाद ही न जाने किसने उसे फिर उसी ओर खीचा—माँ

के सोते ही वह उसी सीढी पर आ बैठी—फटिक भी जैसे पहले से ही तैयार बैठा था, उसे कमरे मे ले गया और बोला, "आज एक आर्डर भी आ गया है। देखो, अगर तैयार कर सको तो इसकी नफा तुम्ही को दे दूँगा।" कल वह क्यो नही आई—यह पूछना तो दूर उसने उस ओर इशारा भी नही किया।

काम इतना कठिन नही था। थोडी मेहनत से ही उमा उस्ताद हो गई। और उसने एक आर्डर की मुहरे भी तैयार कर दी, कागज पर छापकर उसने बडी शान से अपनी कारीगरी की ओर ताका।

फटिक ने शाबाशी दी, "तुम बड़ी होशियार हो सचमुच। मैं भी इतनी जल्दी नही सीख पाया था।"

फिर अगले दिन फटिक ने उसे तीन आने पैसे भी दिए—जबर्दस्ती ही, "वाहजी तुम्हारी मुहर बेचकर ही तो यह फायदा हुआ है। इसे नही लोगी तो कैसे काम चलेगा।"

उमा लाज-शर्म से मानो जमीन मे गड गई, बोली, "मै···मैं ये पैसे लेकर क्या करूँगी। माँ चिल्लाएँगी "

"इकट्ठे करती जाओ। माँ से अभी कहने की क्या जरूरत है ? कुछ इकट्ठे कर लो, फिर जब उन्हे दोगी तो हैरान हो जाएँगी।"

उस दिन भी उमा ने एक मुहर खुद ही बनाई। टेबल-लैम्प की रोशनी मे झुके-झुके वह काम करती रही। फटिक पास खडा-खडा यह-वह बताता रहा। उसकी साँसे उमा के गाल छूती थी, उमा के माथे पर पसीने की बूँदे झलकने लगी तो फटिक मुग्ध-सा उन्हे देखता रहा।

उस दिन चीज-बस्त सँभालकर रखी उमा ने ही "अच्छा अब जाऊँ न" कहकर ज्योही खडी हुई कि फटिक ने उसका एक हाथ पकडकर दबाया। उमा घबड़ाकर चिहुँक उठी, एक त्रस्त-सी दृष्टि से उसने फटिक की ओर ताका पर फटिक की आँखो से आँखे मिलते ही वह जैसे दुर्बल हो उठी, हाथ छुडाया नही। विह्वल-सी खडी रह गई।

साँप सी स्थिर दृष्टि थी फटिक की। जादूगर जैसा अमोघ आकर्षण था। उमा का एक हाथ और पकडकर उसे अपनी ओर खीचते हुए फटिक ने कहा, "सुनो, और थोडा ठहरो न—" मानो कोई पसीने से तर-बतर रेगनेवाला जानवर फुसफुसा रहा हो।

## 3

अचानक ऊपर से रासमणि की तेज़ पुकार सुनाई पडी, "उमी।" तत्क्षण साँप का उठा हुआ फन नीचे हो गया। उमा को भी मानो होश आ गया। प्राणपण से उस विह्वलता को तोड़, दूर फेकी चेतना को पकड़े वह दौड़कर ऊपर जा पहुँची।

रासमणि कुछ देर तक उसकी ओर ताकती रही, फिर पूछा, "क्या कर रही थी नीचे ?"

सारी देह काँपने लगी, उमा के गले से स्वर नही फटे। वह निरुपाय-सी खडी करुण दृष्टि से माँ की ओर ताकती रही।

"तू खुद ही उसके छापेखाने मे गई थी ? अकेली, इतनी रात बीते ?" दबी-दबी आवाज से गर्ज उठी रासमणि।

"वो—उसने बुलाया था, काम सिखाने के लिए कहकर—" किसी तरह उमा ने थूक निगलकर कहा।

"और तू उसके बुलाते ही जा पहुँची ? अबोध बच्ची है क्या तू ? मैंने नही कहा था क्या कि यह सब नही चलेगा ?" रासमणि बोलती गई, धीरे-धीरे, कडे स्वर मे।

"इतनी बडी बालिग लडकी इतनी रात बीते एक षण्डामार्का आदमी के साथ निर्जन कमरे मे बैठी बाते करती है—यह अगर किसी मुहल्लेवाले को पता चल गया हो तो ?—मै कल लोगो के सामने अपना मुँह कैसे दिखाऊँगी।"

थोडा दम भरकर रासमणि फिर बोली, 'जिसका भाग फूटा हो उसकी बुद्धि भी हर लेते है भगवान्। तुम कोई नादान बालिका नही हो जो क्या से क्या होता है,यह नही जानती ? यह एक मूर्ख छापेखानावाला मुझसे भी ज्यादा तेरा अपना हो गया—क्यो ? तभी तो मेरे मना करने पर भी तू वहाँ जा पहुँची। शादी के बाद भी जिसे स्वामी ने नही अपनाया—उसे जमीन मे समा जाना चाहिए। तू ही है जो लोगो को मुँह दिखाती हैं, दूसरी होती तो गले मे रस्सी बाँधकर झूल जाती। बेशर्म, बेहया कही की।"

गुस्सा कम ही नही हुआ रासमणि का। पागल की तरह बकती चली गईं, सिर्फ इतना होश था कि दबी आवाज से बोल रही थी ताकि किसी को सुनाई न पडे। किन्तु उनकी बाते इतनी कटीली थी कि ऐसा लगा उमा को कि मानो कोई उसके सारे शरीर को काट-काटकर जख्मो पर नमक छिडक रहा हो।

उमा के पास कहने को काफी था। जिसे ब्याह दी गई उसे देखने-भालने की जिम्मेदारी उसकी थी क्या—उसने तो जानबूझ और देख-सुनकर शादी नही की और न अपनी किसी गलती के लिए ससुराल से निकाली ही गई। फिर चण्डी-मूर्ति के सामने एक शब्द भी नही बोल सकी, सिर नीचा किए, बस खडी रही।

और भी कुछ देर उसे बुरा-भला कहने के बाद रासमणि जीने से नीचे उतर आई, खट-खट करती, और उमा के बैठने वाली जगह पर आकर आवाज दी "फटिक।"

फटिक बहुत पहले ही जा सकता था, पर ऊपर मामला कितनी दूर बढा, यह जानने का कौतूहल सवरण न कर सका। अत. खिड़की के पास ही खडा था—सिर्फ

इतना ही नही कमरे मे लैम्प भी जल रहा था, इसलिए उसे अपनी मौजूदगी नामजूर करने का रास्ता नही दिखाई दिया। वह कमरे के दरवाजे से निकलकर भोले-भाले आदमी की तरह जीने के पास आ खडा हुआ और बोला, "माँ, आपने पुकारा था क्या ?" उसके चेहरे पर दृढ-प्रतिज्ञ भाव था, यानी उसे बुरा-भला कहना उतना आसान नही। वह जवाब दिए बिना नही छोडेगा, हर तरह लडाई के लिए तैयार है।

पर रासमणि ने वह रास्ता पकडा ही नही। सिर्फ इतना कहा, "मैं तुम्हे अडतालीस घटे का वक्त देती हूँ, इसी दरम्यान तुम अपना छापाखाना उठा ले जाओ यहाँ से। किरायेदार रखने मे असुविधा होती है मुझे।"

फटिक ने इसकी कल्पना भी नही की थी। एक मिनट से भी कम लगा उसे जवाब सोचने मे, और जब बोला तो उसके गले से भी वही दृढता फूट पडी, बोला, "जी, किरायेदार को निकालने का भी तो कुछ कानून है—दोनो ओर से कम-से-कम पन्द्रह दिन का नोटिस देने का नियम है "

रासमणि ने उसकी बात बीच मे ही काटकर कहा, "कानून-कचहरी मैं कुछ नही जानती, न मैं उनकी शरण ही लूंगी। अडतालीस घटा देखूंगी, उसके बाद मैं अपने हाथो से छापेखाने की चीज़-बस्त उठाकर सडक पर फेक दूंगी। अगर हिम्मत हो तो रोकना तुम। और थाना, कचहरी जहाँ जाना हो तुम जाओ, मुझे कोई जरूरत नही जान पडती।"

इतना कहकर बहस-मुबाहसे का तिल-भर भी अवकाश न देकर वह झट से ऊपर चली गई।

× × ×

उमा ने उस रात कुछ नही खाया। सोयी भी नही वह। उसने क्या ऐसी जबर्दस्त गलती की है, यह वह जरा भी नही समझ सकी। फटिक से काम न सीखने देने मे उसे जैसी ज्यादती दिखाई पड़ी थी वैसी ही आज की इस चिल्ल-पुकार मे भी लगी। पर कुछ ही क्षण पहले फटिक के बर्ताव की बात सोचकर उसे माँ की मनाही और आशका की यथार्थता भी कुछ-न-कुछ शायद अपने अनजाने ही तो महसूस हुई ही थी। पर भर्त्सना की पीडा भी कम नही हुई उसे। आज यह पहला अनुभव था उसका कि बाते भी कैसी तीर-सी लग सकती है। सास की शिकायते सब झूठी थी अत वह इतनी व्यथित नही हुई थी शायद। पर उसे पता चला कि वाक्य बाण शब्द का क्या अर्थ है। मर्मान्तिकारी दुख की पहली-पहली तीव्रता से व्यथित-पीडित उमा ने बार-बार यही सकल्प किया कि वह माँ का उलाहना ही सच कर दिखाएगी—आत्महत्या ही कर लेगी। मालूम तो पडे उन्हे कितना सुख होगा इससे। अकारण उसे इतना लाञ्छित करने का बदला वह अपनी माँ से लेगी ही। क्यो, किसलिए इतना सहेगी वह ? वह क्या यह नही देख पाती कि मेरे जैसी

युवती कैसे अपना एकाकी जीवन बिताए ? अगर वह फटिक के इस पैसे कमाने का हुनर सीखने के लालच मे आ ही गई तो क्या हुआ—यह क्या कोई अन्याय है ? माना कि फटिक भी अच्छा आदमी नही जान पड़ता, फिर भी माँ को अपनी लड़की का तो कुछ विचार करना चाहिए था। मै क्या कम दुखी हूँ, वैसे ही।

रासमणि की एक बात ने उसे सबसे ज्यादा तकलीफ पहुँचाई थी, 'अब समझ पा रही हूँ कि तुझे ससुराल न भेजकर कितनी बडी गलती की है मैने। उस बदजात सास के हाथों मार खाने से तबीयत ठिकाने आती तेरी। तभी ठीक रहती। लातो के देवता क्या बातो से मानते है।'···

मैं क्या इतनी खराब हूं, इतनी बुरी हूँ कि मुझे सास के हाथ मार खानी चाहिए थी। यही मेरा प्राप्य है क्या ? इससे तो मरना ही अच्छा है।

आँखो मे आग की जगह आँसुओ ने ले ली। तकदीर की बेइन्साफी के खिलाफ मगज़ मार-मारकर जब वह थक गई तो बरबस उसे रुलाई आ गई। चित्त की सारी व्यथा आँसुओ के रूप मे बह चली। भीग गया तकिया। लेकिन मर न सकी वह, नहीं छोड़ सकी इस जिन्दगी से अपना मोह। हेम याद आ गया। श्यामा, कम-से-कम हेम को ही छोड जाती तो भी एक सहारा होता। क्या लेकर जिए वह ? कैसे जिए ?

# सप्तम परिच्छेद

## 1

उस बडे मकान के बिलकुल किनारे पर देवालय था, जो लगभग बाहर की ओर ही था, अर्थात् मुख्य मकान से अलग। उसके पीछे सिर्फ एक कमरा था, जिसमे नरेन्द्र ने श्यामा को ले जाकर रखा, बोला—"अच्छा कमरा है, है न शुरू से आखिर तक पक्का।"

कमरा पक्का है सो तो ठीक है, लेकिन यह कैसा कमरा है ? दक्षिण की ओर देवालय ने हवा बन्द कर रखी है। पूरब की ओर भी कोई खिडकी नही है। पश्चिम की ओर भी एक खिडकी है और उत्तर मे दरवाजा है और एक खिडकी भी। मोटी-मोटी नगी ईंटे सिर्फ चिनवा दी गई है—एक लम्बे अरसे से देख-भाल नही होने से अन्दर भी शुरू से आखिर तक लौनी लग गई है—अँधेरा और सीलन भरा है और वैसा ही गर्म भी। कुछ देर खड़े रहने पर उसे ऐसा लगा कि मानो साँसे रुक गई। श्यामा ने दरवाजे के पास खड़ी होकर साँस लेने की चेष्टा की। लगभग आर्त्त स्वर मे वह बोली—"यहाँ मेरे बच्चे कैसे रह सकेंगे ?"

"हाँ, कैसे रह सकेंगे, भला। नवाबजादी के बेटा-बेटी तो राजमहल या अट्टालिका मे रहने चाहिए न। ज्यादा लम्बी-चौडी बाते मैं नही सुनना चाहता—साफ कहे देता हूँ, हाँ।" हेम भी कमरे के अन्दर आते ही सकपकाकर खडा हो गया है, यह देखते ही नरेन्द्र ने उसके गाल पर एक तमाचा जड दिया, कहा, "क्या देखता है रे, हरामजादा? जहाँ लाया हूँ वही रहना होगा। बाप की जैसी हालत है उसी मे रहना होगा। यहाँ ननसार नवाबी नही चलेगी।"

दो साल का लडका हेम भला क्या समझता इन बातो को। तमाचे की तकलीफ से फूट-फूटकर रो पडा। गाल पर पाँचो अँगुलियो के निशान बन गए। लपककर श्यामा ने उसे गोद मे उठा लिया।

"लो, बहुत हो गया। अब गठरी-वठरी खोलो। देखो, उस तरफ कही रसोई-घर है—चूला-वूल्हा है या नही, न हो तो थोडी लकडी और सूखे पत्ते डालकर खिचड़ी के लिए थोडे चावल-दाल चढा दो। शाम होने मे अब ज्यादा देर नही है—कहाँ बत्ती है—कहाँ क्या है मैं तो अभी यह सब ढूँढ नही पाऊँगी।"

अर्थात् इस निर्जन वन मे आज की रात अँधेरे मे ही काटनी होगी। मन्दिर के चारो ओर बगीचा था। उस तरफ भी एक पोखरा था, लेकिन समूचा स्थान बडे-बडे पेडो की सघन डालियो से आच्छादित था। कटहल, आम, गुलाब, जामुन और सहजन के पेड इस अपराह्ण मे सूरज को ओझल कर देते थे। फिर शाम की तो बात ही क्या चलाई।

श्यामा के मन मे आया इन बच्चो को लेकर अभी भाग खडी हो—इस राक्षस को छोडकर कही भी, दूसरी जगह। लेकिन कहाँ जाए? भाग्य के फेर मे बचकर कहाँ भागे?

उसे निश्चल खडी देखकर नरेन्द्र शायद फिर कोई कडी डाँट सुनाने वाला ही था कि इसी समय उस तरफ के बगीचे से एक स्थूलकाय महिला के आ जाने से उसकी क्रोध-भरी कडवी आवाज गले के अन्दर ही रुक गई।

"हमारी नई ब्राह्मणी माता कैसी आई देखूँ तो जरा। अरे राम! यह तो बिलकुल बच्ची है, मेरी पिटकी से भी छोटी। तब तो भई, मै पैर छूकर प्रणाम नही करूँगी—अकल्याण होगा। बस, यहीं से ही हाथ उठाकर इस तरह" उन्होने खूब अच्छी तरह सिर नवाकर ही दूर से ही नमस्कार किया।

श्यामा को तो जैसे अँधेरे मे राह मिली। वह हमेशा शर्मीली ही रही है पर अचानक इस परिस्थिति मे पडने से उसका भी मुँह खुल गया। पास आकर वह भी माथा नवाकर बोली—"माँ, मैं भी तो आपकी एक बेटी हूँ।"

"वाह। बहुत अच्छा। बडी मिठबोला हो तुम तो। क्यो नही हो, आखिर शहर की लड़की हो—अरे इस देहाती गाँव की बोली को झाड मारो। मै भी कलकत्ता

की लडकी हूँ और शादी हुए छब्बीस साल हो गए, फिर भी यहाँ की बोली नही सीख पाई, बडी ही कर्णकटु है।"

अब वह श्यामा को लगभग ठेलकर ही अन्दर आ खडी हुई—"अरे अभी तक गठरी-वठरी भी नही खुली। चलो बेटी, तुम जरा हाथ बटाओ मैं तुम्हारी सारी चीजे सजाकर रखे देती हूँ।"

श्यामा को हाथ नही बटाना पडा—श्रीमती सरकार ने खुद ही सब कुछ सजाकर रख दिया। सारी चीजे यथास्थान रखकर बोली—"देखती हूँ, तुम्हारी माँ ने सभी आवश्यक चीजे बाँध ही दी है। अकलमन्द है, यह तो मानना ही पडेगा। फिर भी एक बात कहूँगी बेटी, बुरा न मानना, और बुरा मानकर ही क्या करोगी, मेरा सिर थोडे ही काट लोगी? तुम्हारी माँ की जब ऐसी अवस्था है और सुना है तुम लोगो ने मेमो की तरह लिखना-पढना भी सीखा है इतनी बुद्धि है उनमे। फिर भी जान-बूझकर ऐसे जानवर के हाथ कैसे दे दिया तुम्हे?"

एक कोने मे रखी हुक्का-चिलम की गठरी खोलकर नरेन्द्र तमाखू भर रहा था। उसका हाथ रुक गया दाँत भी कडकडाए, लेकिन नई मालकिन को कुछ भी कहने की हिम्मत नही पडी उसे। सिर्फ कान खडे रखे श्यामा का जवाब सुनने के लिए।

श्यामा के लिए उस बात का जवाब देना सम्भव नही था। बल्कि उसने बात को दबाते हुए कहा—"माँ, मेरे पास रोशनी का तो कोई इन्तजाम नही है—क्या होगा?"

"तो क्या हुआ बेटी आज भर के लिए एक दीये मे तेल और बत्ती डालकर एक दीया भेज देती हूँ। कल बाजार से थोडा रेडी का तेल मँगवा लेना। अब चलो, रसोईघर मे चूल्हा-वूल्हा बनवा रखा है दिखा दूँ, कुछ ईंधन भी मौजूद है। कपड़े बदलकर थोड़े-से चावल चढा दो। अपने इस बगीचे के अन्दर ही पोखरा है साफ पानी का, हम लोग तो उसी का पानी पीते है।"

इन लोगो की कोठरी के पास ही एक बडा-सा छप्पर पडा था, दीवारे और फर्श मिट्टी के थे। एक चूल्हा बरामदे मे था और एक अन्दर। सचमुच उस बेचारी ने सारा इन्तजाम कर रखा था। घर के अन्दर ही छोटी-सी एक मचान भी तैयार थी जिस पर कि भण्डार की सारी वस्तुएँ सजाई जा सके।

श्रीमती सरकार श्यामा को अपने साथ पोखरे पर ले गई। खासा बडा पोखरा था और चारो ओर बडे-बडे पेड रहने से बिलकुल निर्जन लगता था पर पानी काला-काला था। घाट बँधा था, लेकिन ईंटो पर काई जमने के कारण बडी फिसलन भी थी।

"उतरते डर लगता है क्या?—लो मेरा हाथ पकड़ो। तैरना नही जानती शायद। आने दो मेरी पिंटकी को, वह तुम्हे एक ही दिन मे तैरना सिखा देगी।"

"वह कही गई है क्या?"

"हाँ, मेरे लडके-लडकियो मे से कोई भी नही है यहाँ इस वक्त, सभी मामा के घर गए है। मेरे भतीजे की शादी है। मेरे देवर के लडके-लडकियाँ समेत "

"तो आप क्यो नही गई ?" श्यामा ने बीच मे ही पूछा।

"खूब कहा, बेटी, तुमने।" कुछ विरक्त-सी होकर बोली वे, "मेरा घर-बार कौन देखेगा ? आजकल का वक्त, इतना बडा खानदान, पाँच तरह की चीज-बस्त है घर मे—सभी कुछ तो है और क्या। इसलिए उनके घर मे रहते हुए भी रात को नीद नही आती मुझे तो। ज़रा भी खटका हुआ कि जग पड़ती हूँ। जिम्मेदारी कम है मेरी भला।"

फिर वह प्रसग बदलकर बोली—"तुम्हारे लडके-लडकियाँ तो बडे सुन्दर है, अच्छे-खासे। किसका क्या नाम रखा है बेटी ?"

श्यामा को उनकी आवाज गम्भीर होने से डर-सा लगने लगा था, अब साँस छोडकर बोली—"लडके का नाम हेमचन्द्र है और लडकी का महाश्वेता।"

"बाप रे, ये तो बहुत बडे-बडे नाम है। पुकारती हो क्या कहकर ?"

"उसको 'हेम' पुकारती हूँ और इसे 'महा' कहकर।"

"तो भी ये नाम तो ठीक घरेलू-से नही हुए। मुझे तो अपने लडके-लडकियो के एक-एक घरेलू नाम न होने से उन्हे पुकारने मे मजा नही आता। देखो न, लडको के नाम रखे हैं—गुए, हेगो, हाबला—लडकियो के नाम—पूंटी, बूंची और वे तो मुझसे भी बढकर है। मैंने नाम रखा पूँटी तो उन्होने कर दिया, पिटकी। और उनके दुलार की बात सुनोगी ? रोज़ आफिस से लौटकर कपडे बदले बिना ही सारे काम छोडकर पहले अपनी बिटिया को प्यार करते हैं। बडे प्यार से बोलते है—'पिटकी रानी पतली-दुबली (घट-घटानी) मरनेवाली नजर आ रही।" पहले-पहल तो मैं नाराज हुई पर एक दिन उन्ही ने समझाया कि माँ-बाप बच्चे को कोसे तो भी उसकी उम्र बढती है। तब से फिर कुछ नही बोलती हूँ"—जर्दा और कत्थे-चूने से काले हुए बडे-बडे दाँतो को निकालकर श्रीमती सरकार 'ही-ही' कर हँस उठी।

तब तक श्यामा कपडे धो चुकी थी। घर की ओर लौटकर जाते-जाते नई मालकिन ने पूछा—"तुम्हारा नाम तो नही सुना, बामनी ?"

"मेरा नाम श्यामा है।"

"यह तो फिर वही 'दिखाऊ' नाम हुआ। घरेलू नाम नही है कोई ?"

"उस माँ ने तो नही रखा। इस माँ को जो नाम पसन्द हो, रख ले।"

"वाह, वाह ! बहुत अच्छा जवाब है। बडी मीठी बाते करती हो, बिटिया। क्यो न हो, पढी-लिखी लडकी हो। मैं भी दत्त-वश की लडकी हूँ—लेकिन उस जमाने मे तो लडकियोको पढाने-लिखाने का रिवाज नही था। आजकल सुनती हूँ, भूदेव मास्टर के दल ने कमर कस ली है लडकियो को पढाने की। समय के साथ-साथ बहुत कुछ बदल गया। पर मेरा नाम तो 'मगला' है, यह बताए देती हूँ। हम लोगों

के नाम तो पुराने ढग के ही है। तब तो इसी तरह के सादे-सादे नाम रखे जाते थे। देखो न दत्त घराने की लडकी हूँ, लेकिन ब्याही गई हूँ सरकारो के घर मे। ये लोग तो हम लोगो के नौकरो के वशज है लेकिन इससे क्या होगा, आजकल तो पैसे वालो की ही 'जय जयकार' है। इन लोगो के घर मे लक्ष्मी का निवास है—जिसके पास पैसा है, आजकल तो उसी की इज्जत है। इनके एक दादा हमारे मायके मे ही पाँच रुपये माहवार तनख्वाह पर नौकरी करते थे। हम लोगो की बदौलत ही इन्होने पैसो का मुँह देखा। इससे क्या होगा, कहो ?"

श्रीमती सरकार ने एक लम्बी साँस छोडी—शायद अपने बाप-दादा का लुप्त गौरव याद हो आया था उन्हे।

## 2

रासमणि का दिया खाने का सामान कुछ दिनो तक ही चला। लेकिन श्यामा नरेन की लापरवाही देख-देखकर चिन्तित हो उठती। रोज के नैवेद्य से तो सिर्फ आधा सेर चावल मिलता था—बँधी अवस्था थी। इससे सब के पेट दोनो जून किसी तरह भी नही भर सकते थे। नरेन्द्र सदा से ही अधिक भोजन करता था, कभी किसी ने मापा नही भी फिर भी श्यामा का अन्दाज था कि वह अक्सर एक पाव से भी ज्यादा चावलो का भात तो खुद ही खा लेता है। इस स्थिति मे इस तरह निश्चित बैठने का नतीजा तो स्पष्ट था भूखो मरना।

बच्चो का मुँह देखकर श्यामा से न रहा गया, उसने साहस कर पति से पूछा—"अब क्या करने का इरादा है ? माँ का दिया सामान तो खत्म होने को है, इसके बाद क्या होगा ?"

"अरे रहने दे, माँ का दिया हुआ सामान। उस बुढिया की भीख के भरोसे ही क्या मै अपना परिवार यहाँ लाया हूँ।" झुँझला उठा नरेन्द्र।

"सो तो नही लाए हो—लेकिन अब चलेगा कैसे ?"

"क्यो, कई दिनो से नैवेद्य का चावल नही इकट्ठा हो रहा ?"

"हो भी तो उससे कितने दिन चलेगा। और वह भी इकट्ठा कहाँ हुआ है ? अरवा चावल भीगा होने से रात को तो उसी का भात बनता है, खाने मे पता नही चलता क्या ?"

"क्यो, उन्हे तू क्यो पकाती है ? सुखाकर रखती क्यो नही ?"

"वही एक ही बात होती। उन्हे सुखाकर रखने से ये चावल जल्दी खत्म हो जाते। आदत भी तो नही है, दोनो जून अरवा चावल खाने से अफरा हो जाता।"

"हूँ।" कुछ देर चुप रहकर नरेन्द्र बोला—"तो नैवेद्य का सारा चावल इन सूअरो के पेट मे चला जाता है।"

इस बुरे शब्द को सुनकर श्यामा की आँखे सजल हो गईं। फिर भी इस 'आदमी'

के सामने आँसू गिराते शर्म महसूस हुई। इस कारण आँसुओ को रोककर बोली—"मै ही खानी हूँ क्या ? जो भात बनता है उसका तीन-चौथाई से भी ज्यादा तो तुम ही खुद खाते हो। मेरे और बच्चे के लिए कितना बच पाता है। मैं तो बिना खाए भी रह सकती हूँ, लेकिन दूध कम हो जाने पर बच्ची क्या पिएगी, कैसे रहेगी? दूध खरीदकर पिला सकोगे ?"

"हाँ—दूध खरीदकर उसे पिलाया जाएगा। हरामजादी, मेरे लिए स्वर्ग मे दीया जलाएगी न।"

उसके बाद कुछ देर तक चुपचाप तमाखू पीने के बाद धीरे-धीरे बोला—"ये बेटे लोग भी क्या कम है। मैं भी नरेन्द्र भट्टाचार्य हूँ, मुझसे कोई बात छिपा ले ऐसा आदमी अभी पैदा नही हुआ। मैंने सारी बाते खुलवाली, यह जो सम्पत्ति देख रही हो सब ठाकुरजी के नाम है। भोग के लिए तो आधा सेर चावल और आठ बताशे देकर ये लोग खुद नवाबी ठाठ जमाते है। इस सम्पत्ति से क्या कम आय होती है ? क्यो, आधा सेर चावल और नही बढा सकते ? सारी पोल खोल दूँगा किसी दिन। सब चालाकी धरी रह जाएगी।"

श्यामा को यह मूर्खता बर्दाश्त नही हुई। वह बोल उठी—"इसमे तुम्हारा क्या बन जाएगा ? तुम क्या मुकदमा लड सकोगे ? लड भी सको तो तुम्हारी नौकरी यहाँ रहेगी फिर ? तुम खाओगे क्या, यह तो सोच लो पहले ?"

"तू चुप रह, बदज़ात। ज्यादा बक-बक मत कर। मेरी औरत और बच्चे क्या खाएँगे, वह मैं समझूँगा। दूँ तो खा, वर्ना पडी-पडी सूख। मैं जो चाहूँ,करूँगा—तू चुप रह। एक शब्द भी न बोल, मुझे तेरा उपदेश नही सुनना।"

लाचार उसे चुप ही रहना पडा। हालाँकि उनका कमरा दूसरे छोर पर था फिर भी मालिक के लडके-लडकियाँ तो बराबर आने-जाते ही रहते थे, उन लोगों के सामने मार-पीट कितनी शर्म की बात होती।

पर जब रासमणि के दिए चावल बिलकुल खत्म हो गए तब फिर वही बात चलानी पडी। सब-कुछ सुन, मुँह विचकाकर नरेन्द्र तमाखू पीने बैठ गया। पहले यह काम भी श्यामा से ही कराता था, लेकिन उसके द्वारा भरी चिलम पसन्द न होने से अब वह खुद ही भरने लगा था। कुछ देर बाद वह तमाखू पीकर उठा और चुपचाप खूँटी से अँगोछा और चादर ले कधे पर रखकर चलता बना।

यहाँ आने के बाद नरेन्द्र के लिए यह पहला अवसर था बाहर निकलने का। यह सोचकर कि फाकाकशी सामने देखकर उसमे कुछ तो चेतना आई, श्यामा ने सन्तोष की साँस ली।

क्रमश सुबह से दोपहर और दोपहर से शाम हो गई लेकिन नरेन्द्र नही लौटा। रात को ठाकुरजी के शयन और भोग का समय हो गया। काफी रात तक इन्तज़ार करने के बाद श्यामा खुद ही दूध-बताशे मन्दिर मे रख आई। मन्त्र तो जानती नही थी

पर आँसुओ के जल से कमी पूरी कर मन-ही-मन प्रार्थना की—"अपराध क्षमा करना प्रभु, सभी कुछ तो जानते हो, अपने गुणो से ही इसे स्वीकार कर लो।"

तब दूसरा उपाय भी नही था। मालिक लोगो को यह बात बताने की हिम्मत नही हुई—इतनी रात को कहाँ कौन मिलता उन्हे—आखिर भगवान् को निराहार रह जाना पडता और इस अपराध के कारण यह आश्रय भी छिन जाता। लाचार उसे भगवान् के साथ भी धोखा करना पडा—उसका हृदय बार-बार काँपने लगा।

लेकिन जब रात और ज्यादा हो गई—(कितनी रात हुई यह जानने का उपाय नही था, घडी तो वहाँ थी नही, किसी की घडी की टन-टन भी सुनाई नही पड़ती थी।) दूर किसी कारखाने मे भोपू बजता था एक बार चार बजे रात को, एक बार सबेरे आठ बजे और एक बार चार बजे दिन को। यही उसके लिए एकमात्र उपाय था समय जानने का।—तब और नही रह सकी वह। रोज रात को सारा बगीचा अँधेरे के कारण भयावना हो जाता था। उसे घने अधकार मे रोज जब जुगनू जलते और बुझते और झीगुर बोलते तो डर से उसकी छाती दहल उठती। पर जब वह गुप्ती-पाडा मे रहती थी उस समय जुगनुओ की चमक और झीगुरो की आवाज का उसे अभ्यास हो गया था लेकिन यहाँ के झीगुर भी तो बहुत शोर मचाते थे। उसी तरह मेढक भी रातभर घो-घो करते थे। फिर भी और दिन तो नरेन्द्र रहता था—आज अकेली इस घर मे, इस निर्जन उपवन मे दो छोटे-छोटे बच्चो को लेकर रहने का साहस वह किसी तरह भी न कर सकी। डरती-डरती घर मे ताला लगाकर अन्दर जाकर उसने मगला की ही शरण ली। सच्ची बात को छिपाते हुए उसने कहा—"माँ, वे सबेरे की आरती करके ही बाहर निकले है सो अभी तक नही लौटे, अकेली कैसे रहूँगी ?"

"कहो तो भला कहाँ गया इतनी रात को। पडित को जरा भी अक्ल नही आई। घर मे जवान औरत—इतनी रात को बगीचे के एक कोने मे पडी है। देखूँ, अगर हरि की माँ तुम्हारे यहाँ सोने को राजी हो जाए। तुम्हारे इस बिछावन पर मेरे बच्चे तो सोने को राजी नही होगे।"

अचानक श्यामा को कलकत्ता मे मायके का बिस्तर याद आ गया। सेमर की रुई वाले मोटे गद्दे और झकाझक सफेद चादर। रासमणि गरीब थी तो क्या जमीदारो के ठाठ-बाट की कुछ आदते तो बाकी ही थी। उनमे से एक थी, अच्छे बिस्तरो का शौक। श्यामा की ससुराल मे भी खाटो और पलगो की कमी नही थी यह तो श्यामा ने अपनी आँखो से ही देखा था।

वह फूलती हुई साँस रोककर बोली—"नही माँ, आपके यहाँ से किसी को नही सोना होगा। सिर्फ़ ख़याल रखियेगा। अकेली हूँ, अगर डर-वर लगे—जरा आवाज दे लीजियेगा।"

"ओहो !" नाराजगी के स्वर मे मगला बोली, "हरि की माँ नौकरानी है, इसलिए उसको बिछावन पर सुलाने मे बेइज्जती महसूस होती है ! वह नौकरानी है तो क्या हुआ—इज्जतदार है। अच्छी जात की है, मैले कपडे भी नही पहनती है—ठीक है, जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं अपने लडके-लडकियो को तो वहाँ नही भेज सकूँगी।"

मुजरिम की तरह सिर झुकाकर लौट आई श्यामा। फल तो कुछ हुआ नही —सिर्फ भण्डा और फूट गया।

उस रात उसने कुछ भी नही खाया, दोपहर को भी भात नही खाया था। नरेन्द्र के इन्तजार मे बैठी रही थी बेचारी। दोपहर का पानी डाला हुआ भात थोडा हेम को खिला बच्ची को दूध पिलाया और खुद सिर्फ बताशे मुँह मे डाल पानी पीकर सो रही।

दूसरे दिन सुबह भी नरेन्द्र का पता नही चला। आठ बजे के करीब पिटकी रानी मिली—"क्यो बामनी दीदी, भट्टाचार्ज महाशय लौटे ?"

पिटकी श्यामा से बडी थी, लेकिन उसका खयाल दूसरा ही था। इसलिए वह श्यामा को दीदी कहकर पुकारती थी। श्यामा ने भी कभी आपत्ति नही की। उसकी भी शादी हो चुकी थी, बच्चे थे लेकिन, जैसा कि मगला के मुँह से सुना गया, पिटकी के ससुराल वालो की हालत अच्छी नही है, सो वह साल मे दस महीने मैके मे ही रहती है। मगला भी स्नेहवश लडकी को स्वय कभी ससुराल नही भेजती है।

"मैयारी ! सुनकर ताज्जुब करोगी, बर्तन धोने के लिए एक नौकरानी तक नही है वहाँ। कायस्थ के घर की ऐसी दयनीय अवस्था ! कभी नही सुनी मैने तो। मै उस घर मे अपनी लडकी कैसे भेज दूँ, बताओ तो ? मेरी बेटी बडी दुलारी है। क्या उसके घर बर्तन माँजने जाएगी ? उस नाइन की बच्ची ने ही सब चौपट कर दिया, झूठी बाते सुना-सुनाकर शादी कराई। क्या कहूँ, अब डर से वह इधर कदम भी नही रखती है, आती तो पहले मै घर की दराँत से उसकी नाक काट लेती, पीछे बात करती। जेल ही तो होती—इससे ज्यादा तो नही ? पर दत्त घराने की लडकी को जेल की सजा कर दे ऐसा जज या मजिस्ट्रेट तो अभी पैदा नही हुआ।"

इसी तरह श्रीमती मगला सरकार अपने आप बोलती रहती और श्यामा बर्तन माँजती जाती और सब सुनती रहती। वह भी तो अपनी माँ की लाडली बेटी थी, आज भी उसके बाप के यहाँ दिन-रात रहनेवाली नौकरानी है। लेकिन अब उसकी चर्चा करने से फायदा ही क्या ?

पिंटकी या पूँटी के सवाल के जवाब मे श्यामा ने डरकर सिर नवाकर बताया कि नरेन्द्र तो अभी तक नही लौटा।

"तब तो गजब हो गया। पूजा कौन करेगा ?" पूँटी को जैसे श्यामा को आफत में पडा देखकर मजा ही आया। कहाँ क्या बात हो गई है, यह श्यामा को पता

नही चला, लेकिन पूँटी के मन मे एक तरह की ईर्ष्या है यह उसने इन्ही कुछ दिनो मे महसूस कर लिया था।

"खडे होकर अपनी मुसीबते अर्ज करो।" जैसे भाव से कुछ देर प्रतीक्षा कर (शायद श्यामा से जवाब पाने की आशा थी!) पूँटी मुँह फिराकर चली गई—"तभी मैंने माँ से कहा था कि इस नशेबाज बामन को मत रखो—ठाकुरजी की हालत बिगड जाएगी।"

कुछ ही देर के बाद मगला खुद आई, "हाँ री, अब क्या होगा? कहो तो भला ठाकुरजी तो इतनी देर तक भूखे-प्यासे रहे—सारा दिन तो उपवास नही कराऊँगी।"

श्यामा नीरव होकर सिर झुकाये पैर के अँगूठे से आँगन की मिट्टी कुरेदती रही। क्या जवाब दे वह? था ही क्या जवाब देने को? उसके तलवो के नीचे की जमीन से मिट्टी खिसकी जा रही थी मानो।

मगला भी कुछ क्षण चुप रही, फिर बोली—"एक और भी पुजारी ब्राह्मण है यहाँ, वही पूजा करता था पहले पर गाँजा पीता था इसलिए हटा दिया। कहो तो उसी को बुलाऊँ? नरेन्द्र के वापस आने तक वही पूजा करे। लेकिन नैवेद्य के चावल पूरे देने होगे उसे, यह मै पहले से ही कहे देती हूँ। नही तो वह भला बेगार क्यो करेगा? मेरी तो किस्मत ही ऐसी है। इस लडके (नरेन) को कितना समझाया कि यहाँ और भी कई घर ब्राह्मण-कायस्थ है, षष्ठी माँ की पूजा भी लगी ही रहती है, सबके घर बारह महीने तेरह पर्व रहते है। घूम-घामकर सब घर नही तो आधे भी यदि पकड सको तो कुछ चिन्ता नही।—उस गँजेडी का क्या भरोसा, उसे तो कोई भी रखना नही चाहता। लेकिन कहाँ सुनी उसने मेरी बात?"

कल से ही मुँह मे एक दाना नही गया। आज का चावल भी चला जाएगा, यह सोचकर श्यामा ने व्याकुल होकर उनके मुँह की ओर देखा और वह कुछ कहने वाली थी, लेकिन उनकी मुखमुद्रा देखकर कह नही पाई। कहती भी क्या, जो पूजा करेगा, वह भोग के चावल भला छोड देगा? मालिक लोग इस तरह राजी है, यही क्या कम है। शुक्र है कि इसी समय उन्होने निकाल नही दिया।

वही हुआ। पुराने पुजारी ने आते ही सबको गा-गाकर सुनाया—"नशा करूँ या जो कुछ करूँ, ब्राह्मण तो हूँ। हम लोग साँप ठहरे। हटाने से ही हट जाते है क्या? फिर भी तो मुझी को बुलाना पडा न? लेकिन बापू इस तरह बदली का काम मुझ से नही हो पाएगा। वह अगर न करे तो पूजा-सेवा मुझे सौपी जाए।"

बेचारा हेम रो-रोकर सो गया था। सवेरे कुछ जामुन खाने को दिये थे श्यामा ने। दोपहर को सबके सो जाने पर बगीचे से थोडे से गूलर बीनकर उबाले और नमक डालकर उसे खिलाए। खुद भी थोडे-से खाए। भूखी रहने मे उसे आपत्ति नही थी, लेकिन बच्ची का मुँह देखकर किसी तरह आँसू रोके और वही उबाले गलर खाने पडे।

दूसरे दिन जब और नही सह सकी तो मगला से जाकर बोली, "लडके के लिए एक मुट्ठी चावल दे दे माँ—एकदम कुम्हला गया है।"

"हाय, हाय ऐसी हालत हो गई घर की ! एकदम भण्डार मे माँ भवानी का राज ! तुम्हारा भी तो चेहरा धँस गया है, मुँह जले ऐसे 'खसम' का ! मै होती तो ऐसे भर्तार के मुँह मे जिन्दे के ही आग रखकर चल देती। खानगी के खाते मे नाम लिखना पडता सो भी भला ! धत्तेरी ब्राह्मण के घर की !"

फिर एक कट्ठा चावल देकर बोली—"इसी से अभी तो थोडा-थोडा करके काम चलाओ, वह कब तक लौटेगा, क्या ठिकाना।"

हाथ रोक-रोककर चलाने पर भी चावल तो एक ही कट्ठा था कितने दिन चलता। और कुछ इसी तरह अनाहार रहते-रहते एक दिन नरेन्द्रनाथ का आगमन हुआ। कन्धे पर एक बोरा, खाली पैर, चादर गायब, बदन के कपडे जैसे मैले वैसे ही फटे और मैल से चीकट, अँगोछा बदन मे लिपटा।

धम्म मे बोरे को रखकर शान्त स्वर मे पुकारा,—"अरी, कहाँ गई, जरा तमाखू तो भर ला।"

## 3

जब घृणा से सम्पूर्ण हृदय भर जाता है तो मुँह से तिरस्कार के बोल भी नही फूटते। श्यामा के अनाहार से सूखे होठ कई बार थर-थराये तो सही पर एक शब्द भी नही बोल सकी वह। कुछ क्षण निष्फल चेष्टा कर वह दौडकर रसोईघर मे गई और पेट के बल औंधी गिर पडी। भूख, थकावट और उत्तेजना से उसकी चेतना लुप्त-सी हो गई थी।

नरेन की चीख-पुकार सुनकर मगला खुद ही दौडी आई। उनकी फटकार को चुपचाप सहते हुए नरेन्द्र ने जरा हँसने की भी चेष्टा की। बोला—"इतनी बेवकूफ है कि भण्डार खाली होने के बाद मुझे बता रही है यह। भला मैं कैसे जानता? मैं तो यही समझता था कि सास के दिए चावलो मे से थोडा-थोडा रखकर ही उसने यह कहा है कि भण्डार निबट चुका है। आजकल कुछ भी कमाना क्या उतना आसान है माँ। इतना घूमा-फिरा, मुझे ही क्या रोज खाना मिलता था ? मिलता तो इतना दुबला क्यो हो जाता मैं ?—जुए मे कुछ कमाया तो फिर जुए मे ही उसे गँवा देना पडा। अन्त मे पन्द्रह दिनो तक एक किराने की दूकान मे खाता लिखने का काम किया, बहुत आरजू मिन्नतो के बाद यह आधा मन आटा लेकर आया हूँ। पर चली कहाँ गई ? न हो तो चार चपातियाँ ही सेक ले, सो भी नही।"

"शर्म नही आती तुम्हे, बेशर्मी की भी एक हद होती है पर तुमसे तो मगज मारना ही फिजूल है। लेकिन इस तरह मेरा काम नही चलेगा—यह 'स्पष्ट' कहे देती हूँ। यही करना है तो अपना रास्ता देखो। मेरा घर खाली कर दो, मैं भी

दूसरा आदमी देखूँ। कहावत है न, 'न मरता है, न पिण्ड छोडता है।' हमारा ऐसे काम नही चलेगा।"

"माँ की कसम माँ, आपकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ—हो सकता है और दो-एक बार ऐसा हो, उसके बाद तो मैं एकदम भला लडका बनकर यही आ बैठूँगा। आप देख लीजिएगा।"

मगला बक-झक करती चली गई। नरेन्द्र उठा और रसोईघर मे जा हाथ पकडकर झटके दे-देकर उसने श्यामा को खडा कर दिया, बोला—"चल उठ, बहुत नखरे मत दिखा। कुछ चपातियाँ बना ले, अच्छी मेहरिया की तरह।"

श्यामा को चोट आई या नही, उसकी समझ मे नही आया। अकेले मे चुपचाप थोडा रो पाने से शायद उसका दिल कुछ हल्का हो गया था। आँचल से आँखे पोछ-कर वह शान्त स्वर मे ही बोली—"रोटी खाओगे किस चीज के साथ? घर मे दाल-मसाला तो चूल्हे मे गया—नमक-तेल तक नही है।"

गुस्से से दाँत भीचते हुए नरेन्द्र बोला—"ऐ। सब सूअरो के पेट मे निगल-निगलवाकर बैठी हो? तेरा सत्यानाश हो!..."

उसके बाद उसके मुँह के पास हाथ-पैर नचा, दाँत किचकिचा और मुँह सिकोड-कर बोला—"अच्छा किया, अब खाओ सूखी रोटियाँ! मैं क्या करूँ?"

श्यामा माँ के यहाँ से जितना लेकर आई थी उतना चुकने के बाद नरेन्द्र ने एक छटाँक भी दाल, नमक या तेल नही खरीदा था। पर श्यामा ने इस बात को याद दिलाना बेकार समझा। आटा निकालकर गूँधने बैठ गई।

न जाने क्यो—उसकी इस मौन अवहेलना पर आज नरेन्द्र की नज़र पडी। वह कुछ देर चुपचाप उसकी गतिविधि देख लेने के बाद खुद ही तमाखू भरने उठा और उसके बाद जरा ऊँची आवाज मे ही बोला—"हूँ, घमण्ड हो गया है, घमण्ड। एक दिन यह घमण्ड भी चूर-चूर कर दूँगा तब जानेगी।"

× × ×

दो-तीन दिन नरेन्द्र घर पर ठहरा। पुराने पुजारी को खुद ही बुलाकर कहा, "तुम्हे काली माँ की कसम भाई, जितने दिनो तक न आऊँ तुम काम चलाना। देखते ही हो मै काम की तलाश मे ही घूमता फिरता हूँ। आठ-दस रुपये का काम भी कही मिल जाए तो मै चला जाऊँगा। तुम क्या सोचते हो मैं यहाँ रहूँगा? फिर तो ठाकुरजी सोलहो आने तुम्हारे है, समझे। अब कोई गडबड मत करना—मै यह काम तुम्ही को दिलाना चाहता हूँ।"

इसी बीच मे उसने कही से थोड़े बहुत दाल, नमक, तेल भी जुटा लिए थे। चौथे दिन पत्नी को बुलाकर कहा—"भण्डार मे सब चीजे लेकर जा रहा हूँ—खबर-दार इधर-उधर रोना-धोना नही। मै फिर कुछ दिनो तक काम की तलाश मे चक्कर लगाऊँगा। देखूँ, कही कोई अच्छा काम मिल जाए तो।"

नरेन अभी जाना चाहेगा—ऐसा तो सोचा नही था श्यामा ने। वह स्तब्ध-सी खडी रह गई। जब उसके गले की ताकत लौटी तो वह बहुत कठिनाई से बोली—"तुम फिर चले जाओगे ?—हम लोगो की यहाँ देख-भाल कौन करेगा ?"

"देख-भाल कौन करेगा ? तू अबोध बच्ची है क्या ? किवाड अन्दर से बन्द कर सो जाना—मै चार-पाँच दिनो मे ही लौट आऊँगा।"

इसके बाद वह लौटा तो पर डेढ महीने बाद। श्यामा के पास ज़ेवर वगैरा विशेष तो कुछ थे नही। इस बार आते समय माँ ने एक जोडी ऐरन, एक नथ और एक जोडी बालियाँ पहनाकर भेजा था। भूख बर्दाश्त न होने पर श्यामा ने दोनो चीज़े मगलादेवी के पास गहने रख दी। फिर भी दोनो माँ-बेटे के शरीर की जो हालत हो गई थी उससे उन्हे पहचानना भी कठिन हो गया। नरेन्द्र भी कुछ देर अवाक् होकर देखता रहा, फिर बडे अफसोस के साथ बोला—"ओह, कैसा चेहरा हो गया तेरा ? खाने-वाने को नही मिला शायद ?—इतने बडे आदमी के आश्रय मे छोड गया—ब्राह्मण की लडकी हो। ये लोग तो शूद्र है, कायस्थ। मेरे दादा जिन्दा रहते तो मैं इनके घर पैर धोने भी नही आता।—इन लोगो से थोडा चावल भी देते नही बना। चमार कही के धन के, मद मे आँखो पर बिलकुल पर्दा पड गया है!"

थोडी और भी बकझक करने के बाद उसने बाएँ हाथ से पोटली उतारकर नीचे रख दी। दाहिने हाथ मे लाख से मुँह बन्द किया एक मिट्टी का भाँड भी था, जिसमे थोडा-सा घी था। उसे श्यामा के हाथ मे देकर बोला, "परसो एक श्राद्ध-कार्य मिल गया उसी का घी है। अच्छा गाय का घी है, आधा सेर से कम नही होगा। और यह ले इसमे सीधे के चावल, दाल, गेहूँ और मसाले वगैरा और दो धोतियाँ भी हैं। यहाँ तक कि आज तो नियम-भग करने की खातिर एक मच्छी भी है।—अच्छी तरह खाना-वाना बना।"

फिर भी श्यामा ने कुछ नही कहा। वह उससे सिर्फ घृणा ही नही करती थी, बल्कि इतने दिनो मे यह भी समझ गई थी कि इस पशु के साथ बकझक करना बिलकुल बेकार है। उसके जीवन का स्वाद ही नष्ट हो गया—दुख-सुख इसी उम्र से ही दोनो कुछ फर्क नही जान पडता। सिर्फ हेम और महाश्वेता का मुँह देखकर ही वह किसी तरह प्राण-धारण करने की तरकीब ढूँढती फिरती दिन-रात।

पर मगला ने श्यामा की बेबस चुप्पी को सूद-दर-सूद वसूलना चाहा। कहा, "अब की बार तो आ गए, अब घर-बार सँभालकर जिस रास्ते आए थे उसी रास्ते निकल जाओ। मैं इस तरह अपना काम नही चला सकती—साफ कहे देती हूँ। अगर आसानी से नही जाओगे तो पुलिस बुलाऊँगी, हाँ, पहले से ही कहे दे रही हूँ।"

पुलिस का नाम सुनते ही नरेन बिगड उठा, "बुलाइए न पुलिस। ठाकुरजी की सारी सम्पत्ति है, पर खुद तो दूध-मच्छी उडाते है और ठाकुरजी के लिए तय कर दिए है आधा सेर चावल!·· शर्म नही आती आपको ? आपका क्या नुकसान

है ! मै तो एवज के आदमी का भी तो इन्तजाम कर गया हूँ । · पुलिस बुलाएँगी ! अभी चाँद-सूरज उगते है—समझी, हजार हो, फिर भी आप लोग शूद्र है और हम है बामन । अगर जाना ही पडा तो जनेऊ तोडकर जाऊँगा । आपका तो बाल-बच्चो का घर है, मुँह से खून उगलकर मरे, यह शाप दे जाऊँगा ।"

मगला ने ठाकुरजी का माल उडाते है, इस अभियोग पर उतना बुरा नही माना, जितना कि उसे शाप का डर लगा । पहले जैसी तेज आवाज न रही उनकी पर और थोडी डॉट-डपटकर वह अपने घर चली गई । उनके जाते ही नरेन का मन जैसे खुशी से नाच उठा । हा-हा कर हँसते हुए बोला—"देखा, जौक के मुँह मे कैसा नौन लगाया । तू तो मारे चिन्ता के मरी जा रही थी । अरे जाऊँगा तो अपनी खुशी से जाऊँगा । पर वह मुझे निकालने की धमकी क्यो देगे । हाँ, दे तो सही । एक चुटकी मे उडा दूँगा ।"

× × ×

साँझ तक लम्बी तानकर नरेन ने उठते ही सबसे पहले खाने की फरमाइश की, "बहुत दिनो से अच्छा खाना नसीब नही हुआ । आज मेरे लिए कुछ लूची (मैदे की पूडियाँ) सेक दो । लूची और आलू का दम । तुम सब भी न हो तो दो-दो खा लेना ।"

श्यामा ने कुछ अचरज के साथ ताककर कहा, "किन्तु मैदा कहाँ है ? तुम्हारी पोटली मे तो मैदा थी नही ।"

"क्या कही ? आधा बस्ता मैदा थी ।"

विस्मय से पहले तो श्यामा की बोलती ही बन्द हो गई, फिर बोली, "वह मैदा क्या आज तक रखी रहेगी । तुम कितने दिन घर से बाहर थे कुछ मालूम है ? और क्या रख गए थे, याद है ? कैसे बचाऊँ इन बच्चोको । बालियाँ गिरवी रखकर सरकार गृहिणी (गिन्नी) ने चार रुपये दिये थे। वे भी सब खर्च हो गए । पिछले तीन दिन से हम कद्दू और गूलर उबाल-उबालकर खा रहे है । कद्दू भी उनके बाग से चोरी करके लाना पडा। हमारे दिन कैसे बीत रहे है, इसका भी कुछ ध्यान रखते हो तुम ? मुझे मरने का डर नही, पर बच्चो को तो तुम ही लाए हो इस दुनिया मे । उनके बारे मे कभी सोचते हो कुछ भी ?"

कहते-कहते मानो इतने दिन इकट्ठी होती घनीभूत वेदना हृदय का शासन न मान दोनो आँखो के कगारे तोडकर फूट निकली । रोने से श्यामा का गला रुँध गया ।

पर नरेन पर उन आँसुओ की प्रतिक्रिया उल्टी हुई । वह और भी बिगड उठा, "इसीलिए क्या तुम आधा बस्ता मैदा और इतना सारा नमक-तेल आदि निगले बैठी हो ? लड़के-लड़की, लड़के-लड़की क्या मुझे स्वर्ग ले जाएँगे । हरामजादे, सूअर के बच्चे !"

इस बार श्यामा का धीरज टूट गया। उसने भी अपना कण्ठ-स्वर कुछ और ज्यादा चढाकर कहा, "तुम खुद ही चारो दिन दोनो वक्त भरपेट खाकर गए थे। दोनो वक्त, अगर तीन आदमी मैदा खाएँ तो आध-मन मैदा कितने दिन चलेगी ?"

—"अभी दिखाता हूँ कितने दिन चलेगी ? पहले इन गाय के बच्चो को एक हाथ मे साफ कर दूँ। फिर तुझे काटकर अगर मैं फाँसी पर न चढूँ तो मैं बामन का लडका नही।"

यह कहकर एक क्षण के लिए इधर-उधर देखकर उसने एक कटारी उठा ली और आँगन मे आ खडा हुआ। "कहाँ है, कहाँ गए वे बेटा-बेटी। आज तुम्हे खत्म करके ही और कोई काम करूँगा।"

चरम आपत्ति मे एक तरह से आदमी मृत-प्राय हो जाता है पर अप्रत्याशित रूप मे साहस और बुद्धि भी दिखाई पडती है। रसोई के लिए बाग से बीनकर लाई कुछ पेड की शाखे पडी थी, घर के एक कोने मे अकस्मात उन्ही मे से एक उठाकर श्यामा भी बाहर निकल आई। करीब-करीब दौडती हुई-सी। फिर कुछ दृढता के साथ बोली, "छुरी नवाओ, कहती हूँ, नही मै सिर फाड दूँगी। नवाओ !"

क्या था उस आवाज मे नरेन नही समझ सका, पर इतना मालूम हो गया उसे कि इस वक्त श्यामा सब-कुछ कर सकती है। शायद मन-ही-मन उसे लगा कि आज उसने अपनी पत्नी के धीरज की सीमा तोड दी है। धीरे-धीरे उठा हाथ नीचे नवाकर कटारी आँगन मे ही फेंककर बोला, "अच्छा, आज न सही। किन्तु तुम लोगो की मौत करीब है, यह कहे देता हूँ, हाँ !"




## अष्टम परिच्छेद

### 1

उमा का सुनसान-सा घर मानो व्यग विद्रूप करता था। कभी-कभी उसे ऐसा लगता कि उसके मुँह की ओर ताक-ताककर मानो ये सारी लौनी-लगी दीवारे हँस रही है। सचमुच उसे हँसी सुनाई पडती ! उमा की बोलती बन्द हो जाती—वह भकुआकर ताकती रह जाती। आजकल हर वक्त उसे यही फिक्र सताती—वह क्या पागल हुई जा रही है !

कभी-कभी वह मन-ही-मन बकने भी लगती है। कम-से-कम माँ ने तो उसे कई बार यही कहा है। उन्हो ने उसे चौंका दिया था—चूँकि उसे तो कभी याद नही आता, कब मन की बात इस तरह होठो पर नाचने लगती है।

कभी-कभी उसे अपने पति की बाते भी याद आती। कैसा सुन्दर पति है

उसका ! कार्तिकेय-सा रूपवान्। एक-एक बार उसे लगता क्या हुआ यदि पति ने उसके साथ घर नही बसाया—ससुराल नही भी जा सकी वह—एक-आध बार भी यदि वे यहाँ आ जाते तो भी वह धन्य हो जाती। दो-एक रात भी यदि वह साथ-साथ रह पाती। आत्म-सम्मान नही, मान-मनौवल नही, किसी तरह के उलाहने से भी वह उसे तग नही करती, कोई कैफियत भी नही देनी पडती उसे। कोई अधिकार भी नही माँगती वह—अपने को एक भार की तरह उस पर लाद नही देती।

सन्तान ?

सन्तान होने पर वह दूसरो के यहाँ रसोईदारिन बनकर या नौकरानी बनकर भी उसे पाल-पनोस लेती। पति से कुछ नही कहती। एक बार आए न वह, शरत् आकर तो देखे एक बार। कल ही नौकरानी कहती थी, "कितने ही आदमी तो बाहरी औरतो को रखते है पर वे क्या इसलिए घर की बहू के साथ नही रहते है ? यह भला कैसी दुनिया से ऊपर की बात है ? ··कौन-सा मरद आजकल बाहर नही फँसा ? यह तो शहर है, व्यापारी, बाजारू जगह है, हमारे यहाँ तो, गाँवो मे भी, घर-घर यही काण्ड चलता है। पर उसी औरत के घर पडे रहना—इतनी सुन्दर बहू है, न उसे देखना, न छूना ऐसा तो कभी नही सुना मैंने !"

उसके दुर्भाग्य से ही तो यह दुनिया से ऊपर की बात हुई है।

एक बार भी नजदीक रह पाती तो वह पति के पैर पकडकर ही उसे राजी कर लेती।

पर है कहाँ वह ? उसे तो खबर तक नही मिलती। सुना है कि वह आजकल वहाँ भी नही आता—माँ को एक पैसा भी नही देता। उसको उस औरत के यहाँ या छापेखाने मे ढूँढने जाए क्या वह ? छि, वह नही कर सकेगी ऐसा।

फिर यह सम्भव भी तो नही है। पहले तो वह दोनो मे से एक भी जगह का ठिकाना नही जानती। दूसरे माँ से यह बात उठाते ही ? दो टुकडे कर देगी वे मेरे।

मन-ही-मन जब यही सब सोचती रहती वह तब शायद उसके होठ कभी-कभी हिल उठते है—उसे होश ही नही रहता। शरमाकर वह प्रतिज्ञा करती कि अब वह ऐसा कभी नही होने देगी।

× × ×

कई महीने बाद उमा को एक काम तो मिला। मुहल्ले मे एक बस्ती थी, अचानक वह तोडी जाने लगी। सुनाई पडा कि वहाँ एक थियेटर-हाउस बनेगा।

—थिएटर क्या होता है ?

—वाह वा !—नौकरानी ने हाथ-पैर नचाकर कहा, "लाटक होता है जी, लाटक। देखते ही बनता है। सब रग-ढग से सामने आते है, नाच-गान, बातचीत

करते है, फिर अपने-अपने घर चले जाते है सब लोग। जैसा सुनसान था वैसा ही हो जाना है। तुम नही जानती।"

उमा ने तो कभी थियेटर नही देखा था—हाँ दो-एक नाटक जरूर पढे थे। वह उसे थोडा-बहुत समझने की चेष्टा करती। पर इससे उसका कौतूहल तो उस ओर कुछ भी कम नही हुआ। थियेटर-हाउस वहाँ बन रहा था जहाँ कि उनकी गली चौडी सडक से मिली थी। उल्टी ओर। छत से थोडा-बहुत दिखाई पडता था। उमा को मौका मिलते ही वह छत पर जा खडी होती। मुँह-बाए ताकती रहती। क्या देखती, वह खुद ही नही जानती। मिस्त्री चिनाई करते, मजदूर ईंट-चूना जुटाते। एक बाबू दिन-रात देखभाल करता और गालियाँ देता, बकझक करता। बोली तो सुनाई नही पडती पर मुख-मुद्रा और हाथ-पैर की भाव-भगियो से यही पता चलता। और सब मिलाकर एक कोलाहल-सा भी सुनाई पडता। अजीब और नया-नया-सा लगता उमा को। कुछ तो वैचित्र्य दिखाई पडा, कुछ तो जिन्दगी की हलचल सामने आई। यहाँ खडे रहना मानो उसके लिए एक नशे जैसा हो जाता।

रासमणि चिल्लाती, पर खूब जोरो से नही। बहुत कहती तो बस इतना। "एक मकान बन रहा है, मिस्त्री, कुली, मजूर मेहनत करते है, उसमे तुझे ऐसा क्या मजा आता है री! मैं तो कुछ भी नही समझ पाती। दिन-दुपहरी धूप मे खडी रहने से बीमार नहीं हो जाएगी? सारी देही तो काली पडी जा रही है।"

ज्यादा कुछ नही कहती। वह कितनी दुखी है और इसी तरह मन भुला रही है यह वह मन-ही-मन समझती थी।

पर ये लोग तो सिर्फ मकान तैयार करा रहे है। ये लोग थियेटर वाले नही है, यह उमा अच्छी तरह जान गई।

जब-तब गाडी मे बैठकर एक बाबू साहब देख-भाल करने आते है, शायद वही मालिक हैं। थियेटर के लोग कैसे होते है? हमारे जैसे साधारण आदमियो जैसे ही क्या? कौन जाने? उसका कौतूहली मन कल्पना द्वारा अजीब शक्ले खीचता रहता।

अन्त मे थियेटर-हाउस पूरा होने वाला ही था कि अचानक थियेटर वाले उसके यहाँ आ धमके। इसकी भी उम्मीद थी भला कोई।

उस दिन नौकरानी ने रासमणि से कहा, "एक बुड्ढे-से बाबू आए है, आपके साथ मुलाकात करना चाहते है।" रासमणि ने सविस्मय घूँघट काढ लिया और नीचे उतर आई। उमा से बार-बार कह आईं कि नीचे की ओर उझके भी नही।

पर उमा का कौतूहल अदम्य था। वह ऊपर की सीढी पर बिलकुल लेटी-सी एक सन्द से नीचे देखने लगी। वह ठीक देख पा रही थी पर उसे कोई नही देख पाता। वृद्ध आगन्तुक अन्दर आ खडे हुए। अरे! यह बूढे कहाँ है। खूब, हट्टे-कट्टे जवान-से लगते है। बहुत होगी उम्र तो यही कोई चालीस के लगभग। पर इस कम

उम्र मे ही सिर के बाल तो सारे सफेद हो चले है। लम्बी छरहरी देह है, सफ़ेद धोती पहने है, सामने की ओर पटली बँधी है। सफेद चीनी कोट पहने है जिसके काजो पर कलाबत्तू का काम हो रहा है, पैरो मे उठी सूँडवाली चप्पले है। खूब जाने-माने आदमी है शायद।

वह महाशय अन्दर हाथ जोडकर आ खडे हुए। "माँ, आपके पास एक भीख माँगने आया हूँ।"

रासमणि बोली, "कहिए।"

"यह तो शायद जानती ही है आप कि यही, इसी मोड पर, एक थियेटर-हाउस बन रहा है। वह अभी तक पूरा नही हुआ। पर हम लोग बहुत देर लग रही है देखकर रिहर्सल शुरू कर चुके है, पर उधर तो अभी पाखाना या नल वगैरह कुछ भी नही है। इतने आदमी आते है, पीने के पानी की तो जरूरत पडती ही है। हमारे नौकर को अपने यहाँ से दो-तीन घड़े नल के पानी से भर लेने दे तो बडी कृपा होगी।"

रासमणि ने चेहरे पर कुछ परेशानी का भाव दिखाकर कहा, "पानी माँगने पर 'ना' नही करते—पर बाबा, मै अकेली रहती हूँ, साथ मे सिर्फ एक जवान लडकी है। थियेटर के आदमी यहाँ आएँगे-जाएँगे तो लोग क्या कहेगे—बडा डर लगता है।"

वह सज्जन बोले, "माँ, इस मुहल्ले के और किसी घर मे भी नल नही लगा, मैंने सब पूछ-ताछ कर ली है। नही तो आपको कभी कष्ट नही देता। और थियेटर के सारे आदमी तो खराब नही होते। मैं भी तो एक अच्छे बाप का बेटा हूँ। पढा-लिखा हूँ। पाथुरे घाटा की ठाकुरवाड़ी का धेवता हूँ मै।—नौकर आकर दो-एक कलसा पानी भर ले जाएगा। वह भी अच्छी जात का पच्छिमी बेयरा है।"

रासमणि ने थोड़ा चुप रहकर कहा, "अच्छा, ऐसा ही होगा। पर इससे मुहल्ले मे अगर कोई बात-चीत हुई और चख-चख चली तो फिर मुझे यह भी बन्द कर देना होगा, यह अभी से कहे देती हूँ।"

बेचारे वह सज्जन झुके और नमस्कार करके चले गए। माँ के ऊपर आने से पहले ही उमा चुपचाप हट गई। उसकी छाती धडकने लगी—पकड़े जाने के डर से नही, बाहरी दुनिया के साथ—खास तौर से जो अब तक सिर्फ खयाली दुनिया थी—यानी थिएटर के लोगो के साथ—जान-पहचान होने की सम्भावना से।

## 2

रासमणि को एक सुविधा यह थी कि मुहल्ले की चख-चख जान सकने की गुंजाइश नही थी ज्यादा। वह खुद किसी के घर नही जाती थी और उनके घर लोग बहुत कम आते थे। सादिक मियाँ के घरवाले भी मुहल्लेवालो से ज्यादा नहा

मिलते-जुलते थे। नौकरानी दिन-रात घर पर ही रहती, इसलिए जमाने भर की फिक्र से परेशान नही थी।

बहरहाल थियेटरवालो के पानीय जल का प्रबन्ध अच्छी तरह हो गया। यही नही रासमणि की इच्छा न होने पर भी उनसे कुछ घनिष्ठता भी बढती गई। अचानक एक दिन एक औरत बडी परेशान-सी भीतर आते ही बोली, "माँजी, नाराज न हो, बडी मुश्किल मे पडी हूँ, आपके इस ओर के हिस्से को जरा इस्तेमाल करूँगी।" उसने स्नानागार और शौचालय की ओर सकेत कर दिया।

चाहने पर भी रोक न सकी वह। आँखो की शर्म का खयाल। और फिर उस औरत ने भी इजाजत मिले बिना ही अपनी कीमती शान्तिपुरी साडी पर अँगोछा रखकर उधर कदम बढा दिए थे।

उसके बाद वह बाहर आते ही बोली, "ओफ्, अब जान बची!" और वह रासमणि के सामने ही रसोईघर की देहरी पर बिना कुछ बिछाए बैठ गई। फिर कहा, "एक पान दे सकेगी, माँ जननी? पानदान घर पर छूट गया है आज।"

शरमा-हज़ूरी उन्हे कहना पडा, "अरे ज़मीन पर क्यो बैठ गई, बेटी। नौकरानी आसान ला देती।"

जीभ दाँतो तले दबाकर आगन्तुका ने जवाब दिया, "अरे राम, राम, आपके आसन पर बैठ सकती हूँ भला मैं। हम तो नरक के कीडे है। जन्म-जन्म के पापो का ही तो फल है कि ऐसे घर मे पैदा हुई अब और क्या ब्राह्मण के आसन पर बैठकर पाप बढाऊँगी।"

रासमणि का दिल पिघल उठा।

"क्या नाम है तुम्हारा बिटिया?"

"मेरा नाम एककौडी है, माँ जी। बचपन मे माँ ने एककौडी मे बेच दी थी। मैं उस थियेटरमे एक्टिग करती हूँ। बडे-बडे पार्ट मिलते हैं माँ—तुम्हारे आशीर्वाद से।

हाथ जोडकर नमस्ते की उसने। देखने मे भी कितनी अच्छी है। रग साँवला है तो क्या, पर क्या मुँह पर बड़ा लावण्य है। मन-ही-मन सोचा उमा ने।

"यही तुम्हारी लड़की है, माँ जी! क्या नाम है भाई तेरा?"

"उमा!"

"वाह, सचमुच उमा ही तो हो। कितनी सुन्दर!"

ऐसी ही दो-चार बातो के बाद वह उस दिन चली गई। पर इसके बाद उसके दल को रोका नही जा सका। और भी दो एक इसी तरह शौचादि के लिए आने लगी। रासमणि ने यद्यपि पहले दिन के बाद से ही उमा को उनके सामने न आने के लिए ताकीद कर दी थी, 'खबरदार उनके सामने भी कभी नही पडना। ये लोग सब-की-सब रडियाँ है, रडियो के सिवाय यह काम करने आता ही कौन है यहाँ? मैं तो बुड्ढी हो चली, कोई डर नही है, अब। पर तूने उनसे थोडी भी दोस्ती की कि

मुहल्लेवाले पता नही लगा रहने देगे।' उमा लेकिन यह सोच ही नही पाती कि मामूली औरतो मे और उनमे क्या ऐसा फर्क है। खूब मीठी-मीठी बाते, तमीज और सलीके से आना-जाना और बडी आजिजी के साथ पेश आना। सब लोग रासमणि को दूर से ही सलाम भी करती। छुआछूत के डर से बेचारियाँ पैर छूने से डरती। थोडा-बहुत फासला रखकर बैठती वे सब जमीन पर बैठ जाती, नल से पानी पी लेती, लोटा-गिलास कुछ नही माँगती। इनके साथ मिलने-जुलने मे क्या खराबी है उमा की समझ से बाहर था यह। रडी किसे कहते है यह वह अच्छी तरह जानती ही नही थी। पर इसी बीच नौकरानी पूँटी की माँ ने सारी बाते जान ली थी। पर घृणा होने पर भी इतने आदमियो को देखकर कुछ कर नही पाती।

× × ×

एककौडी बार-बार आने लगी थी। पहले दिन जो सज्जन आए थे उनका परिचय भी उमा को उसी के मुँह से मिला। चन्द्रशेखर मुस्तफी नाम है, खूब अच्छे अभिनेता है। अच्छे शिक्षक भी है। एककौडी कहती, "बडे ही सख्त मास्टर है। रिहर्सल मे बेत लगा रहता है हाथ मे। जरा भी गलती हुई कि पीठ पर बेत पडा। पर मुझसे कुछ नही कहते। मै तो उनके भी जो उस्ताद है उनसे सीखती हूँ। वे मेरे नाम के शौहर है। पर मुस्तफी साहब से डरती मै भी हूँ।"

फिर एक दिन बोली, "थियेटर खुलने दीजिए मैं तुम्हे एक दिन पास ला दूँगी माँ जी। बस अब दो महीने और है।"

रासमणि बडे जोरो से सिर हिलाकर कहती, "ओ माँ, छि थियेटर देखने जाऊँगी भला मैं।"

"इसमे क्या हुआ माँ। जैसे, सीता बनवास ही लीजिए न। मैं सीता बनूँगी। मेरे जो गुरु है वह राम बनेगे। देखना कैसा होगा।"

ऐसी ही कितनी ही बातो का तुरग बे-लगाम छोड देती वह। अपनी जिन्दगी की बहुत-सी बाते सुनाती। वह मानो बिलकुल निराली दुनिया थी एक—एकदम दूसरी तरह के लोग-बाग। वे सब बाते कहते वक्त यद्यपि एककौडी फुसफुसाने लगती पर फिर भी उमा सुन लेती। सुनती और सिहर उठती। पर साथ-ही-साथ एक अद्भुत आकर्षण भी महसूस करती। सुने बिना रह न पाती।

एक दिन एककौडी कुछ बेवक्त ही आ गई।

शायद तब डेढ का घटा बजा ही था, रासमणि ऊपर थोडा आराम कर रही थी। और पूँटी की माँ के बहुत अनुनय-विनय पर उमा ने पूँटी को वर्णमाला का पहला भाग पढाना शुरू किया था। नीचे का दरवाजा किसी कारणवश खुला छूट गया था, किसी को आहट भी नही मिली।

उमा चौंक पड़ी किन्तु उससे भी ज्यादा विस्मित हुई एककौडी। वह गालो पर हाथ रखे कुछ देर तो चुपचाप खडी रही फिर बोली, "अरे, तुम क्या लिख-पढ सकती

हो ? इतनी छोटी-सी लडकी और यह सर्राटे से पढना। अरे राम ! अब क्या होगा, कहाँ जाऊँ मै ?"

थोडा-सा गर्व तो होता ही है इस हालत मे। पर उसके साथ ही करुणा भी हो आई उसे।

"तु··· आप नही जानती बिलकुल?" उमा ने बडे सकोच के साथ प्रश्न किया।

"बिलकुल नही। हम लोगो मे से कौन-कौन जानता है भला, मुश्किल से एक-दो। बाकी सभी तो मूर्ख हैं। कितनी औरते पढी-लिखी है···और उस पर भी हमारे घर की तो बात ही न्यारी है।"

उमा ने ओट मे बैठकर सुनते-सुनते इन लोगो की बहुत-सी बाते जान ली थी। इसीलिए उसने ही पूछा, "जी, तो फिर पार्ट कैसे याद करती है ?"

"मुझसे 'आप' और 'जी' क्यो कहती हो। तुम ठहरी बामन की लडकी और सधवा, हमारे सिर पर पैर रख दो तो भी जन्म सार्थक हो जाए। हाँ, क्या सब कह रही थी, पार्ट ? पार्ट तो सुन-सुनकर याद करती हूँ। कोई भी एक आदमी पढता जाता है और हम लोग सुन-सुनकर याद कर लेती है। पर भला आसानी से याद होता है कही ? नही होता।"

फिर थोडा दम लेकर और मुँह मे पान-तमाखू भरकर बोली, "माँ कहाँ है ?"

"ऊपर लेटी हैं ?"

"सो रही हैं ?"

"नही ··उन्हे अच्छी नीद कभी नही आती। किताब-फिताब पढती रहती है। नही तो ऐसे ही लेटी रहती है। आज इस वक्त कैसे ?"

"तुम या आप" कहने का मौका ही नही आने दिया उमा ने।

"हाय राम ! माँ भी पढी-लिखी है। अच्छा, इसीलिए तुम भी सीख गईं।"

"नही—ऐसा नही। हम सब तो पाठशाला मे भी पढी है।"

एककौडी ऊपर चढकर चौखट पर बैठ गई।

"माँ जननी कहाँ गई ?"

किताब पढते-पढते शायद रासमणि की आँख लग चुकी थी, उसकी पुकार पर हडबडाकर उठ बैठी, बोली, "अरे तुम, आओ आओ। अन्दर बैठो न। छि चौखट पर नही बैठते। पर इस ठीका-ठीक दुपहरी मे कैसे आई ?"

"आज शाम को माँ एक बाग मे जाने की पेशगी मिल चुकी है, इसीलिए रिहर्सल दुपहरी मे हो रहा था। मेरा काम खत्म हो गया अब तो सिर्फ गाना बजाना हो रहा है, पर थोडी देर बाद ही मेरी जरूरत पडेगी। मैं इसी बीच माँ तुम्हारे पास भाग आई। बडी प्यास भी लग रही थी।"

"आह, सो क्यो नही लगेगी, इस दुपहरी मे इधर-उधर दौड रही हो ?"

रासमणि ने उठकर दो नारियल के लड्डू और एक लोटा पानी दिया।

"पानी मेरी ओक मे डाल दीजिए, माँ।" कुछ अप्रतिभ-सी हुई रासमणि, पर बोली, "नही, नही, तुम ऐसे ही पियो। इसमे क्या दोष है ? तुम भी तो मनुष्य हो।"

फिर भी उसने लोटा मुँह से नही लगाया, सिर्फ ऊपर से मुँह मे डाल लिया और चुपचाप एक तरफ रख दिया। फिर कुछ इधर-उधर की बाते बनाकर कहा, "माँ, एक बात कहूँ, अगर गुस्सा न हो तो ?"

"नही, नही, गुस्सा क्यो होऊँगी भला ? कहो न "

"नही माँ। इस पर नाराज न हो, मैं खूब सोच-विचार कर कह रही हूँ। आपकी लडकी उमा तो खूब लिख-पढ लेती है।"

"खूब कहाँ कर पाती है, पर उसने वजीफा लेकर पास किया।"

"वाह, पास भी कर चुकी है। तब तो अच्छी तरह पढी-लिखी है।"

"पर अगरेजी तो नही जानती। आजकल कुछ लडकियाँ तो अगरेजी भी पढ रही है।"

"अँगरेजी भाड मे जाए। मैं तो आपसे यह कहती थी कि आपकी उमा क्या हमे पढा सकती है ? हम लोग आठ-दस औरते मिलकर पढेगी। एक रुपया, दो-रुपये, जिसकी जो सामर्थ्य होगी देगी। महीने मे कम-से-कम पन्द्रह रुपये तो आ ही जाएँगे सो भी हँस-खेलकर। एक साथ ही पढ लेगी हम सब, शायद ज्यादा भी हो जाए आमदनी। बहुत हुआ तो बस एक घटे की मेहनत !"

रासमणि ने बडी दृढता से सिर हिलाकर कहा, "नही-नही, ऐसा हो सकता है भला ! उससे बहुत निन्दा होगी।"

"निन्दा कैसी माँ ? पढना-लिखना सिखाने मे काहे की निन्दा होगी ? इसके अलावा—" थोडा खाँसकर गला साफ किया एककौडी ने—"तुम तो मेहरबानी करके सब बता ही चुकी हो माँ, मै तो सब जानती ही हूँ—अभी तो सारी जिन्दगी पडी है लडकी की, तुम्हारी आँखे मुँदने पर क्या करेगी, कुछ सोचा है ? रसोईदारिन बनेगी अथवा नौकरानी—नही तो बस, बडी बहन के यहाँ जाकर बिना तनख्वाह की नौकरी !"

रासमणि मन-ही-मन इतनी हमदर्दी दिखाने के लिए नजदीकी बनने की हिम्मत पर कुछ बिगडी, भौहे टेढी कर बोली, "जो होगा हो जाएगा, पर अभी इस जवान लडकी से मैं रुपये कमाने का काम-धाम नही कराऊँगी। फिर तुम दस-बारह औरतो का दल बाँधकर रोज शाम यहाँ आने लगोगी तो—बुरा नही मानना—मुहल्ले के लोग क्या कहेगे ?"

"अच्छी बात है, शाम के बाद गाडी भेजकर उसी को लिवा ले जाऊँगी।"

अब रासमणि अपनी नाराजी दबा नही सकी। साफ कह दिया, "मेरी लड़की थियेटर जाएगी—तुम्हारी हिम्मत तो कम नही है, बेटी। ये सब बाते अब नही

सुनूँ मैं फिर।"

सहम गई एककौडी, "माँ, आप तो नाराज हो गई, मैने और किसी खयाल से कुछ नही कहा। मैने तो पहले ही कह दिया था आपसे कि गुस्सा नही करिएगा।"

रासमणि शान्त तो हुई पर जवाब नही दिया कुछ भी। अपमान अनुभव होने से दबा हुआ क्रोध उनका हृदय अन्दर-ही-अन्दर जलाने लगा।

एककौडी कुछ देर चुपचाप बैठी रही फिर मौका देखकर चली गई।

× × ×

उमा ने भी सारी बाते सुन ली थी, ज़ीने के मुहाने पर ही तो खडी थी वह। इसके तीन-चार दिन बाद ही उसने अपना समस्त सकोच और शका छोडकर खुले आम विद्रोह कर दिया। साफ-साफ कहा—"आप तो सभी बातो मे ना कर देती है, पर बताइए तो मेरा क्या इन्तजाम करेगी ?

—आपकी जो पूँजी है उससे तो बहुत हुआ तो पाँच-सात साल और काम चल जाएगा। उसके बाद आपका भी तो कैसे काम चलेगा और मै भी कहाँ जाऊँगी ?"

रासमणि ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर ताककर कहा, "ठीक है तुम्हे ससुराल पहुँचाए देती हूँ। वहाँ तुम जो चाहो करना।"

"क्यो जाऊँगी मैं वहाँ ? गला कटाने ? आप ही ने यह शादी की है। इसका भार मेरे ऊपर ही है क्या ?"

"तुम्हारा भाग ही खोटा है तो क्या किया जाए—हम लोगो ने कोशिश मे कोई कमी नही की।"

"बस अब भाग खोटा हो गया।—पर इस काम मे भी भाग को ही क्यो नही कोसती ? मुझे यदि मेहनत-मजूरी ही करके जीने दे तो क्या हुआ ?"

"तो इसके लिए क्या तुम इन थियेटर की रडियो को पढाने जाओगी ? तुमने दस-पन्द्रह कमा लिए तो मुझे क्या ऐसा बहुत बडा फायदा होगा ?"

"दस-पन्द्रह से बीस-पच्चीस होते कितनी देर लगती है। पहले काम करने की आदत तो पडने दीजिए माँ। और दस-पन्द्रह रुपये मे एक पेट का खर्चा काफी अच्छी तरह चल जाता है, माँ।"

उमा को मानो अपनी हिम्मत पर खुद ही आश्चर्य हुआ।

"किन्तु तुम्हारी तो कुछ ज्यादा उम्र अभी नही हुई बेटी ! रूप-यौवन बडे दुश्मन है। इतने बडे दुश्मनो को साथ लेकर तुम कौन-सा काम करने जाओगी ? और यँही क्या कह सकती हो कि पाँच-सात साल बाद जमाई की बुद्धि ठीक नही हो जाएगी ?"

इसकी उम्मीद तो उमा ने भी नही छोडी थी अभी।

वह चुप रह गई। उसका पति कितना सुन्दर है—बिलकुल कामदेव-सा कमनीय। इस रूप-स्मृति ने मानो आशा की एक चिगारी को निराशा की राख की ढेरी से ढँकी रहने पर भी कामना की ब्यार से प्रज्ज्वलित कर दिया। इतने दिनो बाद, मन मे बसी हुई जडता किसी एक अनजानी दक्षिणी हवा से दूर हो गई और उसकी देह-लता थर-थर काँप उठी।

3

दो दिन बाद, अचानक एक दिन चन्द्रशेखर मुस्तफी खुद ही हाजिर हुए। हाथ जोडकर बोले, "माँ, आपसे सिर्फ एक विनती है।"

वजह ठीक भाँप न सकने पर भी न जाने क्यो एक आक्रमण जैसी भावना से रासमणि कठोर-सी होकर बोली, "कहिए।"

"मै ब्राह्मण हूँ, आपके लडके के बराबर हूँ। एक बात कहूँ तो बुरा न माने। एककौड़ी से सब सुना है मैने। यदि आपकी पुत्री मेरी बहन, यह काम कर सके तो एक बहुत बडे भार से मुक्ति मिल जाएगी मुझे। मै अलग एक कमरा दूँगा। वचन देता हूँ कि उसमे कभी कोई मर्द अन्दर नही जा सकेगा। हमारी नौकरानी रोज शाम को सात बजे के करीब लिवा ले जाएगी, घूँघट काढकर चुपके से जाएगी, कोई नही रखता नजर-वजर। मैं उधर मुहाने पर खडा रहूँगा, मजाल है जो कोई आँख उठाकर देख जाए। कुल मिलाकर वे नौ औरते पढेगी, दो-दो रुपये फीस के देगी, ऊपर से हम लोग थियेटर से बारह रुपये महीने अलग देगे। और लोग जानेगे तो क्या कहेगे, इसकी क्यो परवाह करती है। आपको कौन अब किसी लड़की की शादी करनी है। समाज के साथ अब आपको क्या लेना-देना?"

रासमणि कुछ देर चुप रही, फिर बोली, "पर मेरे और भी लड़की-दामाद है—उनका भी तो एक समाज है।"

"यह कलकत्ता शहर है, माँ। यहाँ समाज का शासन न के बराबर है और कौन यहाँ किस की परवाह करता है या खबर रखता है?"

"ना भाई,—ये सब बाते और नहीं उठाइएगा मैं नही कर सकूँगी यह।"

रासमणि एक अदृश्य-सी गुस्सा से जल उठी। यह गुस्सा उन्हे भाग्य पर आया इतना करने पर भी क्या अदृश्य देवता की साध नही मिटी। उसे और भी तग करने के लिए यह कैसा षड्यन्त्र है? चारो ओर लालच का लुभावना जाल फैलाए दे रहा है। रासमणि मुडी और फौरन ऊपर चली गई, जानबूझकर मुस्तफी को अपमानित करने के लिए।

पर उनका हमला इतने से ही नही रुका।

फिर एककौड़ी आई। बहुत-सी तरजीहे, बहुत-से लालच।

अन्त में, एक दिन कमला आई तो सब सुनकर बोली, "भेज दीजिए माँ, और

दुविधा मे मत पडिए।"

"तुम भी यही कहती हो ? जमाई क्या सोचेंगे यदि सुनेंगे तो ?"

"वह मै खुद उनसे कह दूँगी, इतनी हिम्मत है मुझमे। इसमे दोष ही क्या है ? बिना बात इतना क्यो डरती है समाज से—समाज आपको खाने-पहनने को दे देगा क्या ? दूसरे की दया पर किसी तरह जिन्दा रहने से तो मेहनत-मजूरी करके जीना कही अधिक अच्छा है।"

"पर ऐसी रूपसी लडकी को कैसे भेजूँ वहाँ, भला ?"

"इस बारे मे तो मुस्तफी ने ठीक ही कहा है, माँ रूपसी लडकी यदि खराब ही होना चाहे तो उसे आप बचा भी कैसे सकती है ? कब तक निगाह रखेगी उस पर ? इसके अलावा हम सब बहनो मे से एक भी खराब नही है माँ।"

और दो-एक दिन सोचा, और भी अनुरोध आग्रह किये गए। अन्त मे वह कमज़ोर पड ही गई। अनिच्छा रहने पर भी एक दिन 'हाँ' करनी पडी। पर उसके बाद ही पूजा पर बैठते ही उनकी आँखे भर आई, "ठाकुर यह क्या किया तुमने !"

उमा का दिल धडकता रहा दिन भर। एक अनजानी आशका। एक अपरिचित आशा। किसी भी तरह कही नही बैठ सकी वह, कुछ भी नही सोच सकी, दिमाग ही ठिकाने न था।

शाम होने से पहले इच्छा हुई कि माँ से कहे जाकर, "मैं यह नही कर सकूंगी, माँ। आप मना कर दीजिए।'

पर एक नई उम्मीद, काम मे लगे रहने की उम्मीद, पैसा कमाने की उम्मीद और भी ऐसी कितनी ही उम्मीदो ने बाधा दी आकर। और यह उम्मीदो का चक्कर ही उसे थियेटर की पद्मा नौकरानी के पीछे-पीछे अपने अमोघ अप्रतिहत बल से खीच ले गया। सिर से घूंघट काढे सारी देह चद्दर से ढँके वह किसी तरह मुहल्ला पार कर गई पर उसे ऐसा लगा मानो हजारो कौतूहलभरी आँखो ने उसे देख-देखकर हँसी-मज़ाक जाहिर किए हैं। थियेटर पहुँचकर तो और भी हालत बिगड गई उसकी। दो-चार औरतें ही परिचित थी उससे, बाकी सब उसकी ओर ऐसे ताकने लगी कि उमा को ऐसा जान पडा कि उनकी नज़र के पीछे सकौतुक हास्य छिपा है मानो। मानो उनका मनोभाव नि शब्द कह रहा है और कितने दिन, जल्दी ही हम लोगो मे मिल जाना पडेगा। अब देर कितनी है भला। यह भद्रता की उद्दण्डता ज्यादा नही चलेगी, बहुत देखी है हमने।

इसके अतिरिक्त मुस्तफी साहब की कडी ताकीद रहने पर भी दो-एक आदमी इधर-उधर से ताक-झाँक करने से भी नही चूके। उन लोगो की ओर न ताकने पर भी उमा सब समझ गई।

पसीने से नहा उठी उमा, उसकी छाती मे न जाने क्या होने लगा, हाथ-पैर सुन्न-से पड गए।

कुछ मिनट किसी तरह बिताकर अचानक एककौडी से बोली, "आज, आज मुझे बडा डर लग रहा है दीदी, मुझे घर भेज दो।"

एककौडी की आँखो से करुणा फूट पडी, "समझ गई भाई मै सब। ऐसा ही होता है पहले-पहल। सबके सब अजनबी ही तो है यहाँ। आज और मत पढाओ। थोडा गप-शप करो बैठकर।"

"नही, नही, मेरा जी मिचला रहा है। मुझे अभी घर पहुँचवा दो।"

कहकर वह स्वय ही निकल पडी। उल्टी ओर से निकलने मे ही अनजाने ही थियेटर मे पडी रस्सी और डोरी के जाल मे फँसकर और भी दिग्भ्रान्त-सी हो उठी।

"ओरी पद्मा, देख तो सही इसे। जा जा, जल्दी से तू। अरी बहन, इधर आ। चल मै तुझे स्वय ही पहुँचा आऊँ।" एककौडी चिल्लाने लगी। पद्मा दासी ने दौड-कर उमा का हाथ पकडा और उसे बाहर ले आई।

एक औरत ने एककौडी से कहा, "तुम भी क्या कर बैठती हो, दीदी ? यह तो बिलकुल बच्ची है अभी इसे यहाँ क्यो लाई।"

दूसरी ने उसके चिहुँटी काटकर कहा, "अरी चल, चुप रह। ऐसी बहुत-सी बच्चियाँ देखी है हमने। थोडे दिनो बाद यही स्टेज पर उतर घेति-घेति करके नाचने मे भी नही डरेगी।"

एककौडी ने उसे घुडककर चुप किया।

× × ×

थियेटर से बाहर आकर उमा पहले तो घबडा गई। फिर पद्मा दासी ने जब उसका हाथ खीचकर कहा, "अरी इधर देख न, ऐसी भकुआकर क्या ताकती है?" तब मानो उसे होश हुआ। अपनी गली पहचानकर उसने हाथ छुडा लिया और सडक पार होते ही दौडकर घर पहुँचकर साँस ली।

पर वह अपने घर मे घुसती ही थी कि इसी समय किसी परिचित कण्ठ की आवाज सुनाई पडी, "सुनती हो उमा, थोडा सुनो तो।"

चौककर काँप उठी उमा। गिर पडती शायद, अगर दीवार न पकड लेती। बहुत कम परिचय था इस कण्ठ स्वर के साथ 'पर मानो उसके सम्पूर्ण हृदय मे इसी का एक-एक स्वर सदा जागृत था—मानो हृदतन्त्री इसी एक स्वर पर हमेशा के लिए बँध गई है।

यही तो उसका पति है—शरत्।

उमा ने आँखो से उसकी ओर ताका नही, पर पहचान गई। देह के एक-एक अणु-परमाणु से वह उसकी मौजूदगी महसूस कर सकी।

"तुम्हे अभी-अभी तो इस थियेटर से बाहर निलकते देखा था, सच है न?"

इस सरल सवाल के पीछे एक शिकायत छिपी थी, उसी पर उमा कुछ कठोर

हो गई। अभी तक उसका गला मानो रुँधा जा रहा था पर अब साफ-साफ जवाब दिया, "हाँ, क्या हुआ इसमे ?"

"आखिर, तुम इस पर उतर आई ? छि, छि।"

उबल पडी उमा, "तुमने तो मुझे छोड ही दिया हे, मेरी गुजर-बसर कैसे होती है, यह भी सोचा है कभी ? विधवा माँ मुझे कहाँ मे और कब तक खिलाएगी ? और माँ मरने पर कहाँ जाऊँगी ?"

"तुम्हारे प्रति मैं वहुत ही अपराधी हूँ, यह सच है, शायद कुछ भी कहने का हक नही है मुझे, फिर भी तुम थियेटर मे पार्ट लोगी—नही, नही—उमा, यह मैं सोच भी नही सकता। ऐसा न करो। छि।"

इतना कहकर मानो भागता हुआ-सा शरत् अँधेरे मे समा गया।

वह ससुराल नही आया, सिर्फ रास्ते मे अचानक भेट हो गई, उमा ने यह कल्पना ही नही की। पर भीतर चलने के लिए उसने आमत्रण भी नही दिया। भीतर चलो·· आज की रात रहो, यह तो उसके सम्पूर्ण स्वान्त की आर्त काकूति है, यह क्या वह जानते नही। जरूरत नही समझी, इसीलिए उमा ने कुछ भी नही कहा। कहने का मौका भी तो नही मिला उसे। पर इसी से क्या उन्हे चले जाना था।

उनसे कितना कुछ कहना था उसे, कितनी भीख माँगनी है उसे उनसे। वाञ्छित, आराधित देवता हाथ के पास आकर भी न जाने किस अनिर्दिष्ट समय और सीमा से परे के देश चला गया, अब क्या वे सारी बाते कहने का मौका आएगा?

उनका उलाहना कितना भ्रान्त था, यह भी तो नही कह सकी वह।

यह क्या हुआ, यह क्या हुआ।

अचल पत्थर-सी निश्चल खडी रही उमा वही, ठीक उसी तरह एक पैर चौखट के भीतर, एक हाथ से किवाड पकडे काफी देर तक। थोडी भी हिलने-डुलने की शक्ति नही रही उसमे।

## नवम् परिच्छेद

### 1

उस दिन सारी रात जगकर उमा अनुपस्थित पति से बार-बार यही कहती रही, "खूब जाऊँगी। मेरी जो खुशी होगी करूँगी। नही···तुमने मना किया है, इसीलिए और भी करूँगी। क्यो, तुम मुझे क्यो रोकोगे ? क्या हक है तुम्हे ? मुझे तुमने कौन-सा अधिकार दिया है ? एक दिन के लिए भी तो ग्रहण नही किया, फिर मैं तुम्हारी मान-मर्यादा के बारे मे क्यो सोचूँ ?"

वह यह नही समझी कि उसके हृदय मे स्वामी का अनुरोध मनाही के रूप मे बार-बार गरज रहा है। अन्दर-ही-अन्दर शायद अपने अवचेतन मे वह यह समझ गई थी कि यह अनुरोध न मानने की शक्ति नही है उसमे। इसलिए मन-ही-मन वह इतनी गर्ज-तर्ज रही थी। यही तो दुर्बल हृदय की स्पर्धा है·—पर यह आत्म-विश्लेषण की शक्ति उसमे नही थी। सुबह उठते ही आखिर उसे यह मानना ही पडा। निशीथ के अधकार मे प्राय मानसिक वृत्तियाँ भी बाह्य प्रकृति के समान अस्पष्टता या जडता से आच्छन्न-सी हो जाती है। पर सूरज निकलते ही वे फिर स्वच्छ हो उठती है। उमा ने भी अपने मन के सत्य को अच्छी तरह समझ लिया। जिस पति ने उसे एक दिन भी पत्नी के रूप मे सम्मान नही दिया, जिसने एक अत्यन्त तुच्छ कारण से उसकी जिन्दगी खराब कर रखी है, जिससे उसे निर्मम उपेक्षा और जिसके रिश्तेदारो से उसे निरादर ही मिलते रहे है उसी का यह अन्यायपूर्ण और असगत अनुरोध भी उसके लिए अनुपेक्षणीय ही है। अपनी असहाय स्थिति को सोच-कर ही वह सुबह होने पर भी रो पडी। ये आँसू क्षोभ और अभिमान के थे··उसे भाग्य पर मान हो रहा था, शायद अपने ऊपर भी।

शाम को पद्मा दासी बुलाने आई। पर उमा ने उसके पहले ही माँ से कह रखा था। माँ ने मुस्तैदी के साथ कह दिया, "देख बेटी, तू मुस्तफी महाशय से उसका नमस्कार कहकर बता देना कि उसकी हिम्मत नही है यह काम करने की। वे उसे माफ, करे।"

दासी और भी कुछ कहती, पर रासमणि ने बीच मे ही रोककर कहा, "नही, नही, राजी होना ही उसकी सबसे बडी गलती थी"·· एक ही बार मे वह मालूम हो गई, यह अच्छा ही हुआ। गुरु महाराज ने रक्षा की। मै अब इस बारे मे किसी तरह भी राज़ी नही हो सकती, कह देना।"

## 2

सावन अभी आधा ही बीता था कि रासमणि की बडी बहिन आ गई। साथ मे वही बेजोड लोटा था और बगल मे अँगोछे मे लिपटी तीन कोरी धोती लगी थी बिना किनारी वाली थान की धोतियाँ। आते ही कहा, "मरने आई हूँ री, रासू। तेरे यहाँ ही मरूँगी—यही इच्छा थी हमेशा से। मरते वक्त ही तो आदमी की आखिरी बहादुरी होती है। कहते है न, जप-तप करने से क्या है इस मृत्यु-लोक मे मरना जानने से ही सब कुछ होता है। ··भगवान् से तो इसीलिए आठो पहर कहती रहती हूँ कि पैदा होते ही तो पीछे पड गए हो अब मरते दम भी तग न करना। रासू के पास ही दम निकले बस। और तो जहाँ भी कही जाऊँगी, मुसीबत आ गई, समझेगा।"

उमा नि.शब्द उनकी ओर ताकती रही। खूब सशक्त देह है अभी। उम्र साठ

के लगभग है तो क्या हुआ। न तो एक भी दाँत उखड़ा है अभी और न ज्यादा बाल ही सफेद हुए है। बुढापे की छाप है सिर्फ झुकी कमर पर·· पर वह भी बहुत थोडी ही तो झुकी है। और तो कही एक भी रोग का चिह्न नही है। यह मरेगी भला ?

"ऐसे भकुआकर क्यो ताकती है री ?" बडी मासी माँ ने हँसकर पूछा।

"आपको क्या बीमारी है बडी मासी माँ ?"

'बीमारी ? अभी तो कुछ नही है। बीमार होने से कैसे चलेगा। बडे भाई के लडके के यहाँ मालदा मे थी। रेल-स्टीमर मे बैठ और दो दिन से कुछ भी न खा-पीकर यहाँ पहुँची हूँ।"

"तो फिर ?" और भी अचम्भे मे आकर कहा उमा ने।

"तो फिर क्या ? मरने की बात जो कहती हूँ, भाई, उसकी तो मुझे टेर मिली है। धान के चावलो का भात कडुवा लगता है—मैं और ज्यादा दिन नही बचूँगी यह बिलकुल ठीक है। बहुत हुआ तो छ महीने।—हाँ बीमारी तो होगी ही, एक न एक जरूर, बुखार या दस्त अथवा दोनो। बस, उसके बाद तो टे बोल ही जाऊँगी। एक ही बार मे पार।"

रासमणि ने लडकी को धमकी देकर कहा, "पहले थोडा पैरो पर जल डाल, नहाने का इन्तजाम करे सो तो कुछ नही—खडी-खडी बेकार की बाते बना रही है।'

सकपकाकर उमा ने झटपट एक लोटा पानी लाकर बिना छुए ही पाँव धो दिए। सिर मे लगाने का तेल एक कटोरी मे लाकर चौबच्चा (पानी की कुडी) की मेड पर रख दिया। फिर रासमणि एक सफेद धोती हाथ मे लिए आ खड़ी हुई। बडी मासी माँ अपने साथ जो धोतियाँ लाई है वे सब तो धो देनी होगी। रेल-स्टीमर मे जो आई हैं।

नहा-धोकर कपडे बदले उन्होने। उमा ने फिर फुसफुसाकर पूछा, "अच्छा, आप अगर यह समझती हैं कि माँ को छोडकर और कोई भी आपकी सेवा-सुश्रूषा नही करेगा तो माँ के पास ही क्यो नही रहती ? इस बुढापे मे इधर-उधर क्यो घूमती है ?"

"अरे मैं क्या इतनी बुद्धू हूँ री ?" उनके मुँह पर जानकारी की हँसी फूट पडी, "अरे,मै अपना भाग-सुभाव जानती हूँ री। जहाँ भी रहती हूँ जाकर, वही सब लोग जल-भुन जाते है। यह तो मेरा मरने का ठिकाना है, इसे भी क्या नाराज कर सकती हूँ। फिर मैं खडी कहाँ होऊँगी जाकर, कौन देखेगा मुझे ? कोई अपना आखिरी आसरा नष्ट करता है, भला। हमेशा से जिसकी जो गुस्सा जमती रही है वह मरते वक्त जरूर बदला लेती है। उँह, मैं वह बन्दी नही जो यह सब सहूँगी।" यही सब कहती और अपने मन-ही-मन हँसती।

उमा बडी मासी माँ को पाकर जैसे बच गई। चलो कुछ काम तो मिला। साथ-साथ घूमती, तरह-तरह की खातिर-खुशामद करती और बात-बे-बात चिल्ल खाती पर यह भी अच्छा लगता उमा को। निपट निष्क्रियता से तो यह भी अच्छा था। शायद उसने अपनी तरफ देखकर यह समझ लिया था कि बडी मासी माँ की तकलीफ मानो उसकी अपनी ही है। इस थोडे से समय मे ही वह तो पागल-सी हो उठी है, और बडी मासी माँ अभी तक चलती आ रही है। अन्दर जो आग जल रही है उसका कुछ ताप तो बाहर निकलेगा ही।

रासमणि भी यह समझती थी। फिर भी कभी-कभी असह्य हो उठता था उन्हे। रसोई की चौखट पर बैठी-बैठी मासी माँ जो जहर उगलती रहती उसे बिलकुल नीलकण्ठ बने बिना बर्दाश्त नही किया जा सकता था, अत किसी-न-किसी असावधानी पर दोनो मे झगडा भी हो जाता। रासमणि बहुत कम बोलती। पर कभी-कभी सहने की सीमा टूट जाती। फिर जो कहती वह मर्मबेधी होता। बडी मासी माँ एकदम बिगड पडती—जोर-जोर से गालियाँ देती, रोती-चिल्लाती, पागलो-जैसी हरकते करती। थोडी देर यह सब करके अगर उधर-से कोई जवाब न मिलता तो झट-पट लोटा-धोती उठाकर नीचे उतर आती उस वक्त उमा को ऐसा लगता कि आपे से बाहर है इस वक्त, बस अब चली जाएँगी। पर वह जाती नही कही भी। बाहरी दरवाजे पर जाकर धपाक् से बैठ जाती, धीरे-धीरे रोती रहती, फिर उठ आती। बहन की ओर मुखातिब होकर कहती, "समझ लिया है कि इस तरह तग करूँगी तो यह भाग खडी होगी। मैं कही नही जाऊँगी, जाने से काम कैसे चलेगा? मरते वक्त सेवा जो लेनी है, अब तो इस घर से लाश ही निकलेगी।"

भादो के अन्त तक सचमुच ही बडी मासी माँ ने खाट पकड ली। पहले बुखार, उसके बाद दस्त। दोनो ने जोर पकड लिया। डाक्टर आया तो उस बुखार के ज़ोर मे ही हडबडाकर उठ बैठती और बकने लगती, "हाँ री रासू, तेरा मतलब क्या है, मुझे क्या बिना इलाज के ही मार डालेगी?"

रासमणि की बोलती बन्द हो जाती।

"इसीलिए तो डाक्टर बुलाया है, जीजी।"

"बहुत खूब। उद्धार कर दिया एकदम। अब इस आखिरी वक्त पर अपना जनम बिगाडूँगी—जो कभी नही किया वह अब करूँगी—इस मुर्दे चीरनेवाले डाक्टर की दवा खाऊँगी? कविराज नही बुला सकती क्या?"

कविराज आया नब्ज पकडकर बताया, ज्वरातिसार (बुखार-दस्त) है। उसे भी डाँटा बडी मासी माँ ने। सो तो इस दुधमुँही बच्ची को भी पता है। ज्वर और अतिसार होने से ज्वरातिसार।"

कविराज ने दिलासा दिया "कुछ डर नही है, अच्छी हो जाओगी।"

"खाक होऊँगी! तुम कोई पडित हो जो समझ गए सब। देखते नही कि मौत के

मुँह मे बैठी हूँ। दवा मेरे लिए कुछ नही चाहिए—मै अच्छी नही होऊँगी—पर तुम दवा दो। दवा क्यो नही खाऊँगी। मरूँगी तो पर क्या इलाज किए बिना ही ?"

दसेक दिन बाद ही बीमारी जोर पकड गई। धीरे-धीरे हाथ-पैर फूलना शुरू हो गया। दुर्गा पूजा की छठ के दिन तडके ही बहन को बुलाकर कहा, "ज्यादा दिन तकलीफ नही दे पाई री। बहुत थोड़े मे ही तेरा छुटकारा हो गया!"

रासमणि कुछ समझ नही पाई। उनकी तरफ देखती रही।

"नही समझी अभी। बुलावा आ गया। लोगो को बुला—घाट पर ले जाने की तैयारी कर।"

उमा फिर भी कुछ नही समझी। अपनी मौत के बारे मे क्या आदमी इस तरह पहले से ही बोल सकता है? इतनी असदिग्धता और निडरता के साथ भी क्या मौत किसी के सामने आती है?—उसकी आँखे भर आती, इस कलह-प्रिया कटूक्ति-परायणा बुढिया के लिए साथ-ही-साथ आतक से सिहर उठती वह कि उसका भी अन्त ऐसा ही होगा क्या?

कमला को खबर मिलते ही बडे जमाई आए और भी कुछ आदमी इकट्ठे हो गए। खाट पर सुलाते वक्त भी बडी मासी माँ ने उनको डाँटा जो उन्हे वही सुला रहे थे। लोटा बहन को देकर बोली, "सब बन्धनो से छुटकारा कर लेना चाहिए। नही तो फिर आना पडेगा। सिर्फ यह लोटा ही रह गया मेरा एक बन्धन। इसे तू रख ले। बस, अब हो गई मेरी छुट्टी। गगा, गगा, हरि बोल, हरि बोल।"

सारा रास्ता इष्टदेव का नाम जप करते गईं। गगा के घाट पर जाकर खटिया समेत उन्हे धारा मे उतरा गया। रासमणि ने मुँह मे गगा-जल डाला, सारे शरीर पर छिडका। गगौटी छाती और माथे पर लेप दी। बडी मासी माँ आँखे बन्द किए पडी थी, इस वक्त सिर्फ एक बार बोली, "पेट पर भी लगा दे। आहा, ठडा हो जाए। बडी आग जल रही है।"

उसके बाद उसे गगा-यात्रियो की खातिर बने बारादरी से कमरे मे रख दिया गया। तब नीमतल्ला पर इस जगह की हालत बहुत ही खराब थी। टूटी दीवारे, फूटी छत, किसी तरफ भी दरवाजा नही था। बरसाती पानी बाहर की बनिस्बत अन्दर ही ज्यादा पडता था। उस निर्जन श्मशान मे इस टूटी-फूटी जगह मे दिन मे ही बडी भयकरता जान पडती थी। पर सिवाय इसके दूसरा उपाय भी क्या था। जो साथ आए थे वह स्नान करके चले गए। रासमणि अकेली रह गई उनके साथ। यह तय हुआ कि बडे दामाद का नौकर बार-बार आकर इनकी खोज-खबर ले जाएगा। वे स्वय भी सुबह-शाम आएँगे।

बडी मासी माँ ने यहाँ आने पर सिर्फ एक ही बात कही थी, गगा-तट पर और कोई गन्दी बात नही होने दूँगी रासू—तू निश्चिन्त रह। बस जान निकलने मे जो

थोडी-बहुत देर लग रही है वही परेशानी है। और उसके बाद तो वह बेहोश हो ही गई।

इसी तरह सारा दिन कट गया। शाम को और भी दो एक आदमी आए खोज करने। एक महिला बोली, "पार करो, पार करो—नही तो यह खड-खडिया राँडी हाल ही नही मरेगी।" पार करो माने पोस्ता दाना की भाजी, पतला रसेदार साग आदि खिलाना। गगाघाट की यात्रा की यही विधि थी। जैसे भी हो, मार डालो ऐसे रोगी को, वापस नही ले जाते।

पर रासमणि ने सिर हिलाकर कहा, "बोलती बन्द है, दाँती भिच गई है, खिलाऊँगी किसे ? डाब खरीदकर दे जाओ, हो सका तो यही थोडा-थोडा उसके मुँह मे दूँगी।"

शाम के बाद से तो मानो प्रलय शुरू हो गई। रात-भर लगातार वर्षा होती रही। वर्षा से रासमणि भी भीगी और मुमूर्षु भी। ऐसी तनिक भी सूखी जगह कही भी न रही जहाँ थोडा भी सरक सके। रोशनी के नाम पर था छोटा-सा एक दीया जो बाहर की तेज हवा से बार-बार बुझा-सा जाता था। दियासलाई भी गीली हो गई। रासमणि मन-ही-मन प्रार्थना करने लगी कि कम-से-कम कोई मुर्दा जलाने ही आ जाए। किन्तु उस दुर्दिन मे कोई मुर्दा लेकर आने की हिम्मत ही नही कर सका। अकेली रासमणि उस अँधेरे मे उस बेहोश मौत के राही को लिए बैठी रही।

उमा की देखभाल के लिए कमला मायके आ गई थी। वह और उमा भी सो नही सकी। इस अँधेरी भयावह रात मे माँ अकेली ही श्मशान मे बैठी है, सोचकर उमा खुद ही सिरसिराकर काँप उठी।

सप्तमी के दिन भी सुबह तक वर्षा नही थमी। वैसी ही धू-धू करती हवा, बादलो की गडगडाहट और अविराम मूसलाधार पानी। उमा और कमला गाड़ी मे बैठकर श्मशान आई। पर बुढिया अभी ज़िन्दा थी। नाभिश्वास चल रहा था, शायद शीघ्र ही अन्तिम श्वास लेगी। पर रासमणि ने उन्हे डाँट दिया, "तुम लोग क्यो आई यहाँ ? जाओ, घर जाकर स्नान करो।"

बडा दामाद आया। वह भी चले जाने को बाध्य हो गया, थोड़ी देर बाद ही। फिर वही एकाकीपन। गगा का पानी तट फोडकर उठा आ रहा था। फिक्र के मारे सबकी भौहे तन गई। पर उपाय भी क्या था ? घाट के यात्री को तो कोई घर नही लौटा ले जाता।

दिन भर के बाद, साँझ के वक्त वर्षा कम तो हुई पर बन्द नही हुई। किन्तु आँधी का जोर बढा ही, कम नही हुआ। सुनसान टूटे-फूटे स्थान पर रासमणि ने दीया जलाने की चेष्टा भी नही की। आगे की रात की तरह अँधेरे मे बैठी एक मन से इष्ट-मत्र का जप करती रही। दिन-भर कुछ खा नही सकी, स्नान करने के बाद

से अब तक सिर्फ एक डाब पिया था। बडी बहन को भी कुछ खिलाया नही जा सका, डाब का पानी पिलाने की चेष्टा की थी पर मुँह के दोनो ओर से गिर पडा था।

अष्टमी के दिन-रात की अन्तिम घडियो मे नाभिश्वास कण्ठ तक आ गया, नवमी के दिन सुबह सब खत्म। रासमणि ने तीन दिन तीन रात उसी तरह अकेले ही उस टूटे-फूटे घर मे उस नाभिश्वास लेने वाली रोगिणी के साथ काट दिए। उस वक्त तो उनका मुँह देखकर उनके मन की विकलता को कोई भी नही भाँप सका पर लाश जलाकर घर लौटते ही वह बेहोश होकर गिर पडी। वह मूर्च्छा भग हुई दो-तीन घटे बाद।

3

बडी मासी माँ की मौत ने उमा को फिर एक नए तरीके से फिक्रमन्द बना दिया। उनके स्वभाव का उसे पता चल गया था। जो आग बिखेरता है वह खुद भी उसमे जलता है। उनका सारा हृदय ही आग से भरा था। यह आग क्या उसके अन्तर्तम मे भी नही जल रही थी ? अभी ईंधन कच्चा है इसीलिए—वह आग भी छिपी है पर व्यर्थता की वायु यदि इसमे बराबर लगती रही तो एक दिन उसकी क्या दशा होगी। बडी मासी तो फिर भी नाते-रिश्तेदारो के बल पर जीती थी—खडे होने की जगह थी उनके लिए पर उसे तो दो मुट्ठी भात के लिए भी भीख माँगनी पडेगी।

और यह हालत।

सब उसी को धिक्कार देंगे। विद्रूप करेंगे। सभी उससे दूर रहना चाहेंगे।

—नही। वह अपनी सार्थकता के लिए अपना रास्ता जरूर खोज लेगी।

आजकल उमा प्राय दिन-रात छत के एक कोने पर बैठी रहती—जहाँ से कि गली के मोड पर सडक का एक हिस्सा दिखाई पड़ता था। यही से तो नए थियेटर-हाउस के सामने का भाग भी दिखाई पडता था।

उसे यकीन था कि उस दिन शाम को जो शरत् से भेंट हो गई थी वह अचानक या सयोगवश ही नही थी। जरूर वह इसी रास्ते से रोज गुजरता होगा। अगर फिर दिखाई पड जाए तो नौकरानी भेजकर उसे बुलवाए तो एक बार कम-से-कम। 'क्या वे एक बार भी इस घर मे नही आएँगे—पाँच मिनट के लिए ही सही ? कम-से-कम उनका वह गलत खयाल तो हट जाएगा। उमा के अन्तर मे उसकी वह गलतफहमी काँटे-सी बिंध रही थी। उसके दिन और रात इस एकमात्र धिक्कार की याद ने विषाक्त बना रखे थे।'

पर राह तकते-तकते उसकी आँखें पथरा जाती, धूप और गर्मी से सर दर्द करने लगता—पर उसके इन्तज़ार मे कमी न पडती। आखिर एक दिन रासमणि

ने उसे डाँट ही दिया, "इस तरह छत पर क्यो खडी रहती है ? इतनी बडी होकर भी, मुहल्ले मे बिगडे लडके कम है क्या कुछ ? अन्त मे बदनामी होकर ही रहेगी।"

उमा फीकी हँसी के साथ कहती, "अब बदनामी और नेकनामी मेरा क्या बिगाड लेगी भला ? हाँ, आप लोगो को अगर कुछ परेशानी हो तो दूसरी बात है। पर अगर ऐसी-वैसी बाते सुनाई पडते ही एक रस्सी खरीद देना मुझे बस, सब चुकती हो जाएगी। आप लोगो की सब तकलीफे मिट जाएँगी फिर तो ?"

इस बात पर रासमणि कुछ नही कह सकी फिर। इसमे उनके ऊपर जो भी लाञ्छन लगाया गया था उसे वह नामजूर कैसे करती ?

बदनामी कुछ तो हुई थी। चूँकि इस तरह छत पर खडे-खडे सडक की ओर ताकते रहना इतनी बडी लडकी के लिए कभी अच्छा नही माना जा सकता। खास-तौर से उस लडकी का—जिसे पति ने छोड दिया है। पर रासमणि को एक सुविधा थी, वह मुहल्ले के किसी भी दूसरे परिवार मे ज्यादा मिलती-जुलती नही थी। इसलिए बदनामी उनके कानो तक नही पहुँच सकी।

दिन, सप्ताह, मास कटते चले गए। प्रतीक्षा की एकाग्रता भी समाप्त हो गई, हृदय की आग और भी प्रखर हो उठी।

उमा एक दिन माँ से बोली, "माँ, अगर मैं थियेटर ही करने लगूँ तो हर्ज क्या है ?"

रासमणि ने तीव्र स्वर से पूछा, "यानी ? क्या मतलब ?"

आगे शायद इस तीखी आवाज से उमा काँपने लगती पर आज उसे थोडा भी डर नही लगा। बोली, "मुझे कुछ-न-कुछ तो करना ही पडेगा। आदमी की जिन्दगी और मौत का क्या ठिकाना ? अगर आपको कुछ हो जाए तो मेरी क्या हालत होगी ?"

रासमणि थोडा चुप रही फिर कहा, "आजकल तुम बहुत ज्यादा खुराफात सोचने लगी हो उमा। मानो मैं अभी मरने वाली हूँ।"

"सोचना ही चाहिए, माँ। और कोई सोचने वाला होता तो मैं कभी कुछ न सोचती और मौत तो सुनिश्चित है, इस बारे मे चुप-चाप रहने के कोई माने नही होते।"

सारी उधेडबुन, सारी झिझक न जाने कहाँ चली गई। कहाँ से उसमे यह मनोबल आ गया वह स्वय नही समझ पा रही थी।

रासमणि थोडी देर चुप्पी साधकर बोली, "यदि ऐसा हुआ ही तो क्या कमला तुम्हे मँझधार में छोड देगी ?"

"नहीं, शायद ऐसा नही करे। पर मैं वहाँ किस तरह रहूँगी। या तो दूसरो के गले पड़कर अपमान सहो या बिना तनख्वाह की नौकरानीगीरी करो।"

"पर वेश्यावृत्ति अपनाने से तो यह भी अच्छा नही है क्या ?"

"यह तो अपना-अपना खयाल है माँ, वेश्याओ के साथ मिलने-जुलने से वेश्या-वृत्ति ही अपनानी पडेगी ऐसा तो कोई नियम नही है। फिर उसके सिवाय उपाय भी तो नही है कोई।"

कुछ देर चुप रही वह। फिर मानो साहस उसके सिर पर सवार होकर बोलने लगा—"और भी एक उपाय है—मुसलमान होकर दुबारा शादी करना। पर उससे मैं सुखी हो जाऊँगी, इसका कोई ठीक नही। किसी भी हालत मे आप तो मुझे अपने साथ रहने नही देगी। पर मुझे यह आपसे कहना ही पडता है कि आप अगर मुझे और कोई रास्ता न सुझा सके तो फिर थियेटर ही जाना पडेगा। बडी मासी माँ की तरह हवन की आग नही बनी रह सकती मैं। आराम न भी मिले, कम-से-कम आज़ादी से साथ रह तो सकूंगी।"

रासमणि उसकी बाते सुनकर स्तम्भित-सी बैठी रही। उन्हे स्वप्न मे भी यह कल्पना नही हुई थी कि उमा उनके मुँह पर ही ऐसी बातें कहने की हिम्मत करेगी। पर जब वह यह कह बैठी तो डाँटने की शक्ति भी नही रही उनमे। बेटी किस आग मे जल-जलकर इतनी ढीठ हो सकी यह वह माँ की छाती से अनुभव कर स्तब्ध ही रह गई।

## 4

तीन-चार दिन कोई किसी से नही बोला। बडी अजीब हालत थी, एक दुमज़िले मकान मे दासी को लेकर सिर्फ तीन प्राणी थे। सिर्फ नौकरानी से ही दो-चार शब्द कहे जाते बस—सिर्फ वही गूजते घर-भर मे। वह भी जब दोनो वक्त दूसरे घरो मे बँधानी काम-काज करने चली जाती तो यह घर बिलकुल खाली जान पडता।

यह बन्द हवा-सी हालत जब असह्य हो उठी तभी सहसा श्यामा अपने बेटे-बेटी के साथ अचानक एक दिन आ पहुँची।

पहले तो उसे कोई पहचान ही नही सका। उसके बाद उमा दौड़ी आई और श्यामा की जेठ भरकर जोरो से रोने लगी, रासमणि भी दोनो हाथो से सर थाम-कर बैठ गई।

मानो अकाल-पीड़ित देश से आए हो, वे सप्रतिभ भुखमरी के जीते-जागते प्रतीक।

देह क्या थी—बस हड्डियो का ढाँचामात्र, रूखे बाल, जिनमे लटे पड गई थी; मैले, फटे कपडे थे। पहले का दूधिया रग तप-तपकर काला हो गया था एकदम। लड़के-लडकी को देखकर भी रोना आता था, हेम तो बिचारा उर्ध्वश्वास ले ही रहा था। ऐसा जान पडा मानो किसी ने जीवनी शक्ति निचोडकर निकाल दी हो उससे।

"यह क्या हालत हुई दीदी तेरी? ऐसा कैसे हुआ? हमे क्या एक चिटठी भी

नही लिख सकती थी।"—एक ही श्वास मे उमा ने सारे प्रश्न कर डाले।

श्यामा की ग्रॉखो से पानी बरसने लगा। क्षीण कण्ठ से बोली, "मैं पहले सुस्ता लूँ जरा। एक घण्टी पानी दे। सारी राह पैदल चली हूँ—कम-से-कम चार कोस तो होगा ही यह रास्ता। ऊपर से गोद मे थी यह लडकी अब और सामर्थ्य नही रही मुझ मे।"

उमा जल्दी से शर्बत बना लाई। इधर दूध गरम करके दोनो लडके-लडकी को पिलाने बैठ गई।

श्यामा इतनी देर मे ही नीचे की देहरी पर लेट गई थी। वही से हॅं-हॅं करती बोली, "थोड़ा पानी मिला दे, नही तो पेट मे अफारा हो जाएगा। इन्हे कई दिनो के उपवास के बाद क्या खालिस दूध पचेगा? एक भाग दूध और तीन भाग पानी मिलाकर दे।"

अपने हाथो से माथा फोडते रासमणि ने अपना माथा फुला लिया था इतनी देर मे। अब वह चुपचाप उठकर रसोईघर मे चली गई, लडकी की यह हालत कैसे हुई, यह पूछने की शक्ति ही नही रही उनमे।

धीरे-धीरे श्यामा ने सब-कुछ खुद ही सुना दिया। कहने को था ही क्या। बीच-बीच मे नरेन जैसे हमेशा गायब हो जाता है वैसे ही इस बार भी हो गया। पर अब की बार तो बहुत ज्यादा दिन हो गए, लौटा ही नही। एवज मे जो काम करता है वह पहले तो सिर्फ सुबह के चावलो का भोग ही लेता था अब रात का दूध भी लेने लगा। बोला—"तुम लोग तो बेकार यहाँ घर बसाए बैठे हो। काम तो मुझे करना पडेगा सोलहो आने और हिस्सा दूँगा तुम्हे, पर क्यो?" पहले-पहल तो सरकार-गृहिणी और मुहल्ले के लोग कुछ दया-धर्म भी करते थे पर अब तो कोई खबर भी नही पूछता था उनकी। थोड़ा-बहुत जो कुछ भी सोना-चाँदी बचा था, वह भी चला गया सब। बासन-फासन भी सब गिरवी रखे हैं। उस पर आज छ-सात दिन हो गए उपवास करते तो आखिर यहाँ आना ही पडा। "घर मे ताला लगा आई हूँ, पता नही लौटकर ज्यो का त्यो पाऊँगी या टूटा। यही सब···।"

शाम को ही खा-पी लिया सबने, रात का झँझट कौन रखे। उमा लड़के-लडकी को लेकर छत पर चटाई बिछाकर जा सोई। नौकरानी बाहर का काम कर आई है, इसलिए श्यामा उसे भात परोसने गई। दोनोमे बाते होने लगी तो उमा के कानो मे भी कुछ भनक पड रही थी। रासमणि का तो किसी ओर मन ही नही था। वह तो सारी साँझ अँधेरे कमरे मे बैठी न जाने क्या-क्या सोच रही थी कि इतने मे ही श्यामा की तेज़ आवाज सुनाई पड़ी, "माँ, यह सब क्या सुन रही हूँ मैं?"

चौक पडी रासमणि, "क्यो क्या हुआ? क्या सुना है तूने?"

आवाज़ कुछ धीमी पर उसमें कड़क वही रखती हुई श्यामा बोली, "उमा शायद थियेटर जाने वाली है—थियेटर मे काम करेगी?"

उसके कहने की भगिमा से रासमणि बिगड उठी, "अच्छा तो है, क्या हुआ इसमे ?"

"तव तो मैं यहाँ एक क्षण भी नही ठहर सकूँगी अभी चले जाना पडेगा। वे सुनेगे तो मेरा मुँह भी नही देखेंगे।"

रासमणि उठकर खडी हो गई और बोली, "मैं तो तुम्हे बुलाने नही गई थी बेटी, जो तुम मुझे डर दिखा रही हो। अपने पति की शरण जाओ न···।"

"वे कैसे भी क्यो न हो, मेरी शरण तो वे ही हैं। अभी तक यही सिखाती रही है आप भी। मैं अभी चली जाती हूँ···।"

उमा दौडती हुई आई और श्यामा के दोनो हाथ पकडकर बोली, "तू क्या पागल हो गई है दीदी। पहले सारी बाते तो सुन ले।"

"नही भाई, बहुत सुन चुकी हूँ मैं। तू छोड दे मुझे ।"

"नासमझ न बन छोटी दीदी, सुन तो सही पहले—मैं तेरे पाँवो मे पडती हूँ।"

श्यामा को वह छत पर खीच ले गई और सारी बात खुलासा करके समझाई। तब कही श्यामा ने चैन की साँस ली। पर कहा, "भाई, तूने यह काम किया भी तो माँ तुझे शायद न छोड सके पर मेरे लिए खड़े होने की जगह भी नही रहेगी। पीहर था, इसीलिए ये लडके-लड़की बच भी गए नही तो सूख-सूखकर मर जाते।"

उमा चुप रही। एक विद्रोह, एक मान, कण्ठ तक तूफान उफन आया उसमें।

थोडी देर बाद बोली, "तू, सिर्फ अपने ही आसरे की बाबत सोचती है। मेरी बाबत भी सोचा है कभी तूने ?

श्यामा ने दूसरी ओर मुँह मोडकर कहा, "मेरी बात पर गुस्सा मत होना उमी तू, पर ससुराल मे कितना ही कष्ट क्यो न हो, पति चाहे जैसा क्यो न हो—औरत का ठाँव वही है। तुझे चाहिए कि हाथ-पैर पकडकर वही रहे। भले घर की लडकी होकर थियेटर मे जाएगी ? छि ! यह शरीर ही सबसे बडी चीज़ है क्या ? नही भाई, ऐसा किया तो हमारा सम्बन्ध टूट जाएगा, मैं अपने ससुर के नाम पर कलक नही लगने दूँगी।"

उमा को लगा कि बडी मासी के मन की आग मानो उसमे थोडी देर जल उठी है।

अँधेरे मे श्यामा नही देख पाई कि अजीब हँसी आ गई उमा के चेहरे पर। अगर पति क्या होता है यह जान ही नही पाती श्यामा तो कैसे यह सब कह पाती वह—यही समझना चाहती थी उमा। तब श्वसुर की वश-मर्यादा के प्रति यह मोह भला उसमे ?

श्यामा ही फिर बोली, "ना, ना, तू समझती नही कुछ भी। लड़के-लड़की बडे होगे। उनका भी तो परिचय होगा एक—मेरी ओर भी तो देख एक बार।"

"सो तो है ही।"

उमा ने एक लम्बी साँस भरकर कहा, "ठीक है, तू डर मत। तेरा ग्रासरा नष्ट नही होने दूँगी मै। जा, तू सोने जा इन्हे नीचे ले जा।"

"ग्रौर तू ?"

"मुझे ग्रभी देर है नीचे जाने मे।"

ग्रँधेरी नीरव रात मे तारो भरे ग्रासमान की ग्रोर ताक कर मानो प्राण-प्रण से जिन्दा रहने के लिए एक सहारा खोजने की कोशिश करती रही उमा। उसके ग्रन्तर्तम की वेदना ने चारो ग्रोर के नीरव सागर मे कैसी तरगे उठाई, कौन जाने।

पहर पर पहर बीत गए। ऊपर जागती रही उमा, नीचे जागती रही रासमणि।

# दशम परिच्छेद

## 1

पन्द्रह दिन से ज्यादा ठहरने की हिम्मत नही हुई श्यामा को। मुँह पर तो वह सिर्फ घर छिन जाने का बहाना ही करती रही। "क्या पता माँ, जलमुँहा चक्कौती (चक्रवर्ती) ग्रगर जबर्दस्ती ताला तोडकर घुस बैठे तो ? • यही डर लगा है।' पर ग्रसली डर ग्रौर किसी का था, यह उमा समझ सकती थी। ग्रगर नरेन इसी बीच ग्राकर लौट जाए ग्रौर फिर कभी न लौटे···हमेशा के लिए गुस्सा करके चला जाए कही तो यही डर सबसे ज्यादा था श्यामा को। एक दिन उमा ने यही बात साफ-साफ कह दी, "इतनी क्यो फिक्र करती है ? ग्रगर जीजाजी देखेगे कि घर पर ताला जडा है तो समझ लेगे कि तू यहाँ है, सीधे दौडे ग्राएँगे यही।"

"हाँ री—इसी फिक्र के मारे जैसे मै रातो मे सो नही पाती ! तू भी बस ! यह बात नही है—घर की ही फिक्र लगी है मुझे तो। रहने का ठौर-ठिकाना ही न हो तो कहाँ रहूँगी मै भला ?"

उमा थोडी चुप्पी साधकर कहती, "ग्रगर तुझे उनकी कुछ परवाह नही है तो फिर इतनी फिक्र क्यो करती है ग्रौर वहाँ भूखो मरने क्यो जाना चाहती है ? यही रह न। दो ग्रादमी होगे तो ग्रौर भी ग्रधिक सुविधा रहेगी, कुछ न कुछ कर ही लेगे। न होगा तो दोनो बहने मिलकर जनेऊ ही बना डालेगी, लिफाफे बनाएँगी इसी से ये दोनों लड़के-लडकी पाल-पोस लिए जाएँगे।"

"बाप रे !" सिहर उठती श्यामा, "ऐसी बात मुँह पर कभी नही लाना। पति को त्यागकर हमेशा पीहर मे दासी वृत्ति से ज़िन्दगी नही काट सकती मैं।

वाप के रहते यदि लडके-लडकी को पिता के परिचय से वंचित कर दूँ तो क्या कहेगे वे बडे होकर। उससे तो वहाँ की फाकाकशी भी अच्छी ही है। और कुछ दिन गुजरे कि आठ साल होते ही लडके का जनेऊ कर दूँगी, जैसे भी हो—फिर कुछ डर नही है। वह घर तो मौजूद रहेगा ही, शायद और भी कुछ घरो की 'पुरोहिताई' मिल जाए। लडकी की शादी करनी पडेगी यह भी तो फिक्र लगी है।"

उमा का मुँह आज भी अपमान से लाल हो उठा। श्यामा क्या उसकी हालत समझती नही—या इच्छा करके आघात देती है?

थोडी देर चुप रहकर फिर शान्त कण्ठ से बोली, "लडके को पुरोहितमिसर ही बनायेगी?"

"तो फिर और क्या करूँ, तू ही बता। सब क्या पढ-लिख सकते है? थोडी विद्या और शख मे फूँक मारने से आमदनी तो इसी मे है। और यजमान—शिष्य आदि की वृत्ति इनका कुल-कर्म भी तो है।"

उमा ने फिर कुछ नही कहा। इनके सामने लम्बी साँस लेने मे भी उसे शर्म लगी।

श्यामा ने सब कुछ सहेज कर पोटली बाँध ली। माँ के पास से पीछे पड-पड-कर कुछ सोना निकलवाकर दो लडे बनवा ली। रासमणि ने सिर्फ इतना कहा। "कितने दिन रख सकेगी बेटी इन्हे—फिर वही गिरवी रखने पडेगे, नही तो बिक्री कर देगी?"

श्यामा ने बिना शर्मिन्दा हुए कहा, "इसीलिए तो और भी जरूरत है। और मायके से इस तरह नाक, कान, गला, हाथ-पैर सब नगे लेकर जाऊँगी तो लोग क्या कहेगे।"

श्यामा ने चावल, दाल, नमक, तेल, मसाले आदि भी बाँध लिए। जरा भी भूल नही की। छोटे-मोटे बासन-भाँडे भी ले लिए। एक दिन कमला से कुछ कपडे भी इकट्ठे कर लिए। सर्दी शुरू होने वाली थी। कमला को उसकी लोलुपता देखकर अचरज हुआ। थोडी शर्मिन्दा भी हुई शायद, कहा, "नही तो नये कपडे बनवा दूँ, ये सब तुम···"

"ना, ना। क्या जरूरत है। नये तो तुम बहुत हुआ तो दोनो को एक-एक दे दोगी। ये तो बहुत-से मिल रहे है। ये तो अब तुम्हारे किसी काम आएँगे नही। आखिर नौकर-नौकरानियो के बच्चो को ही तो दे डालोगी। इससे तो मुझे दो-चार नगद रुपये दे दो, बेचारे कुछ खा-पीकर बचे तो रहेगे।"

कमला ने समझा यह तो सिर्फ कहने की बात है। पर जाते वक्त श्यामा ने सचमुच माँगना शुरू किया, "क्यो दीदी, वो दो-चार रुपये? नये कपड़े बनवाती तो कितना खर्च होता तेरा।"

कमला ने दो-चार नही पाँच रुपये रख दिये उसके हाथ पर और साथ मे अपनी दो-एक पुरानी साडियाँ भी दे दी।

पर श्यामा की इस निर्लज्जता ने उसे बहुत ही शर्मिन्दा कर दिया।

यही है उसकी वह फूल परी बहन। शौकीन और हर तरह की बात-चीत मे निपुण! उस बहन के बदले मे आज यह कौन आई थी? क्या पहली श्यामा सचमुच मर गई?

सब बाँध-बूँधकर श्यामा ने गाडी बुलाई पर जाते-जाते माँ को यह उपदेश देना न भूली अपने गुरुजी को बुलाकर उमा को जैसी भी हो एक न एक दीक्षा दिलवा दीजिए माँ। पूजा-सेवा मे कुछ तो मन भूला रहेगा। सच, बेचारी किस आसरे पर जिए?

रासमणि ने गम्भीर स्वर से कहा, "तुम अपने चरखे मे तेल डालो बेटी, मुझे और ज्ञान देने न आना।"

श्यामा के मुँह पर जो कुछ भी कहा, पर उसकी बात पर काफी देर तक सोचती-विचारती रही रासमणि। यह तरकीब उन्हे भी पहले सूझी थी। हमेशा से हिन्दू घरानो मे यही तो होता आ रहा है—खासतौर से बगाली हिन्दुओ मे—लडकी का अगर भाग्य फूट जाए तो इष्ट-देव का मत्र दिलवा दो उसे, उन्ही को लेकर भूली रहेगी। भगवान् की तरफ मन लगा रहने से सासारिक प्रलोभनो पर काबू कर सकेगी। यही बात सुनते-सुनते सस्कार बन गया था। यह सस्कार क्या रासमणि के खून मे नही था?

फिर भी रासमणि को सन्देह हुआ। यह सन्देह अक्सर होता था उन्हे। शायद अपने मन द्वारा दूसरे के मन की थाह पा सकी थी थोडी-सी—ईश्वर-चिन्तन करके इस जन्म के दैहिक भोग-सुख का लालच क्या सचमुच छोडा जा सकता है? खूब कठिन आघात या जोर का धक्का खाये बिना क्या मन ससार से हटाया जा सकता है भला?

सस्कार और सशय, सुनी-सुनाई बात और अनुभव इन द्वन्द्वो से क्लान्त हो गई रासमणि, किन्तु किसी तरह भी मँझधार से किनारे तक नही आ सकी वे। कोई राह नही दिखाई पडी साफ-साफ।

अन्त मे, एक दिन उमा से ही पूछा, "तू क्या दीक्षा लेगी बेटी? लेना चाहती है? श्यामा उस दिन कह रही थी। पर मै तुझे जबर्दस्ती दीक्षित नही कराना चाहती। न यह सलाह ही दूँगी। तेरा जी जो कहे वही करना।"

उमा चुपचाप सोचती रही कुछ देर। उसकी जीवन-नैया अपार सागर मे तैर रही थी। माँझी नही, रास्ते का ज्ञान नही। किनारा भी आँख-ओझल था। मानो निविड़-निश्छिद्र अँधेरे ने घेर रखा है। उसे—इसमे क्या कोई राह दिखा सकेगा? ईश्वर—वे क्या है? सुना तो यही है कि वे ही सबसे बड़े माँझी हैं,

दिग्भ्रान्त जिन्दगी, दिशा-दशा-हीन जीवन यात्रा के एकमात्र पथ-प्रदर्शक है। उनका ही सहारा ले क्या वह अन्त मे ?

शायद इसी मे पथ-सकेत मिल सके, नए विहान की सुनहली किरण दिखाई पडे। शायद अपनी ओर खीचने के लिए ही भगवान् उसे ये सब दुख दे-देकर दुनिया से मुँह मोडने की प्रेरणा दे रहे है। जला-जलाकर उसे कुन्दन बना रहे है वे। शायद इसी मे आनन्द मिलेगा उसे—

भगवान् को जो पहचनवा दे, हाथ पकडकर उनके सामने खडा कर दे, वही तो गुरु है। 'अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाजन शलाकया । चक्षुरून्मीलिसयेन तस्मै श्री गुरवे नम ।'—यह तो माँ रोज पढती है और वह सुनती है।

बुराई ही क्या है।

उमा थोडी देर फिर भी चुप रही। आखिर मे बोली, "ठीक ऐसा ही करे माँ। मैं दीक्षा लूँगी।"

"अच्छी तरह सोच-विचार ले। जल्दबाजी न कर। इष्ट-मत्र ऐसी-वैसी चीज नही है कोई।"

उमा ने सोच तो लिया है। कुछ सहारा तो मिलेगा। यही जता दिया माँ को।

लेकिन रासमणि और भी आफत मे पड गई। तव मन चाहे जिसे अपने शौक से गुरु छाँट लेने की प्रथा नही थी। कुल-गुरु का त्याग नही करते। गुरु को छोड गोविन्द भजे, सो पापी नरक मे पडे—यही यकीन था तब लोगो का। जो औरत शादी-शुदा है, उसका कुल-गुरु तो श्वसुर वश का कुल-गुरु हो सकता है। पर उसका पता कैसे लगे ?

बहुत सोच-विचारकर बोली उमा से—"तू नही तो मेरी ओर से—नही-नही कोई जरूरत नही—कमला की ओर से—शरत् को एक चिट्ठी लिखकर पूछ कि उनके कुल-गुरु कौन है—शायद उनका पता-ठिकाना मिल जाए।"

उमा सिहर उठी—जैसे अँधेरी राह मे साँप पर पैर पडने से सिहर उठता है आदमी। थरथराते काँपते होठो से कहा उसने—"नही माँ, कोई जरूरत नही। जब सभी कुछ छोड दिया तो यह गुरु-इष्ट भी रहने दो। वे लोग तो शाक्त है, इतना जानती हूँ मै। सास तो दश-महाविद्या की तस्वीर लटकाए थी अपनी कोठरी मे, वही बैठकर रोज सभा-बाती और जप आदि करती थी वे।"

"ना बेटी, तू चिट्ठी लिख एक। कुल-गुरु का त्याग नही करना चाहिए। इसके अलावा तुझे अपने पति की आज्ञा भी तो लेनी पडेगी।"

पति को चिट्ठी लिखेगी ? सबसे पहले—इतने दिनो बाद—और वह भी दूसरो की जबानी ?

उमा का मन बिगड़ उठा। क्यो, क्यो, उसका इस तरह एक गुडिया जैसा

बच्चो का खिलवाड किया जाता है ?

कुल-गुरु ? किस बात का कुल है वह उसका—कौन है उसका पति, वही जिसने उसे एक बार भी छुआ तक नही, परिणीता होने पर भी जिसे वह पत्नी नही मानता ! नही, नही। माना तो है पति !

उस दिन की बात याद आ गई उसे—"ना, ना उमा, यह मैं कभी सोच ही नही सकता। यह काम नही करना, छि ।"

माना तो है। पर इस तरह चिट्ठी लिखना ?

फिर भी उसने चिट्ठी तो लिखी ही। लिखनी पडी । तीन-चार बार कागज फाडकर अन्त मे दीदी की ओर से एक चिट्ठी लिखी—नीरस, आवश्यक पत्र।

यही था पहला पत्र। पहला स्वामी-सम्भाषण । वही जिसकी कल्पना मे किशोरी होने के बाद से ही नव वधुएँ विभोर हो जाती है। उफ् !

जवाब भी आ गया, तीन-चार दिन बाद ही। अस्पष्ट लिपि, टेढे-मेढे हरूप। 'स्वामी' का यही पहला पत्र था।

प्रिय—प्रियतम—पति का पत्र !—कल्पना की उमा ने खोलने से पहले।

पत्र उसी को लिखा गया था—कल्याणीयासु—तुम्हारा पत्र पाकर अपने को और भी अधिक अपराधी देख रहा हूँ।

भगवान मुझे कभी क्षमा नही करेंगे—परन्तु जिस जाल मे फँसा हूँ उससे निकलने का उपाय भी नही है कोई। जाने दो, जब हमारा और कोई सम्बन्ध ही नही रहा तो गुरु को लेकर ही यह क्यो जोडा जाए। अपनी माँ के गुरु-देव से ही मत्र ले लो। मै अनुमति दे रहा हूँ, इसमे कोई दोष नही है—अगर कोई पाप होगा तो वह मुझी को लगेगा। इति—तुम्हारा अभागा पति, शरत्।

पुनश्च—कोई हक तो नही फिर भी उस दिन की घटना याद करके तीन-चार दिन थियेटर फिर गया पर तुम्हे न देख पाकर समझ गया हूँ कि मैं ही गलत था—माफ करना।

बार-बार पढती उमा उसे और बार-बार छाती के पास रख लेती।

आँखो के आँसुओ से और छातियो के पसीने से सारे हरूफ धुँधला गए—फिर भी मानो आकाक्षा नही मिटती थी। उम्मीद होने लगी शायद कि एक न एक दिन उसका पति वापस आएगा ही, नही तो इतनी खोज-खबर क्यो करता। पत्र मे पश्चात्ताप का स्वर भी स्पष्ट था। रात-भर उसे ग्राल के नीचे रखकर उमा जागती रही, सोचती रही और रोती रही।

## 2

फिर एक नई समस्या ? रासमणि सोच ही नही पा रही थी कि किसे उमा का गुरु बनाएँ। पत्र का सारा हाल सुनकर चुपचाप सोचती रही पहले तो।

फिर बोली, "जब अपना कुल-गुरु ही छोडता है तो हमारे गुरुवश की शरण भी ठीक नही। मेरे कुल-गुरुदेव तो अब जीवित नही, जो गुरु-भाई है, सुना है वह अच्छे आदमी नही, शराब और गाँजा पीते है—उन पर तो श्रद्धा भी नही होगी तुझे। इससे तो यही भला होगा कि बडे दामाद के सन्यासी गुरु से ही दीक्षा ले। बोल, क्या चाहती है ?"

उमा क्या कहती, चुप रही।

पर दीदी के गुरु जी को देखकर श्रद्धा ही हुई उनमे। लम्बी देह, गौर वर्ण, प्रौढ सन्यासी। गेरुआ कपडे, पर जटाजूट नही। बस, बडे-बड़े केश पीठ पर फैले थे। माथे पर तान्त्रिको जैसा लाल-चन्दन का तिलक। अत्यन्त मिष्टभाषी। सबके साथ खूब प्रेमपूर्ण बर्ताव। आवाज बहुत ही मीठी, जब रामप्रसादी गीत गाते तो उमा के आँसू उमड पडते।

यत्नपूर्वक दीक्षा दी, प्रतिदिन आकर अभ्यास भी कराते, उपदेश देते, शिक्षा देते।

उमा ने प्राण-प्रण से इस नये जीवन को अपना लिया। दिन-प्रतिदिन एक तरह का वैराय छाता गया उसके मन-प्राण मे। वह स्वय यह अनुभव करने लगी कि जैसे दुनिया से बहुत दूर चली जा रही है वह।

गुरुजी पहले तो रोज आते, फिर दो दिन बाद आने लगे। उमा उनमे भक्ति रखती देवता के समान, उनकी सेवा करती सन्तान और पिता के समान। रासमणि भी उसका यह भाव देखकर कुछ सन्तोष पाने लगी।

अचानक एक दिन गुरुदेव ने कहा, "उमा, तुम्हे स्वय माँ ने भेजा है मेरे पास। तुम्हारा जीवन सार्थक हो गया। तुम्हारा महाभाग्य है इसलिए लोग जिसे सौभाग्य कहते है उससे वचित हो गई हो तुम।"

उमा यह पहले कुछ नही समझी। अत चुपचाप ताँकती रही।

गुरुदेव हँसे, "अरे पगली, कुछ समझी नही ? मेरी सिद्धि के लिए ऐसी ही एक लडकी की जरूरत थी—जब सब जगह खोज-खोजकर हैरान हो गया तो माँ ने तुझे भेज दिया। बिलकुल अप्रत्याशित रूप मे। यह उनकी दया के सिवाय... और क्या हो सकता है। तेरे ऊपर भी कम दया की है, यह न समझना। साधना के काम आएगी—यह एक जन्म के पुण्यो का फल है ? जन्म-जन्मान्तर के पुण्यो का फल है यह। यदि तुझे पति ग्रहण करता तब तो वह सम्भव होता ही नही।"

उमा का सारा शरीर रोमाचित हो उठा। सचमुच क्या माँ उस पर इतनी मेहरबान है ? सचमुच यह पूर्व जन्म की सुकृति का फल है। उसका जीवन और भी अधिक सार्थक होगा इसीलिए क्या उसे इस ससारी सार्थकता से वचित कर दिया है।

वह जैसे विश्वास नही कर पाई इस बात पर फिर भी उसके मन मे आनन्द

की एक लहर-सी दौड गई। साधना मे सहायिका बनेगी वह ? गुरुदेव की तपस्या मे सगिनी होगी। तपस्विनी बनेगी, सन्यासिनी हो जाएगी।

साग्रह पूछा गुरुदेव से, "वह साधना कब से शुरू होगी बाबा ? क्या करना होगा मुझे ?"

"बताऊँगा री, सब बताऊंगा तुझे मैं।" उमा का दाहिना हाथ अपने हाथो मे सस्नेह दबा दिया उन्होने।

उमा कितने ही प्रश्न अक्सर पूछती—खुद कितनी ही प्रकार की कल्पनाएँ करती पर कोई भी उत्तर नही खोज पाती।

गुरुदेव भी सारे प्रश्नो के ठीक-ठीक जवाब नही दे पाते। चुपचाप सस्नेह पीठ पर हाथ फिरा देते। या उसके सघन केश-भार-युक्त सिर को अपनी गोद मे खीचकर उसके माथे पर हाथ रखकर प्यार दर्शाते।

आजकल उनकी बाते भी न जाने कैसी हो उठी थी। वह प्राय यह कहते गुरु के समीप शिष्य को किसी भी हालत मे सकोच नही करना चाहिए। पर उमा को शर्म लगती। वे पुराणो से शृगार रस पूर्ण कथाएँ भी सुनाते। जीवन के अनुभवो से अनेक उदाहरण देते उपदेशो के बीच मे ही, वह भी न जाने कैसे कुछ अजीब-अजीब।

उमा को ये सब बाते अच्छी नही लगती। पर गुरुदेव के सामने से वह जा भी नही पाती। वह सिर्फ वही जवाब देती, "ये सब बाते रहने दे बाबा, आप मुझे अपनी तपस्या मे शामिल कर लेगे, यही कहिए, क्या करना होगा मुझे बता दीजिए। मैं सन्यासिनी होना चाहती हूँ।"

× × ×

अन्त मे एक दिन सुना उसने क्या करना होगा उसे।

दौडकर आई वह और माँ के पास सिर फोडने लगी।

"क्या हुआ री, क्या हुआ ?"

"माँ गुरुदेव मे भक्ति क्यो नही रख पा रही मै, तरह-तरह के ये सब सन्देह क्यो जाग रहे है मन मे ? क्या होगा मेरा ?"

"क्या हुआ। बता तो सही," रासमणि ने उसका मुँह ऊपर उठाकर पूछा।

"वे तो कहते है कि यह बडा पुण्यकार्य है—उनकी साधना मे सहायता करना—नही माँ···मैं यह नही कर सकूँगी। मै तो उन्हे साक्षात् इष्टदेव ही मानती हूँ, माँ।"

स्तम्भित हो गई रासमणि।

तू बैठ। मैं आ रही हूँ। वे उठकर आई और गुरुदेव के सामने हाथ जोडकर बोली, "भगवान् जिसे मारते है उसका आसरा कही नही होता। यही समझी हूँ आज। आप उसे मुक्ति दीजिए। और यहाँ कभी नही आइएगा।" गुरुदेव मुँह पर

कालिख पोतकर चले गए। उमा रासमणि के सामने माथा ठोकते-ठोकते बोली, "यह सशय क्यो हुआ माँ ? सचमुच क्या मेरे लिए कोई आसरा नही है। फिर मैं क्या करूँ ?"

# एकादश परिच्छेद

## 1

एक-एक दिन करके पूरा साल कट जाता है।

महाकाल अपने बही-खाते मे एक-एक पन्ना उलट देते है जिसमे बहुत-से सुख-दु:ख के वर्णन, कितनी ही मर्मान्तिक इतिहास, कितनी हृदय-विदारिका वेदना आदि हमेशा के लिए दबे रह जाते है।

आज जो असह्य लगता है—कल वही एक अस्पष्ट वेदनामयी अनुभूति मे परिणत होकर स्मृति के गर्भ मे खो जाता है।

श्यामा का भी समय किसी तरह बस कट ही रहा था। कभी-कभी लगता था कि अब और किसी भी तरह काम नही चलेगा—लगता कि इस घर की नाव इस बार भँवर मे फँसकर डूब ही जाएगी। इस तूफान से बचना मुश्किल है। फिर भी किसी भी तरह से आडी-तिरछी होकर वह बच ही जाती। केवल एक नि श्वास निकल जाता—ऊँचे पर्दे से बँधी स्नायुतत्री फिर से अलसा कर शिथिल पड़ जाती। यही तो है प्राय प्रत्येक दरिद्र गिरस्ती का इतिहास। श्यामा की जिन्दगी ही भला फिर अलग कैसे हो जाती ?

नरेन का अक्सर गायब होना भी अब उसे सह्य हो चला था। बल्कि अब जब भी कभी वह आता तभी अधिक तकलीफ होती। यह ठीक है कि पूजा के चावल फिर से मिलने लगते और पति का सामीप्य भी होता पर यही तक। झझट-झमेले भी तो कम नही सहने पडते। श्यामा को कभी-कभी लगता कि शायद वह और नही सह पाएगी अब।

मगला ने भी इन लोगो को भगाने की कम कोशिश नही की। आधे दिन जब पहले के पुजारी से ही सेवा कराती है, तब बेकार मे यह लोग क्यो घर पर कब्जा किए रहे ? फिर वह पुजारी भी बहुत चीं-चपड करता था। नरेन जब भी कभी महीने-दो महीने बाद आकर रहता है तो उसका सीधा वगैरह भी मारा जाता है। पहले-पहल दो-एक बार झगडा करके उसने नरेन को भगाने की कोशिश भी की, लेकिन बाद मे उसी को चुप होना पडा। नरेन फौरन कटार या दरॉत उठा लेता। उस समय उसकी ऐसी प्रचण्ड मूर्ति होती कि उसके सामने खड़ा रहना भी कठिन

था। अत. चुप होने के अलावा पहले पुजारी के पास दूसरा चारा ही क्या था। पर वह बीच-बीच मे मगला से शिकायत जरूर करता रहता।

और मगला भी ठीक नही कर पा रही थी कि क्या करे। यह उनका अपना खोदा हुआ कुआँ था। उन्हे नरेन द्वारा अच्छी तरह से पूजा-सेवा होने की आशा नही थी उसके जाने मे ही उनका छुटकारा था पर विशेषकर नरेन का जो हाल वो रोज देख रही थी इससे उन्हे विश्वास हो चला था कि यह नया बामन बिलकुल नालायक या पागल है। एक दिन तो उन्होने उसे रँगे हाथो पकड भी लिया। पाखाने के कपडे बिना बदले और बिना स्नान किए ही नरेन पूजा करने बैठ गया था। 'है ! है।' करती मगला आई, "यह क्या ठाकुर, यह क्या किया ? सर्वनाश। अभी निकलो—मैं कहती हूँ निकलो।"

पहले तो नरेन कुछ अचकचा गया पर फिर सँभलकर बोला,—"क्यो जी, ऐसा क्या हुआ ?"

"ऊपर से क्या हुआ पूछते हो। अभी पाखाने के कपडे पहने ही आकर ठाकुरजी की मूर्ति छू ली, और कहते हो क्या हुआ ?"

"किसने कहा पाखाने के कपडे थे—नही तो।"

"लो ऊपर से अब झूठ बोलने लगे। अजी महाराज, मैने अपनी आँखो से देखा कि तुम मैदान से तालाब गए, और बस सीधे वही से फूल तोडते हुए मन्दिर मे घुस आए। माना कि पूरे उस्ताद हो, महाराज। पर मै वही खडी-खडी देख जो रही थी, और सोच रही थी कि क्या अक्ल है तुम्हारी। धन्य हो तुम ! इतनी लापर-वाही तो मैने सपनो मे भी नही सोची थी। खैर, जो हुआ सो ठीक है। चलो, मुझे भी समझ आ गई अब। अब तुम चलते-फिरते नजर आओ। मैं अभी बेचन पुजारी को बुलाती हूँ, उससे फिर जल चढवाऊँगी।—पर तुम आज ही विदा हो जाओ मेरे घर से—साफ-साफ कह देती हूँ तुम से, हाँ।"

अब और फिजूल झूठी बाते बनाने से कोई फायदा नही होगा—यह देखकर नरेन ने अपना असली रूप दिखाया—बोला, "अरे चुप रह बदतमीज कही की। ज्यादा बक-बक मत कर। पूजा ठीक होगी, न होगी यह तो ब्राह्मण और देवता का मामला है। इसमे तू कौन होती है दखल देने वाली ? यह हमारा काम है हम ही समझ लेगे। कहावत मशहूर है कि "जिसका काम उसी को छाजे। नही तो दुम्मक-दुम्मा बाजे।"

इस पर भी मगला बाज नही आई। बोली—"कुछ भी हो, तुम्हे गदे कपड़े पहने मूर्ति नही छूने दूँगी मै। बिना नहाए-धोए पूजा नही करने दूँगी।"

नरेन खीझ उठा—"करूँगा, जरूर करूँगा। अरे नादान, तुझमे इतनी अक्ल है, फिर भी यह नहीं जानती कि ब्राह्मण एक कदम चलने से ही शुद्ध हो जाता है।

हवा लगी कि ब्राह्मण का बदन पवित्र हुआ। इतना भी नही जानती तू ? अगर नही मालूम तो किसी पडित से जाकर पूछ। सुना तो था कि दीक्षा ले चुकी है। क्यो नही अपने गुरु से ही पूछ लेती ?" यह कहते-कहते नरेन ने मूर्ति को नहलाना शुरू कर दिया।

"यह तो बडा जुल्म है। ब्राह्मण हो इसलिए जो जी चाहे अन्याय करोगे ?"

"हाँ, हाँ, करूँगा ! ब्राह्मण के पैरो की धूल भगवान खुद अपनी छाती पर लेते है, तू क्या जानती है ? तुम शूद्रो को इसका क्या पता ? हम ठहरे गुरु वश के। कई पीढियो से होते चले आए गुरु हैं हम। हम सब कुछ जानते है।"

फिलहाल नरेन कालना से कथा सुनकर आया। उस कथा की वह कहानी अभी तक याद है उसे। अफसोस सिर्फ इस बात का था कि भृगुदेव का नाम याद नही आया। वरना और भी रुआब जमता।

फिर भी मगला ने एक बार आखिरी कोशिश की। कहा—"देखो महाराज, कुछ भी क्यो न हो—मैं तुम्हे अब और यहाँ नही रहने दूँगी, बस यही मेरी मर्जी है। तुम आज ही अपना रास्ता नापो। सीधी साफ बात है।"

तीर की तरह उछल पडा नरेन। छलॉग मारकर बाहर आ गया। बोला, "अच्छी बात है चला तो जाऊँगा मैं पर जाने से पहले अपना जनेऊ तोडकर और इस शालग्राम की शिला के सामने सर फाड़कर खून बहा दूँगा—ब्राह्मण का लोहू है। यह कह देता हूँ। अब आगे तुम जानो। तुम्हारे घर मे भी बाल-बच्चे है—अपनी नेकी-बदी का ख्याल रखना, हाँ।"

बस ! हो गया काम। अब मगला की जबान पर ताला ! एक शब्द भी उसके मुह से नही निकल सका। इस बात पर कुछ भी कहने की हिम्मत नही पडी उसे। धीरे-धीरे पीछे हटते हुए वापस चली गई वह। सिर्फ इतना ही कह सकी—"अरे राम, राम ! यह अच्छी बला है, बडा ही खतरनाक आदमी दीखता है यह। ना बाबा ! मैं आज ही बच्चो के माथे मे छक्का-पजा छुलाकर पूजा के लिए रख दूँगी। चामुण्डा के मन्दिर मे जब जाऊँगी तो पूजा करा दूँगी। हे हरि ! हे नारायण ! रक्षा करो, दयालु।"

नरेन वही अकेला खडा-खडा बत्तीसी निकालकर ठठाकर हँसने लगा।

सारी बाते सुनकर श्यामा ने कहा था, "फिर आगे क्या होगा ? तुम तो जब देखो लापता हो जाते हो। कही ऐसे मौके मे मुझे अकेली पाकर भगा दे, तो ?"

"अरे रहने दे। वडे आए भगानेवाले ! तू मेरी पत्नी होकर ऐसी बात करती है ? अरे कितना ही क्यो न हो—हम ठहरे ब्राह्मण—गोखरू साँप की जात। हमे छेड-छाड करने की हिम्मत पडेगी उसकी ? ऐसी-तैसी—अगर थोडा भी परेशान किया तो तू भी कह देना कि ठीक है मैं तुम्हारे दरवाज़े पर ही तीन दिन लगातार भूखी-प्यासी पडी रहूँगी। तीसरी रात के बाद ही जाऊँगी।"

नरेन की बातो पर हालाँकि श्यामा ने ज्यादा ध्यान नही दिया था। पर एक दिन मौके पर उसकी ही बाते काफी जोर से काम दे गई।

उस दिन ऐसा हुआ कि मगला लडके-लडकियो के साथ रणरगिनी मूर्ति-सी सामने आ खडी हुई। बोली—"ऐ पडिताइन, तू जाएगी या नही, साफ-साफ बता दे। अगर ऐसे नही जाती तो जबरदस्ती निकाल दी जाएगी। खैरियत चाहती है तो आज ही चली जा। सामान-वामान जो लेना है साथ ले जा, अपने मायके चली जा—नही हो तो गाडी का किराया मै दिए देती हूँ।"

डूबता इन्सान क्या नही करता। पहले से इसकी कल्पना तक नही की जा सकती। जब नरेन ने श्यामा को सलाह दी थी उस वक्त श्यामा ने यह कल्पना ही न की थी कि किसी दिन यह सलाह भी काम आ सकती है और सचमुच उसकी जबान से भी इस तरह की बोली निकल सकती है। पर अब इस मजबूरी की हालत मे, जब उसकी पैर के नीचे की जमीन तक नही दीख रही थी तो उसके मुँह से अनायास ही ये शब्द निकल पडे—"मुझ पर हमला करने आए है, आप लोग सब मिलकर, मुझे जबरन भगाने आए है, माँ जी ? तो ठीक है, मेरे बदन को हाथ लगाने की ज़रूरत नही—मै खुद ही चली जाती हूँ। बाल-बच्चो का हाथ पकड-कर सडक पर जा बैठती हूँ। पर ऐसे नही जाऊँगी मै—यह भी बताए देती हूँ। सडक पर तो आपका राज नही है—वही आपके मकान के सामने बैठे-बैठे तीन दिन, तीन रात भूखे-प्यासे बिताऊँगी, फिर भी जाना ही पडा तो चली जाऊँगी—उससे पहले नही। रही सामान की बात—तो उसकी मुझे कोई फिक्र नही, वह आप फेक दे चाहे कुछ भी करे। आ रे हेम, चल।"

यह सुनते ही मगला दग रह गई। हथेली पर मुँह रखे कुछ देर तक चुपचाप खड़ी रही। फिर एकाएक फूट पडी। "सुना तुमने, सुनी इसकी बाते ? आहा !! जैसा मियाँ, वैसी ही बीवी ! वाह ! वाह ! खूब जोडी मिलाई राम ने। रौएँ-रौएँ बेईमान है इनके। हाय भगवान, इतने दिनो तक अपने घर मे बिठाकर पाला, इसका यह नतीजा ? मेरा ही सत्यानाश करने का इरादा ! खैर, यदि यही तुम्हारा धर्म हो तो रहो, तुम ही रहो। अतकाल तक घर भर के तुम ही रहो, चडी माता जी। मुझे और कुछ नही करना।"

बडबडाती-बकती हुई वे अपनी टोली के साथ बाहर निकल गई। श्यामा भी उस दिन मन-ही-मन खूब हँसी थी। उसने सोचा—"हाँ—चाहे पागल हो—चाहे बदमाश ! पर आदमी (नरेन) अक्लमद है, यह तो मानना ही पड़ेगा।"

## 2

उस दिन से मगला ने भी दूसरी तरकीब अपना ली। उसने प्रत्यक्ष रूप से भगाने की चेष्टा और नही की। पर सिवाय इसके और जितने भी उपाय सूझे

कोई बाकी नही छोडा। बेचारे हेम व महाश्वेता के ऊपर तरह-तरह की तगी होने लगी। श्यामा के लिए भी उनके जुल्मो को सहन करना असभव हो गया था। चूँकि और कोई उपाय नही था सो चुपचाप सहती रही बेचारी।

यूँ ही तो गुजारा नही होता था, इस पर जब नरेन नही रहता तो पूजा के चावल भी न मिलते। जो कुछ इने-गिने जेवर थे उससे तो अच्छी तरह महीने के सारे दिन नही चलते। फिर वही उपवास। भूख की जलन जब और बरदाश्त नही हुई तो लडके-लडकी को घर मे बद कर श्यामा पैदल ही चलकर कलकत्ता पहुँची। अपनी माँ के पास एक शाम रहकर खाना खाया और कुछ दाल-चावल व रुपये ले फिर पैदल ही वापस आई। बच्चो को साथ लाने का भरोसा नही था, शायद घर मे फिर से न घुस पाए। बच्चे भी पैदल चल नही पाते।

नरेन अगर रहता तो खुद ही उन लोगो को भेज देता बशर्ते उसकी तबियत खुश होती तो—कहता 'तू बेफिकर चली जा, छोटी बहू। मैं जो यहाँ हूँ। तू जब तक वापस नही आती, मैं यहाँ से एक कदम भी नही हिलूँगा। बस, मानो कोई ज़मीन मे गाड दिया गया हो।' ऐसा मौका आने पर भी श्यामा को सात-आठ दिन से ज्यादा रहने का भरोसा नही था। फिर भी उतने मे ही बहुत कुछ सहारा हो जाता। रासमणि ने तो इनका नाम ही 'अकाल का अवतार' रख दिया था। जब आते है, ककाल-सी सूरत, बालो मे जुएँ, देह पर फटे-मैले कपडे। यहाँ आने के बाद सर साफ होता, तेल-साबुन लगाया जाता, फिर से चेहरे पर चमक आती। श्यामा को तो नए कपडे मिलते ही, बच्चो को भी कपड़े-लत्ते मिलते। लौटते समय दस-पाँच रुपये भी आँचल मे बाँध लाती श्यामा।

इसमे अधिक रासमणि कभी नही देती। उनका अपना ही गुज़ारा आजकल बडी मुश्किल से होता था। पता नही और कितनी लम्बी है जीवन की सडक। उमा का भी वही हाल है। खासकर उमा की चिता से ही उनका मन विकल हो जाता। ऐसी स्थिति मे कितने रुपये उसे दिए जा सकते थे। इसके अलावा नरेन पर उन्हे ज़रा भी भरोसा नही था। ज्यादा रुपये देने से, मुमकिन है कि श्यामा से छिन जाते वे सब।

लेकिन श्यामा को इस बात का रज था। लगातार दैन्य और उपवास के साथ लडाई करते-करते उसके मन पर भी उस दैन्य का बहुत-कुछ असर पड गया था। वह सोचती माँ ज्यादा पैसे नही देती, यह माँ का अन्याय है। उसका मन कहता खुद तो मौजे उडा रही है, सिर्फ मेरी मदद के समय गरीबी के बहाने ढूँढती हैं। ऐसा नही कि मन का यह कुपरिवर्तन उसको नजर नही पडा। पर फिर भी उसके प्रभाव से वह मुक्त कभी नही हो सकी।

पर माँ की होशियारी भी किसी हद तक ठीक ही थी—एक दिन की घटना से यही साबित हुआ। श्यामा फिर से माँ होने जा रही थी। प्रसव का समय

नजदीक आने पर रासमणि ने चिट्ठी लिखकर उसे अपने पास बुलाया। पर इस बार श्यामा को घर छोडने की हिम्मत न पड़ी। शायद वहाँ एक-दो महीने ठहरना पडे, या और भी अधिक। फिर तो यहाँ इस मकान से भी हाथ धोना पडेगा। वह फिर हमेशा के लिए उसके हाथ से निकल जाएगा। माँ के पास तो खैर उसे चाहे जब आश्रय मिलेगा पर नरेन के लिए तो वहाँ कोई गुजाइश नही। इसमे कतई शक नही था उसे! यही सब सोचकर उसने माँ को लिखा—'कुछ पैसे यदि हो सके तो भेजिए इस हालत मे आना तो अब असम्भव है।'

आखिर तो अपनी औलाद ही है? रासमणि ने किसी तरह पचास रुपये इकट्ठे भेज ही दिए। पैसे जब आए तो नरेन वहाँ मौजूद था। लालच भरी निगाह से वह रुपयो की ओर ताकता रह गया। लेकिन डर से श्यामा से कुछ कह नही पाया। इन दिनो श्यामा भी काफी दृढ हो चली थी। उसे डराकर कुछ भी करना मुश्किल था।

शाम को श्यामा रसोई कर रही थी तो नरेन पास आ बैठा।

"क्यो जी, क्या बात है? बड़ी भलमनसाहत दिखा रहे हो।" श्यामा ने तीखी नजर से देखा।

"नही, कुछ नही, यूँ ही देख रहा हूँ। कब से तुझे अच्छी तरह देखा भी नही। तेरी कसम छोटी बहू—इतने दु ख-कष्टो मे भी तेरे चेहरे की रौनक थोडी भी नही घटी है। तू आज भी नई दुलहन है। लगता है, एक बार और शादी की जा सकती है।"

इस चापलूसी के पीछे कुछ और बात है यह जानते हुए भी श्यामा पुलकित हो उठी। आग की वजह से उसके माथे पर पसीने की बूँदो मे जो लाली छाई थी, नरेन की इन बातो से वह और भी घनी हो उठी। नरेन बोलता गया।

"और क्यो न हो? सास का ही क्या कम रूप है? अँधेरे मे भी मानो रोशनी-सी चमक जाती है। कितने बड़े खानदान की लडकी है तू! राजाओ के घर की शोभा हो सकती थी। क्या करे, बेचारी दुर्भाग्य से मुझ दरिद्र के हाथ पडी है।"

श्यामा तिरछी नज़र से उसके मन की भावना को समझने की कोशिश कर ही रही थी कि इतने मे नीची आवाज से उसने कहा—

"तेरी कसम छोटी बहू, तेरे पैरो पडू तीन रुपये दे दे।"

"रुपये? क्या करोगे? तीन रुपये कहाँ से लाऊँ मैं?"

"तेरी कसम—बहुत दिनो से थोडा भी नशा नही किया। आज तबियत भी कुछ सुस्त है। बस, मैं अभी लौट आऊँगा। एक बोतल जरा विलायती पीने की बडी इच्छा हो रही है आज।"

"मैं कहती हूँ, क्या तुम्हे शर्म नही आती? मेरे जापे के खर्च के लिए माँ ने थोडे-से पैसे भेजे है, महीनेभर का खर्च चलाना पड़ेगा इसी मे। दाई का खर्च,

खाने-पीने का खर्च, तुम तो फिर लापता हो जाग्रोगे। उस समय तो उपवास नही कर सकूँगी। देना तो चाहिए तुमको ही पर माँ ने भेजा है। बेवा है बेचारी, उनको भी तो देनेवाला कोई नही है तुम्हे तो शर्म आनी चाहिए। ऊपर से तुम'''छि छि ! लाज-शर्म तो तुममे है ही नही—पर आदमियत की कोई निशानी भी नही है क्या ?"

"दुर्गा माँ की कसम, तेरे पैरो पडता हूँ—बस एक बार के लिए दे दे—फिर अगर मैं अच्छा आदमी बनकर ही तेरे द्वार पर न बैठूँ तो देख लेना। दो महीने तक कही नही हिलूँगा यह ले जनेऊ छूकर कहता हूँ। तुझे बच्चो के लिए रसोई भी नही करने पडेगी।"

नर्म हो उठा श्यामा का मन। आहिस्ते से अपनी गुप्त गठरी से तीन रुपये निकालकर दे दिये।

3

उसी दिन रात को श्यामा के दर्द हो उठा। अब कोई उपाय नही था। बस्ती की जो चमारिन दाई का काम करती थी उसी को बुला लिया। छ साल का लड़का हेम उस जगल के बीच से अन्धेरी रात मे दाई को बुलाने गया। दूसरा कोई घर मे था ही नही। मगला कुछ देर पहले आई ज़रूर थी पर यह निश्चित था कि वह अपने बच्चो को नीद से जगाकर दाई बुलाने को नही भेजती।

डर के मारे आँखे मूँदकर ठोकरे खाते हुए किसी तरह से हेम ही गया। आते समय तो दाई साथ ही रहेगी, यही भरोसा था। पर दाई आने से पहले ही श्यामा के बच्चा पैदा हो गया। 'मरा हुआ बच्चा है,' दाई के मुँह से यह सुनते ही श्यामा की आँखे भर आईं। इतनी तकलीफ के बाद बच्चा पैदा हुआ सो वह भी मरा हुआ !—मगला आई तो टेढी-सी होकर देखती रही, फिर बोली—"इसके लिए तुम्हारा पति ही ज़िम्मेदार है। ज़रूर उसके कोई खराब बीमारी है। वरना ऐसा नही होता। मैं तो सोच रही थी कि रातों-रात अन्धेरे मे जाती थी, मेरे फल-फूल बरबाद करने पेट की जलन से तो आँखो से कुछ सूझता नही था तुम्हे—उसी से कही कुछ नज़र-वज़र न लग गई हो। पर नही, तो यह तो देखा नही तुमने वसन की माँ ?"

वसन की माँ, दाई ने सर हिलाया, "हाँ माँजी, मुझे भी ऐसा ही लगता है।"

श्यामा को राधारानी की बात याद हो आई। तो फिर क्या आगे से उसकी औलाद भी नही बचेगी ? क्या इसका कोई उपाय नही, कोई इलाज नही है ? पर थकी-माँदी उसकी आँखे मुँद गई। कुछ भी इस वक्त सोचना ठीक नही था।

ज़रूरत की चीज़े सम्हालकर मगला ने कहा—"तो फिर तू धो-धुलाकर चली जा, वसन की माँ। मुझे तो उधर का भी घर-बार सँभालना पडेगा। उनसे कहा

था—किवाड़े बद करने को। शायद सो ही गये हो फिर से। मेरा मन तो वही पडा है। मै भी जाती हूँ अब।"

वसन की माँ भी रात के अन्तिम पहर मे चली गई। मरा हुआ बच्चा कपडे मे लिपटा पड़ा रहा। नरेन ही आकर कुछ करेगा। श्यामा यही सोचती रही।

जाते समय वसन की माँ ने पूछा—"दरवाजा ?"

"यूँ ही भिडा दे। रात तो ढल चुकी है। वे भी अब आ ही जाएँगे।"

बच्चे बहुत देर पहले ही सो गये थे। श्यामा की आँखे भी नीद की खुमारी से भारी हो उठी। उसे पता भी नही चला कब नरेन घर मे घुसा। नशे मे दोनो आखे सुर्ख थी पर निगाह मे नीद या खुमारी की झलक तक नही थी, बल्कि उनसे तो बेहद धूर्तता झलकी पडती थी। चुपके से उसने फटे कपडे की गठरी से चिथडो मे लपेटे रुपये निकाले, और सारे लिए जा रहा था पर फिर न जाने क्या सोचकर लौटा और दस रुपये रखकर जैसे आया था वैसे ही चला गया।

दूसरे दिन वसन की माँ तडके ही आ गई। श्यामा ने हेम से रुपये निकालने के लिए कहा पर पोटली खोलते ही श्यामा सब समझ गई। शर्म और घृणा से उसके सारे शरीर मे एक जडता-सी व्याप गई। नरेन्द्र नीच है—पर यह तो एक नीच के लिए भी लज्जास्पद काम था।

हाल खराब देखकर वसन की माँ सिर्फ चार रुपये लेकर चली गई। थकी-हारी श्यामा ने मरे लडके को दिखाकर कहा, "इसको तुम्ही किसी तरह ठिकाने लगा दो, वसन की माँ—जैसे भी हो।"

मगला ने भी आते ही सारा हाल सुना।

"भगी-चमार से भी गया-बीता है, बेटी। तुम इतनी सती-साध्वी बहू हो, इसीलिए आज भी उसके साथ निभा रही हो।···घिन आती है मुझे तो ऐसे भर्तार के नाम पर भी। जाने दो जो गया। आज तुम मत उठना, मैं साबूदाना उबालकर भेजे देती हूँ। बच्चो के लिए भी पिटकी कुछ चपातियाँ पो देगी। बामन के लडके-लडकियो को भात तो राँध नही सकती। हमारा बामन ठाकुर (रसोइया) भी तो इसी मौके छुट्टी लेकर देश चला गया है न।"

फिर थोड़ा ठहरी और सुस्ताकर बोली, "इसीलिए तो खटखटाती रहती हूँ। अगर दरवाजा बन्द कर लेती तो। 'सोयामी' (स्वामी) हो या और कोई··· इस तरह चुपचाप तो कुछ भी नही ले जा पाता।"

# द्वादश परिच्छेद

## 1

हेम अब आठ साल का हो गया। श्यामा को विश्वास नही होता था, लेकिन यह तो सत्य था। जहाँ एक साल कटने की बात सोचना मुश्किल था वहाँ आठ साल कैसे कटे, सोच ही नही पाती श्यामा। सरकारो के विशाल बाग के पके ताल-फल, नारियल, शरीफा, पपीता और केले चुरा-चुराकर के इकट्ठे करती श्यामा। केवल श्यामा ही क्यो हेम, महा, सभी। यह बात छिपी भी नही थी। सरकार परिवार जानता था। हमेशा एक तरह की आँखमिचौनी चलती रहती। पिंटकी का लडका सबसे बडा शत्रु था इनका। वह आजकल प्राय सारे दिन ही बाग मे रहता और उन लोगो मे से किसी को भी देखते ही नाक के स्वर से रोने लगता है, "ओ माँ, देखो वे बामन फिर आ गए है, चोरी करने को—ओ माँ ··"

और महाश्वेता ने भी उन लोगो से ही सुन-सुनकर गालियाँ देना सीख लिया। वह अपने रुँधे गले से उँगलियाँ मटका-मटकाकर शाप देती, "मरता भी तो नही है—मर जा, मर जा। कलमुँहा, छोकडा।"

इसी तरह चलती यह खीचातानी—जब पकडे जाते तो मार भी खाते। बामन के बच्चे होने से ही कोई रियायत नही कर देता। श्यामा दिन के उजाले मे नही जाती पर रात के अँधेरे मे प्रेतिनी की तरह घूमती। पहले तो सरकार लोग इतने डरते थे सचमुच उसे कोई ऊपर का 'हौवा' समझकर चिल्लाते और 'राम-राम' कहते भागते। अँधेरे मे सफेद कपडे पहने उस घूमती-फिरती देह को देखकर वे बहुत ही डरते थे। लेकिन धीरे-धीरे बात खुल गई तो वे भी सब निर्भय घूमते। ताल या नारियल के गिरने की आवाज होते ही दोनो दलो मे प्रतियोगिता-सी शुरू हो जाती है। कौन आगे आये। सरकारो के लडके-लडकियाँ भी अब निडर आ जाते। बामनी तो है ही बाग मे, फिर डर किसका? जिस दिन वे श्यामा के पहले न पहुँचते उस दिन फल इकट्ठे कर वह चुपचाप खिसक आती। सारा बाग छानकर भी अब वे कुछ नही पाते तो हेम के जगले के पास खडे होकर गालियाँ सुनाते, "बामन ना, धूर थोडी-सी! चोर हैं चोर सब! चोर भी कभी बामन होते हैं! मरते भी नही और कही जाकर!"

लेकिन सिर्फ फल इकट्ठे करने से ही तो काम नही चलता, ऊपरी कुछ नकद आमदनी भी तो होनी चाहिए।

पर यह बहुत ही कठिन काम था। देहात मे सभी थोडी-बहुत जमीन लेकर रहते हैं। फल-फूल, साग-सब्ज़ी भी होती है, खरीदने नहीं पडते। दूर शिवपुर के हाट मे उन्हे बिक्री भी कर आते हैं और भी दूर गये तो शालीमार मे। श्यामा के

यहाँ एक साथ ही तो सब कुछ इकट्ठा होता नही। फिर रोज-रोज इतनी दूर जाए कौन ? इसीलिए ज्यादातर सारे पके फलो को वे खाकर ही खतम करते। ये ही खाकर तो जीवित रहते थे। पर जिस दिन दो या तीन तरह की चीजे ज्यादा जमा हो जाती उस दिन श्यामा निकलती थी खरीदारों की खोज मे। पर लोगो की आँखो के पहरे का अन्त नही था। काफी वक्त तक वह एक-एक करके चीजो को बाहर ले जाती, किसी छिपी जगह पर उन्हे रख आती फिर माँ और बेटा दोनो दो रास्तो से जाकर उसी स्थान पर मिलते। महाश्वेता अकेली घर बैठी रहती, श्यामा बाज़ार से बाहर किसी पेड के नीचे प्रतीक्षा करती और हेम बाजार मे भीतर जाकर बेच आता। एक तो ऐसी चीज़ो की कीमत वैसे ही कम होती है, बच्चे को देखकर लोग और भी कम देते, यानी इतना सब करके इतना रास्ता तय करके पैसे मिलते किसी दिन दो आने तो किसी दिन दस। और किसी-किसी दिन और भी कम। लौटते समय जिस दिन हेम बहुत धूप मे चलकर आता तो चम्पे की अध-खिली कली-सा मुर्झा उठता। उस दिन बहुत हुआ तो एक पैसे के बताशे लेकर माँ-बेटा किसी पोखर के पास बैठकर ज़रा-सा पानी पीते। उससे अधिक खर्च करने की हिम्मत नही होती। इन्ही थोडे-से पैसो से तो चावल खरीदने थे। जिस दिन वे लोग भात खाते वही उनके लिए त्यौहार का दिन था।

और इतनी तकलीफ के बाद जिस दिन फल बटोरते हुए दोनो लडका-लडकी पकडे जाते और इकट्ठा किया सामान जब्त हो जाता तो उस दिन श्यामा असहाय-सी माथा पकडकर बैठ जाती। किसी का कुछ भी विरोध नही कर पाती। और मालिको द्वारा दण्ड देने कभी नए-नए तरीके खोज-खोजकर निकाले जाते। एक दिन उनके हाथो को बाँधकर 'आलकुशी' (देह पर खुजली मचानेवाला खनिज-पदार्थ) तो दूसरे दिन 'बिछूटी' (जलन पैदा करने वाला एक खास तरह का पत्ता) लगाकर ऊपर से पानी डाल देते। ऐसे ही और भी बहुत से तरीके थे। श्यामा को सबसे अधिक कष्ट उस दिन हुआ जिस दिन की पास के एक बाग से शाम के वक्त महाश्वेता को पोखर के पानी मे डुबाकर उसके माथे पर पाँव रखकर खड़े रहे स्वय अक्षय बाबू। उसे चोर मानकर किसी की भी बात पर विश्वास ही नही किया। दो-तीन मिनट इसी प्रकार खडे रहे। जब लडकी नीली पड गई तो हेम से सब सुन-कर श्यामा अपने को और अधिक नही रोक सकी। दौडकर ज़बरदस्ती लड़की को पानी मे से खीचकर गोदी मे ले लिया और आँसुओ के साथ भरे गले से बोली, "यही पास ही तो चटखडियो का घर है। उन्होने यह 'नोना' (एक प्रकार का फल) दिया है कि नही यह पूछे बिना ही लडकी का खून करने पर क्यो तुले हैं ? इस दुधमुही बच्ची को इस तरह मार डालने मे आपको शर्म नही आती ?"

अक्षय बाबू ने भी भौहे-चढाकर जवाब दिया, "शर्म तुम लोगों को नही आती, बाग के सारे फल चुराने में।"

श्यामा ने इससे पहले किसी दिन उनसे बातें नही की थी, बोलकर लज्जित ही हुई लेकिन अब और नही सह सकी। उसने भी कडे स्वर से उत्तर दिया, "फल तो कितने ही जिनावर, कौवे-चील आदि भी खा जाते है । बामन के बच्चो ने ही दो-चार खा लिए तो क्या हुआ ! पर इसलिए क्या ब्राह्मण की लडकी के सर पर पाँव रखोगे ? माँ सती रानी इसका न्याय करेंगी।"

इतनी देर बाद और भी अच्छी तरह से लडकी का नीला मुख देखा श्यामा ने। कैसी हो गई है महाश्वेता, दोनो होठ काँप रहे है, रो भी नहीं पा रही । यह देख और भी जोरो से रोकर पागलो के समान एक आम के पेड से माथा फोडने लगी श्यामा।

हल्ला-गुल्ला सुनकर मगला दौडती-दौडती आ गई । मगला ने स्वामी को डाँटा। श्यामा की आँखो के आँसू पोछकर अपने सूखे आँचल से लडकी का शरीर पोछा और अपनी छाती से लगाकर घर पहुंचा दिया, "रहने दो, कुछ मत सोचो बेटी, उनका स्वभाव ही ऐसा है। गुस्सा आने पर उन्हे कुछ भी खयाल नही रहता।"

श्यामा ने कुछ नही कहा, लेकिन अचानक उसी दिन पिंटकी की एक लडकी को बडे ज़ोर का बुखार चढा। दो दिन बाद डॉक्टर को बुलाने पर पता लगा कि निमोनिया है। वे लोग जितना डरे, श्यामा भी कम नही डरी। सचमुच कुछ ऐसा-वैसा तो नही हो गया लड़की को ? हे माँ, दुर्गा, हे माँ, तुम्ही बचाओ माँ। दिन-रात जप करने लगी श्यामा। बड़े बुरे दिनो मे आसरा रहा है इन लोगो का। उपकार भी कुछ कम नही किया है अभी तक !

मगला एक दिन आकर जबर्दस्ती उसे अपने घर ले गई । उसके पाँवो की धूल लडकी के शरीर मे लगा दी। उसके दोनो हाथ पकडकर बार-बार यही कहने लगी, "तू उसे माफ कर दे बामनी, माफ कर दे, नही तो यह दुधमुँही बच्ची बचेगी नही।" पिंटकी ने भी आकर दोनो पाँव पकड लिए। "यह कैसा शाप दे दिया बामनी ! मेरी लडकी सूखी जा रही है।"

श्यामा किस तरह समझाती उन लोगो को कि सचमुच उसने कैसा भी शाप नही दिया। इतना छोटा मन नही है उसका।

वह कुछ भी नही बोल पाई, केवल रोती रही कुछ देर । इसके बाद बेहोश लडकी के सिरहाने बैठकर उसके सारे शरीर पर हाथ फिराते-फिराते कहने लगी—"उसकी सब बला मेरे ऊपर आ जाए, माँ, उसका कुछ अनिष्ट न हो। छि छिः ! यह सब क्या कह रहे हैं आप लोग ? ऐसा तो मैंने कभी स्वप्न मे भी नही सोचा।"

जो कुछ हो श्यामा को कुछ दिनो के लिए मानो काठ-सा मार गया। वही मानो सारी आफतों की जड थी। अक्षय बाबू स्वय एक दिन उसके बरामदे तक आकर माफी माँग गए और पीछे से उन्होने एक कुठिया चावल भी भेज दिए। तेरह दिन बाद जब डॉक्टर ने कहा कि अब कोई डर नही है तब बड़ी-बडी दो

टोकरियाँ भी सीधे के सामान से भरकर आईं—चावल, दाल, तेल, घी, मैदा, आटा और एक साडी भी ।

तभी से फिर इन लोगो ने श्यामा को कभी तग नही किया । इसके अलावा मगला ने यह तय किया कि बाग मे जो भी नारियल के पत्ते गिरेंगे और जितने पेड़ काटकर गिराए जाएँगे वे सब श्यामा को ही मिलेंगे । उनसे बुहारी की सीकें बनाकर श्यामा शहर मे बिक्री के लिए भेजेगी, केवल सरकार लोगो की आवश्यकतानुसार थोडी-बहुत उन्हे दे देगी और जलाने के सूखे पत्तो मे भी आधे उन लोगो के और आधे श्यामा के ।

तभी से शुरू हुआ पत्ते एकत्र करना ।

इस व्यवस्था से श्यामा को बहुत खुशी हुई । नारियल के पेड कम नही थे—एक साथ पाँच सेर के करीब बुहारी की सीक इकट्ठी हो जाने पर शिवपुर के बाजार मे ले जाती, पाँच-छ आने पैसे मिल जाते । इसी के साथ कुछ फल-वल बेचकर भी दो-चार पैसे हो जाते यानी इस तरह भूखो मरने की नौबत नही आई ।

कमला कभी-कभी चार-पाँच रुपए बच्चो के लिए जरूर भेजती । उन रुपयो के आते ही श्यामा तेल-मसाला और कपड़ा आदि खरीदती । एक साथ ही सारी चीजे खरीद लेती । नही तो नग्नता की वजह से उन लोगो को बाहर निकलना बद रहता था, अत फिर भूखो मरना पडता ।

नरेन आजकल छ-छ या आठ-आठ महीनो के अन्तर से आता । कुछ-न-कुछ साथ मे लाता भी लेकिन वह सब स्वय ही खा-पीकर खतम कर जाता । इन लोगो के बारे मे सोचने की आदत ही नही पडी उसे ।

वह कहाँ जाता है, कहाँ-कहाँ घूमता है, क्या खाता है, क्या करता है ये सब प्रश्न नही पूछती श्यामा । उसने सहज भाव से मजूर कर लिया था अपना यह दुर्भाग्य । सिर्फ उसकी बातचीत से यह आभास मिलता था कि वह आजकल साधारणतया घूमते-फिरते पडित पुरोहित के पैसे से ही काम चलाता है—आवश्यकता होने पर चोरी करने मे भी हिचकिचाता नही है । जुआ खेलना भी खूब अच्छी तरह से सीख लिया है—यहाँ तक कि अपरिचित राहगीरो के साथ भी जुआ खेलने बैठ जाता है, जीतने पर पैसो को टेट मे बाँधकर सीधा किसी वेश्यालय अथवा मयखाने मे पहुँचता है और हार जाने पर उदास होकर कहता है कि उसकी टेट मे कुछ नही है । वास्तव मे कुछ तो रहता भी नही इसीलिए जीतनेवाले और कुछ न कर पाकर या तो सिर्फ गाली देकर छोड देते है अथवा दो-चार धौल-चपत जमा देते है ।

टेट से जब पैसे नही निकलते तो और किसी भी बात मे उसे आपत्ति नही होती, कितना ही मारो एक पाव घानी का तेल खरीदकर मालिश करते ही सारे शरीर का दर्द ठीक हो जाता है ! है-है शर्माजी के पास से नकद रुपया वसूल करले ऐसा आदमी अभी इस दुनिया मे कोई पैदा नही हुआ ।

बडी शान से वह ये सारी बाते श्यामा से कहता और अपनी ही छाती ठोकने लगता ।

## 2

तरकीब मगला ने ही बताई । उसका भी मतलब था बेचन ठाकुर भी कुछ दिनो से भाँति-भाँति के रोगो से पीडित थे—पूजा कराना एक समस्या हो गई थी ।

एक दिन दोपहर के समय उसके घर आकर मगला बोली, "एक काम करो बामनी माई, लडका तो आठ वर्ष का हो गया है, अब उसका जनेऊ कर दो ।"

"जनेऊ ? अभी से ?"—अचकचा गई श्यामा । "मैं कहाँ क्या पाऊँगी, कैसे करूँगी ?"

"जैसे भी हो, करो । यही तो जनेऊ गले मे डालने की उम्र है । जनेऊ हो जाने पर वह पूजा कर लेगा । 'रोज़-रोज़ नही-नही, नित्य उपवास' की हालत तो मिटेगी । चावल घर मे आएँगे, दूध बताशे मिलेगे किसी तरह से दिन कट जाएँगे । और चाहिए भी क्या, गाँव मे दो एक काम-काज मनसा और लक्ष्मी पूजा यह कौन बामन नही करा पाता । हमारे यहाँ भी तो बारहो महीने तेरह पर्व लगे ही रहते है ।"

श्यामा को आजकल याद ही नही थी इसकी । यद्यपि एक बार उसने सोची थी यही बात । लेकिन इन दरिद्रता के दिनो मे कुछ भी याद नही रहता था उसे । सब भूल जाती थी वह । आज जैसे अँधेरे मे रास्ता दिखाई पडा । लडका इतना बडा हो गया, उसके पढने-लिखने की भी तो कोई व्यवस्था नही कर सकी । जितना खुद जानती थी उतना अवश्य सिखा दिया था, लेकिन आजकल के ज़माने मे थोडी अँग्रेजी जाने बगैर भला कुछ काम चलता है ? कमला ने अपने पास भेज देने को लिखा था, लेकिन श्यामा वह भी नही कर पाई । वह किसको लेकर रहेगी, किस तरह जिएगी ? केवल ममता का ही सवाल नही था, बाज़ार हाट की भी कितनी मदद थी उससे । यही तो था एक काम करने वाला मर्द का बच्चा ।

नही, हेम को नही छोड सकी वह ।

लेकिन अब तो दूसरी बात हुई । हेम अगर कुछ स्वय उपार्जन कर पायेगा तो हैडमास्टर के हाथ-पाँव जोडकर मिडिल स्कूल मे भर्ती करा सकेगी । सरकार लोगो के कहने से मना नही कर पाएँगे वह भी । उन्ही लोगो का तो स्कूल है ।

एक क्षण मे उसने बहुत दूर की सोच ली । वास्तविकता की बहुत-सी बाधाओ को तोडती कल्पना उज्ज्वल भविष्य के पास पहुँच गई । विह्वल होकर श्यामा मगला की ओर देखती रह गई ।

कुछ देर तक उसके जवाब के लिए प्रतीक्षा करती-करती हाथ मे पडी पीक-दानी मे पीक डालकर मगला बोली, "क्या हुआ, इस तरह से ताक क्यो रही हो ?

क्या तय किया ?"

"ठीक ?" जैसे विस्मित हो गई श्यामा। "मै और क्या ठीक कर पाऊँगी, मेरी हालत तो आप सभी जानते ही है।"

मगला ने एक विशेष करुण स्वर मे कहा, "यह क्या मैं नही जानती हूँ—कुछ सहायता हम लोग कर देगे। पिटकी से न हो तो 'भिक्षा' दिलवा दूँगी—यह सब तो खराब काम नही हैं, इसमे तो पुण्य ही है लेकिन अपनी माँ को भी एक चिट्ठी लिख न ? कुछ-न-कुछ भेजेगी ही। तुम लोगों का क्या है, तुम लोगो के पास तो कलम का जोर है, किसी की खुशामद नहीं करनी पडती। एक चिट्ठी खुद लिखोगी डाक से भेजोगी और रुपया। लेकिन मैं तो फिर भी कहती हूँ लड़कियों का लिखना-पढना अच्छा नही है। तेरी माँ ने तुम लोगो को पढाया इसीलिए न तुम लोगो की यह दुर्दशा हुई ? मेरे बाप ने तो इसीलिए मुझे पढने ही नही दिया। वे कहते थे लडकियाँ तो घर की लक्ष्मी है, घर की लक्ष्मी दूसरे की हो जाएगी। सरस्वती के साथ तो लक्ष्मी का हमेशा झगडा लगा रहता है। असल मे सरस्वती लक्ष्मी की सौत है। सौत को कौन देख पाता है, बोल ता ?"

श्यामा माथा नीचे किए बैठी रही। आशा क्या चीज़ है, वह तो भूल ही बैठी थी। लेकिन यह क्या ? एक नई सिहरन के साथ नई आशा का सचार होने लगा। अब तो हेम भी किसी भी दिन अपने पाँवो पर खडा हो पाएगा, मनुष्य बन जाएगा।

"क्या करेगी फिर ?"

"चिट्ठी लिखूँगी। आप लोग बाकी का सब देख लीजिएगा।"

"हाँ, हाँ, तू लिख दे उनसे भी कहूँगी मैं। उन्ही के हाथ मे सब-कुछ चला गया है न अब। चारो ओर जैसी चोरी-डकैती हो रही है। डर से सब पूँजी निकालकर उन्हे दे दी है। वह क्या होता है बेंक-फेंक, वही सब रख दिया गया है। अब तो मैं उन्ही के हाथ मैं हूँ। पर देखती हूँ, कुछ-न-कुछ तो वसूल कर ही लूँगी।"

रासमणि ने भी कुछ रुपये भेजे और कमला ने भी। श्यामा ने उनमे से बहुत-से तो 'वक्त-बेवक्त' के लिए निकालकर रख दिए। उसने जितना हो सका सरकार लोगो पर ही जनेऊ का बोझा डाला। रासमणि ने कलकत्ता ले आने को लिखा था, लेकिन श्यामा इसीलिए नही गई। क्या जरूरत है माँ के गहने बिकवाने की ? दूसरो के सर पर ही जब काम पूरा हो रहा है, तो हो न।

जनेऊ के सात-आठ दिन बाद एक दिन शाम के समय न जाने कहाँ से नरेन आ टपका। झुटपुटा हो चला था। फिर भी देहरी पर पाँव रखते ही और हेम को देखते ही चिल्लाया वह। यह क्या, माथा क्यो साफ है ? गले मे वह क्या है ? हैं ! मुझे बिना बताये ही मेरे लडके का जनेऊ हो गया। किसकी इतनी हिम्मत पडी, सुनूँ तो ? इतनी बडी हिमाकत, मैं कुछ भी नही हूँ जैसे ? मैं हूँ उसका जन्मदाता पिता—मुझे बिना बतलाए ही इतना बड़ा काम कर लिया गया झट से। औरतो

की इतनी हिम्मत ! आज अगर इन गाय-बछडो को एक झटके मे साफ नही कर दूँ तो मेरा नाम नरेन नही !"

जैसे शराब पिए हो इस तरह पागलो जैसी उछल-कूद मचाने लगा नरेन। श्यामा पोखर की ओर गई थी—आते-आते सब-कुछ सुन लिया। वह भी भभक उठी, जल्दी से रसोइ मे जाकर चूल्हे मे से एक जलती लकडी निकालकर बोली, "चुप करता है या नही, नही तो इसी लकडी से जला दूँगी। चुप ! एक बात भी और न सुनूं ! बाप ! जन्मदाता ! पिता ! शर्म नहीं आती तुझे। हया-शर्म कुछ भी नहीं रही।"

उसका यह रणचण्डी रूप देखकर सकपका गया नरेन।

"बस, बस, बहुत हुआ। चुप भी रह। चिलम मे थोडी आग तो दे।"

फिर थोडी देर चुप बैठने के बाद बोला, "इस पोटली के एक कोने मे थोडी-सी चाय बँधी है। बना तो, पिऊँ थोडी-सी।"

फिर चाय-तमाखू पीने के बाद बातो ही बातो मे जैसे एक बात याद आ गई उसे, "हाँ, देख अगली बात तो कह ही नही पाया, जिसके लिए अचानक चला आया। मेरा बडा साढू मर गया।"

"हैं !" आर्तनाद कर उठी श्यामा। "क्या ? क्या कहा ?"

"हाँ, हाँ ! बिलकुल खतम।" ही-ही करते हुए बोला नरेन, "कलकत्ता गया था उनके मकान मालिक से भेंट हुई। तीन दर्द हुए बस उसी मे समाप्त हो गया।"

बस सिर्फ एक ही आर्तनाद के बाद श्यामा के मुँह से कोई शब्द नही निकला। नरेन ही थोडी देर के बाद बोला, "मतलब यह कि तुम्हारी बडी बहन अब विधवा हो गई। पैसे की गर्मी अब ज़रा कम होगी। साढू बहुत पैसा छोड गया हो सो भी नही है। है-हैं ! पुराने कपडो से गरीब बहिन की सहायता करती थी। अब उसकी सहायता कौन करेगा, देखा !"

उल्लास से गला फटा पड रहा था।

## 3

श्यामा को शायद उसी समय कलकत्ता जाना चाहिए था। लेकिन आखिर तक वह नही जा सकी। वजहे भी काफी थी। पहले तो कमला की इस हालत में उसके सामने जाकर खडे होने की हिम्मत नही हो पा रही थी उसे। वह खुद भी औरत थी और क्या। उससे बडा सर्वनाश और कुछ नही होता, यह वह अच्छी तरह जानती थी, विशेषतः एक हिन्दू बगाली के घर मे। उस राजरानी के समान दीदी को, जो कि चौडी लाल पाड की साडी मे गहनो से झलमलाती रहती थी, अब आभूषण-हीन सादे वेश मे देखना होगा, इससे तो अच्छा है कि वह यही मर जाए ! आह ! दीदी बेचारी न जाने क्या कर रही होगी !—हो सकता है उसको देखते हा चिल्लाकर रो उठे और शायद पछाड़े खाकर गिर पड़े। ना, ना, इस समय

उसके सामने खडा होना उसके बस के बाहर की बात है।

दूसरे हेम को अभी थोडे ही दिन हुए स्कूल मे दाखिल किया है। स्कूल के मालिको ने दया करके बिना फीस के ही भर्ती किया है, लेकिन कह दिया है कि गैरहाजिर होने से काम नही चलेगा। गैरहाजिर होने से सारी सुविधाएँ बन्द कर दी जाएँगी। बेचू चक्रवर्ती खाट पर पडा है, हेम ही आजकल पूजा-सेवा कर रहा है। नरेन तो दूसरे ही दिन फिर गायब हो गया है। हेम को किसके पास किसके भरोसे छोड जाएगी ? कौन उसे खिलाएगा ?

इसके अलावा वह गर्भवती भी तो है। इस अवस्था मे पैदल जाना। इस समय जाकर माँ से भी हाथ पसारकर कुछ रुपये भी लिया जा सकते है पर पैदल ही लौटना बडा कष्टकर होगा।

इसलिए आँखो के आँसुओ को आँखो मे ही पीकर फिर वही रोज़ के काम-काजो मे जुट पडी श्यामा।

वैसे उमा की चिट्ठी से सारी खबर मिल गई थी।

हा जाता है, 'थोडे दु ख मे कातर और ज्यादा दुख मे पाथर (पत्थर)'। बस रासमणि की यही हालत थी। आघात सह-सहकर उनका दिल भी पत्थर जैसा ही हो चला था। किसी भी नये आघात की प्रतिक्रिया जानना कठिन था, लेकिन बिजली गिरे पेड के ठूँठ की तरह खडी थी वह। अन्दर-ही-अन्दर सब सूख गया था।

कमला मायके आकर नही रही। उसके जेठ और देवर भी थे कई, लेकिन उसके पति उन लोगो से कोई विशेष सम्पर्क नही रखते थे। इसलिए आज उन लोगो के पास जाने से कैसा बर्ताव मिलेगा, कमला यह आसानी से समझ गई। अधिक सासारिक ज्ञान न होने पर भी वह आदमी को पहचानती थी। हो सकता है कि वह लोग आरम्भ मे ही न भगाएँ, लेकिन शीघ्र ही कुछ-न-कुछ ऐसी तरकीब निकालेगे कि जिससे वह वहाँ और अधिक न टिक सके।

उसके पति किसी सौदागर के यहाँ नौकरी करते थे। तनख्वाह ज्यादा नही थी लेकिन चार आना प्रतिशत के हिसाब से कमीशन पाते थे। उसी से उनकी गृहस्थी चल रही थी। नौकर-चाकर, रसोईदारिन, साहबी ठाठ-बाट। दो-एक बार कमला ने इस ओर ध्यान भी दिलाया था पर उन्होने हमेशा हँसी मे उडा दिया। कह दिया, "डर किस बात का है और कुछ दिन नौकरी करने के बाद अपनी निजी फर्म खोल लूंगा।"—"मूलधन ?" "इन्ही लोगो को आर्डर सप्लाई करूँगा—मूलधन की क्या जरूरत है ?—हमारी तो छोटी-सी गिरस्ती है, चिन्ता किस बात की है ? उसके लिए अभी से दुश्चिता करने मे क्या लाभ है। किसी तरह से काम चल ही जाएगा।"

और शायद चल ही जाता इसी तरह। लेकिन मरने से कुछ दिन पहले एक

तान्त्रिक आ गया था। दीक्षा गुरु नही, चूँकि दीक्षा तो कुल गुरु से ली थी—अतः शिक्षा-गुरु कहा जा सकता है, उसी की बातो मे आकर एक काली की मूर्ति की स्थापना भी कर दी। जो कुछ ज़मीन-जायदाद थी उसे दान दे दी, नकद सब रुपये खर्च होने लगे घर और मन्दिर बनाने मे। वह तान्त्रिक ही कानूनन सारी सम्पत्ति का मालिक था।

हालाँकि उसने विधवा को आश्रय देने से उज्र नही किया। पर कमला ने सक्षेप मे कह दिया, "इसी ने तो मेरे पति का खून किया है। उसके आश्रय मे लडके को पालने के बजाय लडके को जहर दे दूँगी।"

इसी नये मन्दिर मे एक तान्त्रिक क्रिया करते वक्त कमला के पति के हृदय मे पहले पीडा हुई थी फिर वह बेहोश हो गये थे। इसी अवस्था मे एक दिन बाद मृत्यु हो गई। कमला से कुछ बोल भी नही सके।

कमला के पास जितनी नकदी थी वह कुछ दिनो मे ही समाप्त हो गई। आफिस से भी तनख्वाह और कमीशन का जो कुछ मिलने वाला था उसमे कुछ और मिलाकर करीब पाँच सौ रुपये दे गये थे लोग। बाकी बचे थे कुछ गहने। पर कमला इस आपत्ति के साये मे ज़रा भी विचलित नही हुई, उसने सिर्फ कान की बालियाँ गोविन्द की बहू के लिए और गोविन्द के अन्नप्राशन के छोटे-छोटे गहने उसके बच्चो के लिए निकालकर बाकी के सब गहने बेच दिए, सब मिलाकर बाईस सौ रुपये हुए थे। सारे रुपये उसने अपने पति के एक मित्र सोने के व्यापारी की गद्दी मे जमा करा दिये। उन्होने पक्की रसीद देकर रुपए लिए—तय हुआ कि रुपयो का उपयोग वह अपनी इच्छानुसार करेंगे—लाभ-हानि उनकी, पर इन रुपयो के ब्याज के रूप मे प्रति महीने अठारह रुपए कमला को मिलते रहेगे, जब तक कि वह ये रुपये वापस न ले।

कमला ने इसके बाद फर्नीचर आदि सब बेचकर चार रुपए महीने मे एक किराए की कोठरी ले ली और लडके के साथ वही रहने लगी। अच्छे ब्राह्मण का घर था, सब ओर से निरापद ! अन्त तक इसी आय मे गुज़ारा करके वह लडके को पालेगी यही उसकी आशा थी। माँ अपनी दो जुडवाँ लडकियो को लेकर ही व्यस्त थी, उन पर और भार नही डालेगी कमला—यह तो हुई एक बात। दूसरी बात जो काफी दिनो बाद प्रकाश मे आई यह थी कि लडकियो के विधवा होने के बाद उनका पिता के यहाँ रहना उसके पति ज़रा भी पसन्द नही करते थे। उन्होने काफी दिनो पहले एक बार कहा भी था, "यदि ऐसी कोई आफत आ जाए तो इस लडके को खुद ही आदमी बनाने की कोशिश करना। उसके लिए यदि कुछ काम भी करना पडे तो शर्म की बात नही है। लेकिन विधवा माँ के पास मत जाना। उन्हे वैसे ही बडी अशान्ति है। विधवा बहनो के रहते मन छोटा हो सकता है। लडके का भी ठीक-ठीक पालन नही हो पाये। तुम्हारी उमा तो विधवाओ मे ही

"मैं कहती हूँ शरीर मे गू लगा लेने से तो यमराज जीता छोड नही देंगे। अरे हिन्दुओ के घर मे जब लडकी हुई है तो शादी भी करनी ही पडेगी—खाना मिले या न मिले। लडकी तो दिखला दे। दिखवाने मे क्या हानि है ? दिखलाने से तो शादी नही हुई जा रही कोई। पसन्द आ जाए तो फिर क्या चाहिए, रुपए-पैसे शायद न भी ले।"

बात श्यामा के मन मे बैठ गई। हेम को एक औरपूजा का काम मिला है। इस गाँव से बाहर प्राय एक मील तक पैदल जाना पडता है। सुबह चार बजे उठकर हेम पहले वहाँ चला जाता है फिर यहाँ की पूजा करके पढने बैठता है। खूब तेज़ी से जाता है और तेजी से ही आता है—घटा-भर से ज्यादा नही लगता। वहाँ की व्यवस्था अच्छी है हालाँकि चावल आधा सेर ही है पर महीने के तीन रुपए भी तो मिलते है। रात को दो बडे बताशे और एक पाव दूध। वैसे वह ब्राह्मण या कायस्थ का मन्दिर नही है—लेकिन जिसे आपत्ति होती उसी मगला ने ही कहा . "कौन मानता है अब इतना सब, तुम तो पगली हो। यह बेचू भी तो लुक-छुपकर पूजा करता था, ले ले, ले ले, खाने-पीने की चिन्ता तो दूर होगी।"

बेचू बीमार पड़ा था इससे एक-दो मनसा पूजा, लक्ष्मी पूजा और पा जाता था हेम, नही तो बिलकुल उपवास करने की हालत थी। गोद मे एक बच्चा और आ गया था। चाँद-सा रग, कमल की कली-सी सुन्दर लडकी, कमला ने चिट्ठी से ऐन्द्रिला नाम लिख भेजा है। जो हो इसका खर्चा ही कितना है। यदि कुछ माँ दे दे और कुछ मगला उधार कर दे तो किसी तरह से काम हो जाएगा। उधार वह नही रखेगी। जिस तरह भी हो कष्ट सहकर यह काम करेगी ही वह।

आमदनी का एक और भी रास्ता खुल गया था इन दिनो। मौड़ी के कुण्डू बाबू किसी भी पुण्यकार्य के समय सात गाँवो के ब्राह्मणो की देहरी पूजते थे। यह गाँव भी इस तालिका मे आता था। सातो गाँवो के ब्राह्मणमात्र को दान-दक्षिणा मिलती थी इसमे। अभी तक तो इन लोगो को मिलती नही थी चूँकि वे लोग इस गाँव के स्थायी रहने वालों मे नहीं गिने जाते थे। बहुत दिनो की कोशिश के बाद अब उनका नाम भी खाते मे लिख गया था। सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से भेंट-पूजा के समय निमन्त्रण के अलावा एक पीतल की हाँडी या घडे मे तेल नही तो काँसे के थाल मे 'सदेश' आदि भी दिये जाते थे प्रत्येक ब्राह्मण के यहाँ। तेल और मिठाई आदि घर मे रहती और बर्तन बिक्री कर दिया जाता। पूजा के दिनो मे भी यही व्यवस्था थी। हर बामन को सोलह लूचियाँ और बारह सन्देश। तीन-चार दिन सारे परिवार का खाने-पीने का काम चल जाता। नई लडकी ऐन्द्रिला भी अब इस भेंट-पूजा की अधिकारिणी हो गई थी।

ज़रा देर चुप रही श्यामा और मन-ही-मन कितने स्वप्न-जाल बुनती रही। कल्पना मे ही वह बहुत आगे निकल गई। फिर बोली, "ठीक है देखे आप। लेकिन

लडका करता क्या है, उम्र कितनी है ?"

मगला को यही पता चला था कि लडका मौड़ी ग्राम मे ही रहता है। किसी विदेशी कम्पनी के ग्राफिस मे काम करता है, वेतन है उन्नीस रुपये महीने, रोजीना के हिसाब से इतना ही मिलता है। घर मे माँ और दो भाई और है। शायद दो बहने भी है। खानदानी मकान की जगह दो टूटे-फूटे कमरे है—पर ज़मीन बहुत काफी है, लगभग तीन-चार बीघे।

मगला ने यह भी कहा—"अरे, जवान लडके है, कमाते क्या देर लगेगी। मकान भी ठीक बन जाएगा। जमीन तो है ही—देखते-देखते मकान भी खडा हो जाएगा। फिर तेरी लडकी का भी तो भाग्य काम करेगा। कुछ अगर सौभाग्यवती हुई तो वेतन बढते कितनी देर लगेगी।"

"पर माँजी, यह तो बताइए कि लडके की उम्र कितनी है।" श्यामा ने फिर एक बार याद दिला दी मगला को।

"उम्र ?" जरा चुप रहकर मगला ने शायद हिम्मत करके कहा, "उम्र और क्या, ज्यादा-से-ज्यादा तेईस-चौबीस होगी।"

"चौबीस वर्ष ! मेरी लडकी तो मात्र सात-साल की है अभी।"

"अरे वह सब मत कहो। सात वर्ष क्या कम उम्र है लडकी की ? पहले तो इसी उम्र मे शादी न करने से लोग अँगुली उठाते थे। और यदि वर की बात कहती हो तो लडको की भी कही उम्र देखी जाती है ? दूजियाँ तो नही है। सुना है पहले तो तुम कुलीन ब्राह्मणो के यहाँ पाँच साल की लडकी के साथ साठ साल के बूढे की शादी होती थी।"

फिर भी श्यामा को चुप देखकर मगला ने कहा, "ब्राह्मणो की ही बात क्यो, मेरी भी तो बडी जिठानी है, तूने तो देखा है उन्हे। पिंटकी के गोदी के बच्चे के अन्न प्राशन मे आई थी। 'एयोरानी भाग्यमानी'—सफेद बालो मे भी सिन्दूर लगाती है। लेकिन उसकी शादी कब हुई थी, मालूम है ? मेरी जिठानी पाँच साल की थी और जेठजी अट्ठाईस पार करके उनतीस के हुए थे। बाहुर, पछाँह मे, काम करते घूमते थे। शादी का समय नही मिला। इसके बाद एक दिन बाप के कानो ने हठात् यह बात सुनी कि लडके का चरित्र खराब हो रहा है, जहाँ रहते है वहाँ एक यहूदी मेम को रख छोडा है। जैसे ही यह बात सुनी, तार भेज दिया। 'माँ की हालत बहुत खराब है जल्दी से चले आओ।' जिस दिन लडका आया उसी दिन चौकी पर बैठा दिया—सिर्फ तीन-चार दिन का समय था लड़की देखने का भी समय नही मिला। घर के पास ही यह पाँच साल की ही लडकी मिली तो वही सही। पर उस समय एक बडे मजे की बात हुई थी—लज्जा की बात है किसी से कहना मत—कहते हुए भी हँसी आती है—मेरी जिठानी सुहागरात की रात को हठात नीद से उठकर साडी बगल मे दबाए पति से कहने लगी—'अरे ओ बोल,

बोल, 'सुनते हो, मुझे पेशाब लगा है, बाहर खडे हो जाओ चलकर' देखो तो क्या तमाशा हुआ!"

कहते-कहते मगला स्वय ही ठठाकर हँसने लगी।

श्यामा कुछ देर चुप रहने के बाद बोली—"तो देखिए माँ, जो ठीक समझिए आप लोगो की दया से लडकी ठिकाने लग जाएगी!"

"हाँ—अब जाती हूँ देखूँ—कही पिटकी दरवाजा अन्दर से बन्द किए बगैर ही न सो गई हो। बडी लापरवाह लडकी है!"

# त्रयोदश परिच्छेद

## 1

सचमुच महाश्वेता की शादी यही पक्की हो जाएगी यह श्यामा ने सोचा भी नही था कभी। यहाँ तक कि जब तारीख भी ठीक हो गई तब भी उसे यकीन नही आ रहा था। मगला ने काफी कुछ किया—करीब-करीब जबर्दस्ती ही लडके की माँ को राज़ी कर लिया। इक्यावन रुपए नकद, चोली का जोडा, मिलनी के लिए तीन थान, दान के बर्तन और सोने से मढी दो पेटियाँ, कुल इतनी चीज़े तो देनी थी। कुछ बर्तन मगला ने घर से निकालकर दिए जिन पर पालिश करा दी गई। नकद रुपए कुछ रासमणि ने भेजे। अभावग्रस्त कमला ने भी पाँच रुपए नकद और एक पारसी साडी भेजी। उमा आजकल क्रूस के काम की चीज़े बेचती है—इससे उसके पास भी कुछ रुपए इकट्ठे हो गए थे—उसने उसमे से पाँच रुपए भेजे। श्यामा भी कुछ रुपए वहाँ-यहाँ से माँग लाई, एक तरह भीख माँगकर ही। बाकी कुछ कर्ज लेना पड़ा। मगला ने ही कर्ज़ दिया। शर्त रही कि श्यामा दो-एक रुपए माहवार देकर उऋण हो जाएगी, मगला ब्याज नही लेगी।

श्यामा ने पुराने पते पर बडी जिठानी के नाम चिट्ठी लिखी थी, लेकिन वहाँ से कोई जवाब नही मिला। परन्तु और एक जगह से अप्रत्याशित रूप मे ही कुछ मिल गया। न मिलने से श्यामा को बड़ी परेशानी होती। कारण, बाराती कम-से-कम तीस आदमी होगे यह उन लोगो ने स्पष्ट कहला दिया था, इसमे किसी तरह भी कमी नही कर सकेगे वे। वर के सगे-सम्बन्धियो की ही सख्या तीस से अधिक थी। यहाँ के भी दो-चार आदमी तो बुलाने ही पड़े। सरकार महाशय के घर में ही बच्चे-बूढे कुल मिलाकर बाईस आदमी थे। मुहल्ले के लोग अलग। अधिक जोड-तोड करने को मना किया था मगला ने, लेकिन श्यामा के मन ने नही माना। पहली सन्तान की शादी जो थी। ज़िन्दगी मे यही तो पहला काम हो रहा था

उसके घर। बचपन से ही वह जैसा जो कुछ देखती आई थी ठीक वैसा नही हो सकेगा यह तो वह बखूबी जानती थी, लेकिन इसके माने यह नही कि आयोजन मे एकदम से कमी कर दी जाए।

इसके अलावा मरुभूमि मे एक हरी-भरी जगह दिखाई पडी, प्यासे पथिक का मन इससे लालायित हो उठा। कितनी ही कल्पनाएँ उसके मन मे जगी—सुदूर भविष्य की कितनी ही असभाष्य-सी बाते। इससे मन मे शक्ति का सचार हुआ—कर्ज लेने मे भी डरी नही। मन-ही-मन कही से उसे ऐसा आश्वासन मिला कि यह कर्ज़ जरूर चुका देगी वह।

फिर भी आखिर मे काम नही सँभलता अगर भगवान् इकत्तीस रुपये छप्पर फाड के न दे देते। मगला बोली—"लडकी का ही भाग है बामनी माँ। लडकी के भाग से सब अच्छा ही होगा—यही मालूम होता है।"

कैसे जो वे रुपये आ गये यह आज भी श्यामा की समझ के बाहर है। उतनी हिम्मत कहाँ से मिल गई थी उसे। शायद इसमे भगवान् का ही हाथ था।

शादी के ठीक तीन दिन पहले कही से नरेन्द्र आ टपका एकदम अप्रत्याशित रूप से। हाथ मे अरबी के पत्ते मे लपेटा थोडा हरिण का मॉस और झोली मे दो सेर के करीब आटा था।

"मॉस को प्याज देकर अच्छी तरह रॉध तो देखूँ। थोडी-सी बिचाली देकर पहले मॉस को सिझाकर पानी फेक देना नही तो मिट्टी की बू आएगी—खा नही सकेगी।"

उसके बाद उसकी दृष्टि विवाह के आयोजन पर पडी।

कड़ी निगाह से एक बार चारो तरफ देखकर बोला—"यह सब क्या है? ऐ? ये चकाचक बर्तन, नई चौकी, वरणपात्र—इसका क्या मतलब है? किसकी शादी है?"

श्यामा उसके हाथ से मॉस लेकर रसोईघर मे रख आई और एक लोटे मे पानी लेकर खडी हो बोली—"पहले हाथ धो लो फिर शादी की खोज-खबर लेना।"

नरेन्द्र का स्वर सप्तम पर चढ गया—"नही, फिर नही अभी बताओ। अब तुम्हारी चालाकी नही चलेगी, किसकी शादी है, जल्दी बोल, नही तो मै सब खत्म कर दूँगा।"

"अरे शादी किसकी होगी और, तुम्हारी ही बिटिया की है।"

"ऐ।" एक प्रकार का विचित्र स्वर नरेन्द्र के गले से फूटा, "मेरी बिटिया की शादी और मुझे पता भी नही है। अच्छा! होने दूँगा मै शादी, अच्छी तरह होने दूँगा! एक ही वर के साथ तुम दोनो माँ-बेटी को पार लगा दूँगा—कहे देता हूँ, हाँ। देख लेना।"

वह काफी उछल-कूद मचाने लगा और सारे आँगन मे नाचने लगा। लेकिन

श्यामा ने धीरज नही खोया। उसने समझाया—"देखो, फिजूल नीचता मत करो। तुम क्या घर मे रहते हो या हम लोगो की कुछ खबर रखते हो ? तुमको शादी की बात कैसे बताती ? हम लोगों को कितने दिनो बाद क्या-क्या खाना नसीब होता है, इसकी भी कुछ खोज-खबर रखते हो तुम ?"

"चुप रह हरामज़ादी, ज्यादा लम्बी-चौडी बातें मत बना। धर रख उन्हे अपने पास ही। शादी मेरी बिटिया की है। मैं नही होने दूँगा यह शादी। उन लोगो को खबर भिजवा दे कि यह शादी नही होगी। इस पर भी यदि वे लोग शादी करने आवेगे तो इसी डण्डे से उनकी खोपडी तोडकर न रख दूँ तो मेरा नाम नही।"

इसी हो-हल्ला मे पता नही कब अक्षय बाबू आकर पीछे खडे हो गये थे। वे ज़रा मुस्कराकर बोले—"लेकिन उससे तो जेल की हवा खानी पडेगी—और क्या चाहिए यदि किसी का खून हो गया तो फाँसी भी हो सकती है।"

"भुगत लूँगा जेल की सज़ा, इसमे क्या है। अभ्यास है मुझ को; जेल का डर नही है। मैं किसी भी हालत मे यह शादी नही होने दूँगा। देखूँ कैसे होती है यह शादी ! हाँ।—बिटिया की शादी करके तू निश्चिन्त होगी। मैं जीते जी यह होने नही दूँगा, बस।" अकारण ही उसका स्वर रोषपूर्ण हो उठा।

अचानक श्यामा के मन मे असीम साहस का सचार हुआ। उसने घूँघट थोडा और नीचे सरकाया और अक्षय बाबू से कहा—"आप ज़रा मेरे साथ आइए तो बाबूजी, मैं थाने मे जाऊँगी।"

थाने का नाम सुनते ही नरेन्द्र का तमतमाया हुआ चेहरा उतर गया। बोला—"ओह, तब तो मैं डर से केंचुआ बन जाऊँगा। जा न थाने, थाने मे जाकर क्या कहेगी सुनूँ तो सही थोडा।" नरेन बोलने को तो बोल रहा था, लेकिन अब उसके गले मे उतना ज़ोर नही था। यह सबके सामने स्पष्ट हो गया।

उसकी आवाज़ मे ताकत की कमी ने ही श्यामा के मन मे गजब की ताकत भर दी। किसी ने जैसे उसके मुँह मे शब्द भी भर दिये हो। वह शान्त और दृढ स्वर मे बोली—"कहूँगी कि तुम छिप-छिपकर रोज जुआ खेलते हो। मैंने जब पुलिस मे खबर देने की धमकी दी तो तुम हल्ला-गुल्ला और मार-पीट पर उतर आए। तुमको गिरफ्तार करने के लिए मैं सिपाही लिवाकर ही आऊँगी अब।"

इस बार सचमुच जौंक के मुँह पर नौंन पडा। नरेन्द्र का चेहरा स्याह पड़ गया। वह दबी आवाज़ मे बोला—"जा कह दे न जाकर। तेरे कहने से ही वे लोग यकीन कर लेगे ? गवाह नही चाहिए, कुछ सबूत नही चाहिए ? कुछ भी नही—ससुराल समझ रखी है !"

उसके बाद और धीमी आवाज़ मे बोला—"ठीक है, कर दे न तू अपनी बिटिया की शादी। मेरा क्या है ? मैं तो तेरे भले के लिए ही कहता हूँ। न जाने कौन

कहाँ का ग्रादमी लड़की को ठग ले जाएगा। तू क्या खाक समझती है—ग्रौरत की जात दस हाथ साडी रहने पर भी पीछे पल्लू भी खोस नही पाती। बुद्धि तो तिल-भर भी नही है। सिर्फ बकना ही जानती है।"

इस बार ग्रक्षय बाबू ने तिरस्कार के स्वर मे कहा—"बामनी बेटी को ग्रगर ग्रक्ल न रहती तो क्या तुम जी पाते महाराज या तुम्हारी यह गिरस्ती ही कायम रह पाती। उसने जो शादी तय की है वैसी तुम इस जिन्दगी भर कभी नही कर पाते। ज्यादा हल्ला मत मचाग्रो। चुप-चाप सो जाग्रो ग्रौर देखना, कही दान के बर्तनो को चुराकर बेच मत डालना। फिर तो यह थाने चले या न चले मै खुद ही थाने जाऊँगा।"

सचमुच नरेन्द्र चादर ग्रोढकर बकबक करता बिस्तरे पर सो गया जाकर।

× × ×

दूसरे दिन दोपहर को रसोईघर के बरामदे मे बैठी श्यामा रुपयो के बारे मे सोच ही रही थी इसी समय पिटकी की मँझली लडकी हाँफती हुई ग्राकर बोली—"जानती हो बामन मौसी, बामुन मौसा के पास ढेर-से रुपए है, ढेर-से।"

"तूने कैसे जाना ?" श्यामा की ग्राँखें लोभ से चमक उठी।

ग्रभी-ग्रभी तालाब मे नहाने गए थे। सो नहाकर ऊपर ग्राए तो भीगी धोती के साथ ही कमर एक गँजिया खोली ग्रौर उसमे से कुछ रुपए निकालकर तालाब की सीढी पर रख दिए। फिर उसे धोकर सूखने डाला ग्रौर ग्रब बैठे-बैठे उसी की रखवाली कर रहे है।"

फिर भी जैसे श्यामा को यकीन नही हुग्रा। उसने सन्देह से पूछा—"तूने कैसे जाना कि वह गँजिया ही है ? गँजिया किसे कहते है, तू जानती है ?"

"हाँ"···लम्बी तान खीचकर कालीतारा बोली, "क्या मैं गँजिया नही पहचानती हूँ ? दादा को कही रुपया लेकर जाना पडता है तो गँजिया मे ही रखकर तो ले जाते है।"

श्यामा उसके गाल को प्यार से दबाकर बोली—"बडी ग्रच्छी खबर सुनाई बेटी, तूने।"

"मुझे ग्रब मजेदार लड्डू ज्यादा खिलाग्रोगी न ?" उत्सुकता ग्रौर ग्राग्रह से पूछा कालीतारा ने।

"जरूर ! जितने खा सकेगी।"

उस वक्त फिर कुछ नही बोली श्यामा।

तीसरे पहर जबकि शादी के लिए तरह-तरह के इन्तजाम करने के सिलसिले मे मगला बाहर के बरामदे मे ग्राकर बैठी थी, तभी श्यामा ने सीधे जाकर नरेन्द्र से कहा, "बीस रुपये तो दो, मुझ से ग्रब पार नही लगने की। ग्रभी मैदा, घी वगैरा सब बाकी है, मछली तो मगला माँ कल तालाब से पकडवा देगी, कहा है।"

"रुपए ? मेरे पास कहाँ से आए रुपए ? मेरे पास तो कानी कौडी भी नही है। और घी का क्या होगा, तेल की पूरियाँ ही ठीक रहेगी। नही तो, यह तो ब्राह्मणो का घर है सो भात खिलाने मे भी कोई दोष नही। शादी हो रही बामन-पुजारी की लडकी की और उसमे होगी घी मे सिकी मैदे की पूडियाँ!"

श्यामा ने कहा—"यह तुम्हारा गुप्तीपाडा नही है—यहाँ तेल की पूडियाँ खिलाने का रिवाज़ नही है। भात तो कोई छुएगा भी नही। दोपहर को एक बार भात चल भी सकता है। पर रात मे भात खिलाने से तो बराती लोग हसेगे। और सिर्फ शादी की रात के खर्चे की ही तो बात नही है—फूलशय्या का सामान भी तो अभी बाकी है, दस रुपए से कम क्या लगेगा फूलशय्या के समान मे ?"

"तब मरो जाकर। मैं क्या जानूँ, नवाबी करती है तो अपनी कमर की ताकत देखकर करो न।"

"कमर की ताकत देखकर ही तो करती हूँ। जो कुछ करती हूँ मैं ही तो करती हूँ या फिर मगला माँ करती है। तुम जो जन्मदाता पिता कहकर चिल्लाते फिरते हो सो तुमने क्या किया सुनूँ तो जरा। यह तुम्हारी बेटी नही है ?"

'मेरी बेटी है तो क्या हुआ। मैं तो उसकी शादी नही कर रहा हूँ। मुझमे जब उसके ब्याह करने की सामर्थ्य होती तभी करता। तूने क्या मेरी राय से शादी तय की थी ?"

"ठीक है—तुम्हारी राय नही ली तो तुम्हारे भरोसे भी तो नही थी। आ पहुँचे हो कुछ रुपए भी पास हैं इसीलिए माँगती हूँ। परिवार तो तुम्हारा है, परिवार के खर्च के लिए ही, न हो, कुछ दे दो।"

"मै···मेरे पास रुपए!" जैसे आसमान से गिरा नरेन्द्र। जोश मे आकर एकबारगी उठ खडा हुआ। बोला, "मै कहाँ पाऊँगा रुपए ? माँ की कसम, माँ काली की कसम, मेरे पास एक पैसा भी नही है।"

बाहर बैठी मगला ने जैसे अपने आप से कहा—"तुझे भी रुपया माँगने के लिए दूसरा आदमी नही मिला बामनी। उससे माँगती हो, वह भी रुपए।"

लेकिन श्यामा का मुँह तब तक कठोर हो चुका था, वह एक कदम और समीप जाकर बोली—"देखो, जान-बूझकर झूठ-मूठ कसमे न खाओ, कहे देती हूँ। रुपए मुझे मिलने ही चाहिएँ—भला चाहते हो तो दे दो, नही तो तुम्ही बचोगे या मैं ही।"

"झूठ-मूठ।" नरेन्द्र जैसे फिर आसमान से गिरा, "यह बात अगर झूठ हो तो फिर क्या कहूँ, तुम्हारे उस बेटे की कसम खाकर कहता हूँ—मेरे हाथ मे एक भी पैसा नही है। बोलो तो बेटे के सिर पर हाथ रख दूँ ?"

"फिर झूठ।" इतना कहकर श्यामा ने एक झटके के साथ उसकी कमर से बँधी गँजिया खीच ली। शायद गँजिया का मुँह ठीक से बन्द नही था सो खीचते ही

गँजिया से एक-एक रुपए के सिक्के झनझनाकर फर्श पर गिरे और बिखर गए। उसके पास सचमुच इतने रुपए होगे इसकी उम्मीद नही थी श्यामा को। वह कुछ क्षण तक उन चाँदी के सिक्को के गिरने की आवाज से स्तभित होकर खड़ी रह गई। उसके बाद ही गुस्से से पागल होकर पूरी ताकत से एक चाँटा लगाया उसने नरेन्द्र के गाल पर। लम्बे अर्से से जो उसके मन मे क्षोभ सचित था और पति के अमानुषिक आचरण के कारण उसके दिल मे अब तक जो कटुता जमी हुई थी उन्ही की प्रेरणा से उसे चाँटा मारने की ताकत और हिम्मत मिली। इसका तनिक भी आभास उसे नही था और सब कुछ अचानक ही हो गया। यह घटना पहले उसके लिए कल्पनातीत थी और बाद मे भी अविश्वसनीय। बडे और इकलौते बेटे की झूठी कसम खाने के कारण ही उसके हृदय मे सचित क्षोभ-रूपी बारूद मे आग लग गई थी। शायद ससार मे सभी माताओ के लिए यह बात बर्दाश्त के बाहर है।

जो भी हो—थप्पड मारने के बाद दो-चार क्षणो के लिए इस घटना को समझने मे देर हुई उसके बाद ही श्यामा उकड़ू बैठकर उन सिक्को को बीनने लगी। कुल इकत्तीस रुपए मिले। बहुत ढूढने पर एक भी और नही मिला।

एकबारगी इकत्तीस रुपए मिलना उसके लिए अविश्वसनीय था।

इस घटना से नरेन्द्र अधिक स्तम्भित हो गया था। श्यामा उस पर सचमुच हाथ छोड सकती है इसकी कभी कल्पना भी नही की थी उसने। इससे उसके मन मे कुछ भय का सचार हुआ, अन्यथा छीना-झपटी करके कुछ रुपए तो बचा ही लेता, लेकिन इसकी भी कोई चेष्टा नही की उसने। उसी तरह अवाक् खड़ा टुकुर-टुकुर देखता रहा और श्यामा ने उकड़ू बैठकर सारे रुपए बीन लिए। उसके बाद नरेन कमरे से बाहर आकर मगला के सामने जा बैठा और रूआँसे स्वर मे बोला—"देखा आपने! देखी इस हरामजादी की करतूत। मेरे गाल पर पाँचो उँगलियो के निशान बन गए है। मेरे गाल मे जलन हो रही है!"

मगला भी पिनक उठी—"तुम्हारे भी काले कारनामे है महाराज। बस, अब कुछ न बोलो। तुम्हारी ही बिटिया की शादी है—बीस रुपए माँगे थे उसने, सीधी तरह दे देने से ही काम चल जाता—सो देना तो दूर रहा उल्टे अपने ही लडके की झूठी कसम खा गए? गले मे फाँसी लगाने के लिए रस्सी भी नही मिलती है? रस्सी न मिले तो जनेऊ तो है और मैं घड़ा देती हूँ, गले मे बाँधकर डूब मरो तालाब मे जाकर। शर्म नही आती औरत की तरह रोते? उसने मारा सो खूब अच्छा किया। मैं होती तो ऐसे मर्द के आगे चूल्हे की राख परोस देती।"

रुपए छिन जाने के अफसोस से उस दिन नरेन्द्र ने रात को खाना नही खाया। दूसरे दिन फिर घर से चल दिया कुछ-कुछ बदला लेने के इरादे से ही। जहाँ तक हो सका श्यामा ने सभी चीजों पर नजर रखी थी इस कारण नरेन्द्र और कुछ नही ले सका सिर्फ एक नई धोती किसी प्रकार चादर मे छिपाकर चुरा ले गया। सिकी

ने नही जाना। ढूँढने पर भी जब नही मिली तो सभी ने यही अनुमान किया। मगला ने सान्त्वना दी—"अरे इकत्तीस रुपए के बदले मे तेरह आने की एक विलायती धोती गई तो जाने दे ! सचमुच उसे भी कुछ चाहिए था !"

## 2

महाश्वेता के लिए सब-कुछ गुड्डे-गुडियो का खेल जैसा था। जिन गरीबी और अभावो के बीच उसका पालन-पोषण हुआ था उन्हे देखते हुए यह सचमुच की शादी भी मानो रूपकथा के राज्य और स्वप्नलोक के समान ही अविश्वसनीय-सी थी। उसकी धारणा थी कि ससुराल कोई वैसी बुरी जगह नही है, उसे चिढाने के लिए ही पिटकी तरह-तरह की बाते कहा करती है। पर पता नही दूल्हा कैसा होगा ? क्या सचमुच राजकुमार की तरह होगा ? लेकिन राजकुमार भी भला कैसा होता है ? मगला की एक बूढी ननद किसी-किसी दिन बच्चों को लेकर रूपकथा सुनाने बैठती—महाश्वेता भी कितनी ही बार उस दल मे जा बैठती थी। रूपकथा का राजकुमार सिर्फ राक्षसो को मार-मारकर राजकुमारियो को छुडाया करता है—इसी तरह की कल्पना करती थी वह राजकुमार के बारे मे। कभी-कभी पूछ बैठती—हाँ नानी–राजकुमार कैसा होता है ? बूढी अपनी आँखे फाड़कर कहती—अरी इतना भी नही जानती है तू ? यही गोरा रग तेरी माँ की तरह—परवल की फाँक जैसी आँखे, नुकीली नाक, कार्तिक की तरह फरहरी मूँछे। यही देवी जी की मूर्ति के साथ जो कार्तिकजी रहते हैं करीब-करीब वैसा ही। उनकी सास का का नाम दुर्गा था। इसीलिए वे देवी कहा करती थी। रोज़ सुबह उठकर बोलती, "देवी दुर्गा विनाशिनी माँ।"

महाश्वेता भी कार्तिक जैसा ही दूल्हा सोचने-समझने की चेष्टा करती पर वह उसे अच्छा नही लगता। वह तो खेलने के गुड्डे की तरह एकदम छोटा-सा है—घुँघराले बाल है। ना, वैसा ही यदि राजकुमार हो तो नही चाहिए उसे राजकुमार दूल्हा। हालाँकि उसका दूल्हा राजकुमार की तरह क्यो होगा यह प्रश्न एक बार भी उसके मन मे नही उठा। वह जो पहले दिन सरकार-नानी ने उसकी माँ से कहा था—राजकुमार की तरह लडका है—शायद वही बात उसके मन मे बैठ गई थी।

आखिर शादी का दिन आ ही गया।

दूल्हे के आने पर उसको दुपट्टा माँगकर एक पीढे पर बिछा दिया गया और उसी पर महाश्वेता को बैठाया। पिटकी ने डपटकर कहा—"खबरदार, एक कदम भी यहाँ से हिलना-डुलना नही ! तुझे पीढा-सहित उठाकर सात फेरे लगाये जायेंगे।"

लेकिन महाश्वेता अधिक देर बैठी नही रह सकी। सरकार घर की बैठक मे

दूल्हा आकर बैठा था—औरते इकट्ठी होकर देखने गई थी। उसके पास कोई नही रहा—जिस कमरे मे वह बैठी थी उसमे केवल दो बच्चे सो रहे थे। कौतूहलवश वह इधर-उधर देखकर दूल्हे के चादर को समेटकर छाती से लगाये दबे पाँव दौड़ पड़ी। जिधर से सभी देख रहे थे उस तरफ जाना ठीक नही था—बाहर से होकर जाने का भी उपाय नही था—वहाँ मर्दो की भीड थी। दौडते-दौड़ते ही उसने तुरन्त सोच लिया—उस बगल पिटकी के घर की ओर एक छोटी-सी खिडकी है उससे देखा जा सकता है। हाँ, यहाँ भीड़ सचमुच कम है, केवल दो-एक छोटे-छोटे लडके है, उन्हे ढकेलकर हटाती हुई महाश्वेता ने झाँककर देखा। पूरा न सही कुछ तो देखा जाएगा। हाँ, लम्बा-चौडा जवान है ठीक, रग भी खूब गोरा है, लेकिन अरी माँ, यह क्या ? घनी काली दाढी है जो। मूछ-दाढी से चेहरा बिल्कुल···। यह क्या ?

महाश्वेता कुछ दुखी हुई। अवाक् भी हुई। जब से उसने होश सँभाला तब से तीन-चार शादियाँ इस मुहल्ले मे देख चुकी थी, उनमे से एक भी दूल्हा ऐसी दाढी लेकर शादी करने कभी नही आया था। और कार्तिक की मूर्ति की तरह यह नही था इससे वह खुश हुई, लेकिन ऐसा गलगुच्छ वाला चेहरा भी उसकी कल्पना से बाहर था। अक्षय बाबू के दफ्तर का जो भोजपुरी दरबान आता है उसकी दाढी भी करीब-करीब ऐसी ही है। फिर भी उसकी दाढी—दो हिस्से तो दोनो कानो से बँधी रहती है—जगली झाडी जैसी दाढी तो नही है !

देखती रही और देख-देखकर अवाक् होती गई महाश्वेता। तब तक पीछे से किसी ने उसका कान पकड लिया। चौककर देखा तो पिटकी।

"बार-बार मना करने पर भी तूने वही अशुभ काम कर डाला। कहा तो था पीढे से उठना नही पर शुभ दृष्टि के पहले ही दूल्हा देख लिया। इतनी-सी लड़की अन्दर-ही-अन्दर दादी बन गई है। और दो घण्टे की देर भी नही सहन होती ? छिप-छिपकर दूल्हा देख रही है।" दबी आवाज मे बकती रही वह। श्यामा ने भी आते ही एक तमाचा जड़ दिया। मगला ने रोका—"है ! हैं ! यह क्या करती हो आज के शुभ दिन मे !"

श्यामा बोली—"देखिये न, शुभ-दृष्टि के पहले ही इसने दूल्हे को देख ही लिया, अगर कुछ भला-बुरा हो तो ? सब-की-सब असगुनो की होड।"

"अरी शुभ-दृष्टि हुई तो नही है। दूल्हा तो दूसरी ओर देख रहा था। छोडो, और मन खराब मत करो।"

अपमान और अभिमान के कारण महाश्वेता की आँखो मे आँसू आ गए। इसलिए जब सचमुच शुभ-दृष्टि का समय हुआ तब वह ज़बर्दस्ती आँखे मूँदे बैठी रही। खुशामद और डाँट-फटकार किसी भी तरह उसकी आँखे नही खुलवाई जा सकी। अन्त मे अक्षय बाबू आकर प्यार से मुँह को ऊपर उठाकर बोले—"एक बार आँखे

खोलो तो दीदी, वाह ! बडी अच्छी लगती है, देखो तो ठीक से । तब एक क्षण के लिए उसने आँखे खोलकर फिर मूंद ली । इससे उसकी नज़र मे सिर्फ दो पीली-पीली गभीर आँखो की स्थिर-दृष्टि पडी ।

और उसको न जाने कैसा डर-सा मालूम होने लगा ।

## 3

अरे राम यह कैसी ससुराल है ! पालकी से उतरकर सिर झुकाये रहने पर भी आड से ही एकबारगी देख ही लिया महाश्वेता ने । बड़ा-सा घना बगीचा, आँगन मे कटहल का बहुत बडा पेड़ जो दिन मे ही अँधेरा किए था—और उसके बीच एक टूटा-फूटा सीलन भरा नीचा-सा कमरा । केवल एक ही कमरा । बगल मे भी एक कोठरी थी जिसकी छत का कुछ हिस्सा टूटकर गिर चुका था। उस जगह पत्तो का छप्पर धरवा दिया गया था । पद्मग्राम मे वे लोग चाहे जितनी तकलीफ मे थे कम-से-कम अच्छे पक्के मकान मे तो रहते थे । कैसा लम्बा-चौडा और ऊँची बैठक का सूखा कमरा था । पर अब तो उसे यही रहना पडेगा जिन्दगी भर ।

इतना जरूर है कि सास खराब स्वभाव की नही थी । छोटा-सा कद था उनका । मीठी-मीठी बाते करती थी । उन्होने गोद मे लेकर महाश्वेता को पालकी से उतारा, बहू बरने के बाद कमरे मे ले जाकर बैठाया और कहा—"पुराना मकान देखकर घृणा मत करो, बेटी, यह तुम्हारे ससुर का खडहर है । तुम्हारे प्रताप से किसी दिन इसी जगह राजमहल खडा हो जाएगा, देख लेना ।"

तीन बजे के लगभग 'कुशण्डिका' का झगडा मिट गया । भूख और प्यास से उस समय महाश्वेता एकदम निढाल हो गई थी । फिर भी उसने एक बात देखी कि जिस समय कुशण्डिका का काम खतम हो रहा था वह अक्सर गिरी-गिरी-सी हो जाती थी लेकिन जितनी बार ऐसा हुआ, यानी उसे चक्कर-सा आया, उतनी ही बार दूल्हे ने सबकी आँखे बचाकर उसे सहारा देकर सँभाला । बडा खयाल रहा उसे ।

नाश्ते के लिए नारियल के दो लड्डू और दो जलेबियाँ मिली । यह देखकर किसी ने जल्दी से थोड़ा ईख के गुड का शर्बत भी ला दिया । लेकिन महाश्वेता के लिए तो वही उस समय अमृत के समान था । दुल्हन को बिलकुल कुछ नही खाना चाहिए, सिर्फ जरा-सा तोडकर मुँह मे डाल लेना चाहिए, यह बात वह उस समय भूल ही गई ।

पानी पीकर जरा स्वस्थ होकर बैठने पर महाश्वेता को उन लोगो को देखने का भी अवसर मिला जो लोग उसे घेरे हुए थे । यहाँ के लोग भी तो कैसे-कैसे थे । ज्ञान होने तक महाश्वेता की दुनिया सिर्फ दो ही घरो तक सीमित थी । एक तो कलकत्ता मे नानी का घर और दूसरा पद्मग्राम मे सरकारो का घर । नानी के घर मे

जो दो-तीन आदमी थे उनकी शिक्षा, सभ्यता कितनी थी यह समझने लायक वह तब तक हुई नही थी, लेकिन उनकी छाप उसके मन पर अवश्य पडी थी। सरकार घर की चाल-ढाल, खासकर पोशाक, पर कलकत्ता की छाप लगी हुई है। लेकिन यहाँ के लोग तो उन सबो से जैसे एकदम अलग किस्म के थे। जैसा लिबास—गदे और मामूली कपडे—वैसा ही बाते करने का ढग। मर्दों की धोतियाँ घुटने से ऊपर, पाँव खाली, कन्धे पर एक गमछा अथवा फटा हुआ पुराना कोट। दो देवर और दो ननद। बडी ननद की शादी हो चुकी थी—बारह-तेरह वर्ष की लड़की थी, बडा-सा एक नथ पहने बडी-बूढी की तरह घूमती-फिरती थी। फिर भी उसके कपड़े साफ-सुथरे थे। एक देवर ग्यारह साल का और दूसरा पाँच का—किसी के भी बदन पर कुर्ता नही। इस शादी के मौके पर भी वे ओछी और मैली धोती पहने खाली पैर घूमते-फिरते थे। फिर भी कैसी पकी-पकी बाते करते! महाश्वेता का मन भर उठा।

दूल्हा भी कैसा था! जब तक वर वेश मे था तब तक अच्छा लग रहा था। बस अब तो ' की तरह वह मोटा कोरा कपडा पहनकर बड़े-बडे काठ के टुकडो के चैले करने मे पिल पडा है। कल भोज होगा उसी के लिए जलावन की लकडी चाहिए। फिर भी अच्छी किस्मत है, बिलकुल नगे बदन नही है—फतुआ पहने है।

"लेकिन और जो कहो, देह का रग खूब गोरा है!" मन-ही-मन महाश्वेता ने स्वीकार किया। उससे तो बहुत ही ज्यादा गोरा था। मेहनत से माथे पर पसीना झलक उठा और चेहरा लाल हो गया—महाश्वेता को लगा जैसे वह पसीना नही है, सबेरे जो वह दूध और महावर मे खडी थी मानो वही रगा हुआ दूध किसी ने उसके चेहरे पर छिडक दिया था। पर उतनी दाढी नही रहती तो खूब अच्छा लगता।

श्यामा ने फूलशय्या का सामान अच्छा ही भेजा था। सभी प्रशसा करने लगे।

नकद रुपये तो दस से अधिक खर्च नही हुए, लेकिन श्यामा ने अपनी मेहनत से बहुत कुछ पूर्ति कर दी थी। दो थाली भर के चन्द्रिकाएँ, एक थाल खोये की बर्फी और एक थाल मे कचौड़ियाँ और समोसे। 'सन्देश', 'पान्तुआ' आदि सभी चीज़े श्यामा ने खुद ही बनाई थी। जमाई के लिए धोती-चादर, बेटी के लिए लाल किनारी की साड़ी, फूल का थाल, माला-चन्दन, खोया और धान के लावे की खीर से भरा कटोरा कुछ भी नही छूटा था। यहाँ तक कि एक छोटी-सी टोकरी मे थोड़ा घी-मैदा, थोड़ा-सा अनाज, चीनी, मिश्री तक सजाकर रख दिये थे।

सभी ने स्वीकार किया कि फूलशय्या का इतना सामान इस गाँव मे पहले कभी नही आया था।

वधू-प्रवेश का भोज दोपहर मे ही समाप्त हो चुका था। भोज क्या भात-

भोज कहिए। भात, दाल, तरकारी, मछली, चटनी—अन्त मे दही और जलेबी। महाश्वेता की आँखें सजल हो उठी थी—कितनी अच्छी तरह शादी हुई उसकी और वधू-प्रवेश के भोज मे इतना साधारण खाना! वैसे भी निमन्त्रित लोगो ने मुँह दिखाई मे अधिकाश दुवन्नी-चवन्नी ही दी, इन लोगो का कोई रिश्तेदार था, कलकत्ता का आदमी केवल वही पूरा एक रुपया दे गया। कन्या-पक्ष से हेम आया था निमन्त्रण मे। वह भी एक अठन्नी दे गया। राजभवन के एक कर्मचारी एक छोटा-सा लडका साथ लेकर निमन्त्रण मे आये थे उन्होने सब से ज्यादा दिया—पाँच रुपये।

फिर भी गिनने पर रकम कम नही मिली। महाश्वेता के सामने ही उसकी सास ने रुपये गिनकर सन्दूक मे रखे, सत्ताईस रुपये थे करीब।

वधू-प्रवेश के भोज का झमेला जल्दी ही खतम हो गया था इसलिए फूलशय्या भी जल्दी हुई। सभी औरते थकी थीं, घर जाने को उद्यत थी किसी तरह काम-काज निबटाकर चली गईं। महाश्वेता को भी राहत मिली, दिन-भर काठ की मूरत की तरह दुल्हन बनकर बैठी-बैठी और असमय भात खाने के कारण उसकी आँखों के पलक बोझिल हो चले थे, वह भी जरा सो लेना चाहती थी।

लेकिन जब औरते सारे विधि-विधान समाप्त होने पर उन दोनो को अकेले मे छोडकर सचमुच चली गईं तब फिर किसी तरह भी नींद नही आई उसे। पक्का कमरा एक ही तो था उसी मे फूलशय्या सजाई गई थी। कटहल की लकडी की बनी पुरानी चौकी पर पतला-सा बिछावन। शायद कुछ फटी कथरियो के ऊपर एक सफेद चादर बिछी थी। एक किनारे रेडी के तेल का एक दीया जल रहा था, जिसकी लौ तेज़ हवा से काँप रही थी और साथ-ही-साथ काँप रही थी पूरब की दीवार पर पडी टूटे हुए बडे सन्दूक की छाया। पुरानी छत, कडी और किवाड़ो पर अलकतरा लगा दीवार का प्लास्टर कई जगहो से छूटा हुआ। कैसी एक तरह की बू भी आ रही थी। फिर भी महाश्वेता करवट लेकर उसी कमरे के अन्दर की हर चीज़ देखने लगी। नीद से पलके भारी हो उठी थी, दुख रही थी दोनो आँखे—फिर भी सोई नही वह। बगल मे जो सोया हुआ था उसके बारे मे भी कौतूहल ही सबसे ज्यादा था। बडा डर लग रहा था। लेटी-लेटी ही वह पैरों मे हल्की कँपकँपी भी महसूस कर रही थी। हाथो की मुट्ठियो मे पसीना आ रहा था। डर के साथ-साथ कौतूहल की भी जैसे सीमा नही रही।

कमरे के बाहर खुस-पुस आवाज़ हुई शायद कोई कान लगाए हुए था। लगाए कान। कान लगाने से क्या लाभ था, यह महाश्वेता नही समझी। उसे सिर्फ हँसी आई। यदि वह आदमी उसके ठीक पीछे बदन के पास नही सोया रहता तो वह ज़ोरों से हँस ही पडती!

और ज़रा खुसपुस होते ही दूल्हा ने उसकी कान के पास मुँह लाकर खूब

कोमल और स्नेहपूर्ण स्वर मे पूछा, "क्या नीद नही आती ? थोडा पानी पियोगी ?"

स्वीकृति मे सिर हिलाया महाश्वेता ने । सचमुच उसे प्यास ही लगी थी—उस आदमी ने तो ठीक ही समझा ।

दूल्हे ने आहिस्ते से उठकर पीतल के एक छोटे से लोटे मे पानी ला दिया । महाश्वेता ने उठकर पानी पिया फिर लेट गई ।

उसके बाद कुछ देर तक दोनो चुप रहे । बाहर की खुस-पुस की आवाज़ ज़रा रुकते ही दूल्हे ने उसे खीचकर ज़रा अपनी ओर घुमाकर कहा, "नीद नही आती तो थोडी गपशप करो न ।"

दूल्हे के साथ धीरे-धीरे बात करनी चाहिए यह बात किसी के न बताने पर भी महाश्वेता पता नही कैसे जान चुकी थी । उसने फुसफुसाकर पूछा, "क्या गपशप करूँ ?"

"जो चाहो ।" कुछ देर बाद महाश्वेता बोली, "तुम दाढी क्यो नही कटवाते हो ? सरकार नाना के घर मे और हम लोगो के मुहल्ले मे तो सभी दाढी कटवाते है, बुड्ढे होने पर दाढी रखते है ।"

दूल्हा—"खर्च पूरा नही पडता है ।"

"दाढी कटवाने मे भी खर्च होता है क्या ?"

"हाँ, नाऊ एक पैसा करके लेता है । महीने मे दो आने !"

"बडा भारी खर्च है यह तो ।" होठ बिचकाकर बोली महाश्वेता ।

दूल्हा ज़रा गभीर होकर बोला—"मैं तनख्वाह पाता हूँ कुल उन्नीस रुपए । पाँच आदमी खाने वाले है, अभी बहन की शादी की है । तुम आईं तो अब छ आदमी हो गए । इस आमदनी से क्या पूरा पड़ सकता है ? घर-द्वार भी तो बनाने होगे ? और दाढी रखने मे हर्ज क्या है ?"

"नही, हर्ज क्या है भला ।" बडी-बूढी की तरह बोली महाश्वेता ।

कुछ देर के बाद उसी ने फिर पूछा—"अच्छा, चोर देखने मे कैसा होता है ?"

"सो तो नही जानता । शायद आदमी जैसा ही होगा ।···लेकिन अचानक चोर की याद कैसे आ गई ?"

ज़रा झेपकर महाश्वेता बोली, "नही, माँ किसी से कह रही थी, बाहर कपडे-लत्ते है सो खयाल करके सोना कही चोर न ले जाए ।—चोर यहाँ आता है क्या ?"

"नही । हम लोगो के पास है ही क्या, जो चोर ले जाएगा ।"

उसके बाद वह और क्या बाते करे, सोच नही पा रही थी महाश्वेता । उस आदमी को भी तो कुछ-न-कुछ बोलना चाहिए । खुद तो मज़े में चुपचाप लेटा है । गरज़ क्या सिर्फ महाश्वेता को ही है । गपशप करे न । वाह रे । अच्छा आदमी है यह तो ।

बहुत सोच-विचार कर एक बार महाश्वेता ने पूछा—"तुम लोगो के घर मे पोई के पौधे है ?"

जरा हँसकर दूल्हा ने कहा—"हाँ । क्यो ? तुम्हे पोई का साग बहुत पसन्द है क्या ?"

लेकिन तब तक बाहर ठठाकर हँसने की आवाज हुई । मालूम हो गया कि छिपकर सुनने वालियाँ तब भी इन्तज़ार कर रही थी, कोई भी सोने नही गई थी। महाश्वेता यह भी समझ गई कि उसके मुँह से खासी बेवकूफी की कोई बात निकल पडी है । इसलिए वह भी झेंपकर दूसरी ओर घूमकर तकिए मे मुँह छिपाकर सो रही—दूल्हे की बात का कोई जवाब नही दिया ।

दीए की लौ काँप रही थी और उसके साथ काँप रही थी पूरब की दीवार पर पडने वाली एक पर एक रखे हुए दो सन्दूको की छाया । एक आँख ज़रा खोलकर उसी को देखती-देखती कब सो गई महाश्वेता, उसे सुध ही नही रही ।

# चतुर्दश परिच्छेद

## 1

यह निश्चित हुआ कि महाश्वेता आठवे दिन वापस आकर एक साल तक रहेगी । उन दिनो नियम भी यही था । इस एक वर्ष के अन्दर जमाई ससुराल आ सकता था लेकिन लडकी ससुराल नही जा सकती थी । इस अंचल मे यही रिवाज था । महाश्वेता अभी बिलकुल बालिका ही तो थी एक वर्ष से अधिक रहने मे भी कोई हर्ज नही था। लेकिन महाश्वेता की सास क्षीरोदा ने एक अजीब-सा प्रस्ताव कहला भेजा । किसी 'टोल' मे राय ले ली थी कि शादी से आठ दिनो के अन्दर ही लडकी-जमाई अगर मायके आवे और तुरत लौट जाएँ तो इसे पग-धूलि (पटा-फिराई) कहते हैं—फिर एक साल तक मायके मे रहने की ज़रूरत नही पडती। क्षीरोदा महाश्वेता को बीच-बीच मे ले जाना चाहती थी । दो-एक महीने मायके भी रह जाया करेगी—लेकिन उनको भी तो कोई चाहिए ही हाथ बटाने के लिए, इसलिए एकदम से पूरे एक वर्ष तक मायके मे नही छोड सकेगी।

श्यामा का मुँह सूख गया । उसकी दुधमुँही बच्ची, और वह जवान जमाई। अभी से भला वह ससुराल मे कैसे रहेगी ? ससुराल का भी तो हाल खराब है। हेम से पूछ-पूछकर उसने बेटी के ससुराल का जो चित्र अपने मन मे अंकित किया था उसमे उसकी सात वर्ष की बेटी रहे इस बात को सोचते ही उसके हृदय में कैसा कुछ होने लगा ।

लेकिन शादी हो जाने पर तो लडकी पराई हो जाती है। उस पर अब क्या अधिकार है भला उसका ?

आखिर श्यामा ने मगला की शरण ली।

"अब क्या होगा माँ ? वे लोग तो अभी से लडकी को रोकना चाहते है ?"

जरा देर चुप रहकर मगला ने कहा—"सुना है, आजकल ऐसा ही होता है। कोई-कोई पग-धूलि रस्म कर लेता है। उसका क्या करेगी बता ? अब और तो कोई जोर रहा नही, बल्कि इसके बाद किसी तरह खीच-तान कर दो महीने की जगह तीन महीने तक महाश्वेता को रोक लिया जाएगा। वहाँ जाने पर फिर दो महीने के बाद वापस बुला लेना।"

"लेकिन इतनी छोटी-सी लडकी अभी से ससुराल मे रहेगी तो दुबली हो जाएगी न। फिर जमाई भी तो बडा भारी-भरकम है, लडकी तो डर से सूख-सूखकर ही खत्म हो जाएगी।"

"कितनी ही छोटी लडकियाँ ससुराल मे रहती है—इसके लिए कोई चिन्ता करने की जरूरत नही है। जमाई की क्या बात करती है। एक साल तेरे पास रहने पर कुछ तेरी लडकी बडी बालिग नही हो जाएगी। एक साल बाद भी तो उसे वहाँ भेजना ही पडेगा, तब क्या करेगी ? इसके अलावा एक पेट का खर्चा भी तो बचेगा।"

लाचार श्यामा को चुप हो जाना पडा। जमाई अभयपद बडा ही भद्र था। शादी के दिन श्यामा कुछ नही समझ सकी थी। लेकिन जिस दिन 'पग-धूलि' की रस्म करने आया और जिस दिन दोनो फिर साथ आए, दोनो ही दिन श्यामा ने उसे देखा और आश्वस्त हो गई। वैसे जमाई और श्यामा करीब-करीब हमउम्र थे—इसलिए खुलकर बाते करने मे उसे लाज लगी—किसी प्रकार सिर से एक हाथ लम्बा घूँघट खीचकर वह सामने आई, केवल खाना खाने वक्त दो-एक बार अनुरोध किया—करीब-करीब निर्लिप्त भाव से ही दबी आवाज़ मे फुसफुसाकर। लेकिन अभय ने जब हेम और मगला से बाते की तब उसने कान लगाकर सुना। उसे लगा, अभय की बाते बडी अच्छी है। केवल मधुर ही नही, ज्ञान और बुद्धिमानी की बाते करता है। इस उम्र मे इतना ज्ञान और ससार के सम्बन्ध मे जानकारी कैसे हुई, यह सोचकर श्यामा को कुछ अचरज हुआ। पर इसके कारण का अनुमान भी लगा लिया। बचपन से ही परिवार का बोझ अभय के सिर पडा था। घर-गिरस्ती और खाने-कमाने के विद्यालय सबसे कठोर और निर्दय गुरु बनता है यथार्थ, उसी से शिक्षा मिली थी उसको। इसीलिए शायद उम्र की तुलना मे बहुत अधिक जानकारी हो गई थी उसे। प्रौढता का बोझ ढोते-ढोते किशोर अभय खुद ही न जाने कब प्रौढ और प्रवीण हो गया—यह शायद उस बेचारे को पता ही नही चला। समय से पूर्व बुजुर्ग बने इस तरुण पर श्यामा को तरस आता था। सोचती—"आह, यही तो उसकी रग-रेलियाँ मनाने की उम्र है, अभी से इतनी बुजुर्गी !"

अभयपद के तौर-तरीके भी जरा विचित्र थे।

श्यामा लक्ष्य करती—नाश्ता, भात, जो कुछ भी उसे परोसा जाता—उसमे से आधा खाता और आधा थाल मे बाकी छोडकर उठ जाता। नाश्ते मे अगर कभी एक ही रसगुल्ला देती तो तोडकर आधा खा लेता। भात से लेकर मछली तक मानो माप कर आधा ही खाता। पहले तो श्यामा की समझ मे नही आया, लेकिन बाद मे वह समझ गई थी कि अभय जो आधा भाग रख देता है सो जान-बूझकर महाश्वेता के लिए। ससुराल की हालत की पूरी जानकारी न रहने पर भी अभयपद यह तो समझ ही गया था कि सारे परिवार के लिए एक-सा आयोजन करना इनके लिए सभव नही। जो कुछ उसे परोसा जाता है वह केवल उसी के लिए ही मँगाया जाता है। उसके खाने के बाद महाश्वेता ही उस थाल मे खाने बैठेगी—इसलिए बालिका पत्नी के प्रति ममता के कारण वह प्रत्येक वस्तु का आधा भाग छोड देता।

अभयपद ने यह आदत कभी नही छोडी। किसी तरह खुशामद-दरामद करने पर भी उसे डिगाया नही जा सका। अन्त मे, श्यामा ने कुछ भी कहना-सुनना छोड दिया था, बल्कि सभव होता तो उसकी थाली मे अधिक सामान ही परोसती जिससे कि वह आधा छोड दे तो भी भूखा न रहे।

महाश्वेता पहले-पहल तो गदगद् हो उठी थी, लेकिन श्यामा ने उसके पल्ले पूरा कभी नही पडने दिया। हेम को अच्छी-अच्छी चीजो मे हिस्सा मिलता था। इसमें महाश्वेता को विशेष आपत्ति भी नही थी। एक ही तो भाई था, उसको देकर जो कुछ वह पाती वह भी तो उसकी कल्पना के बाहर ही था।

पहले दिन, जिस दिन कि पग-धूलि का विधान करने के लिए वे लोग आए थे, महाश्वेता ने पेट-भर खाने के बाद कहा था, "जो भी कहो, भाई, आदमी बुरा नही है।"

पहले तो श्यामा समझ ही नही सकी थी, पूछा—"कौन बुरा नही है री, किसकी बात कर रही है?"

"और कौन। दूल्हे की बाते कर रही हूँ।"

महाश्वेता का चेहरा लाल नही हुआ, लेकिन श्यामा के चेहरे पर, खासतौर से गालो पर, सुर्खी दौड गई। मानो किसी ने सिंदूर मल दिया हो। सिर्फ लाज से? नही, अनजाने सुख से भी। अपने जीवन की बातें याद कर वह अब तक आशकित ही थी। आज अभयपद को अच्छी तरह देखकर और बेटी की बाते सुनकर उसकी आँखे सुख से सजल हो उठी। निश्चिन्त भी हुई वह। आदमी के हाथ पडी है उसकी बेटी, जानवर के पजे मे नही। अब उसकी बेटी को जितना भी दुःख हो—उसे कोई क्षोभ नही होगा।

पहले दिन ही उन लोगो के जाते वक्त हेम उन्हे कुछ दूर छोडने गया था।

मल्लिक बगान पारकर चटखण्डी के मकान से पक्की सडक पकडा देने के बाद हेम जब वापस ग्राया तब उसके हाथ मे चमचमाता एक रुपया था।

"यह क्या है रे, कहाँ मिला ?" श्यामा ने साश्चर्य पूछा।

हेम खुशी से चमकते चेहरे के साथ माँ के हाथ पर रुपया रखकर बोला—"जमाई बाबू (जीजाजी) ने दिया है, माँ। मै हरगिज नही लेता लेकिन वे नही माने। कहा, मिठाई खाना। 'महा' भी कितनी शरीर है। जानती हो माँ, मेरे कान मे बोली, 'देता है तो, ले ले न। फिर जिस दिन हम दोनो ग्राएँगे उस दिन खर्च नही होगा क्या ?'—बडी शर्म लगी मुझे यह सुनकर।"

शर्म की बात तो थी लेकिन सच्ची भी थी। पिछले दिनो की बाते याद कर श्यामा बेहद चिन्तित थी। 'महा' की शादी के बाद से उसका हाथ खाली था। कही से कुछ मिलेगा इसकी भी सभावना नही थी। नरेन्द्र ग्रभी गया है, बहुत जल्द लौटा तो दो महीने के बाद। भरोसा केवल नारियल के पत्तो पर है। पर वह काम भी तो इस शादी के झझटों मे इधर कई दिनो से हुग्रा नही। ग्रब बहुत परिश्रम करने पर भी चार-पाँच ग्राने मिलेगे, बस। फिर क्या होगा ? इस फिक्र से जब उसके कलेजे का खून सूख रहा था ठीक इसी समय एक ग्रयाचित वरदान-सा यह रुपया मिला। उसने मन-ही-मन ग्राशीर्वाद दिया, "मेरा जमाई चिरजीवी हो। महाश्वेता सुखी हो। माँ चामुण्डा इतने दिनो बाद तुमने नजर डाली है हम पर।" चामुण्डा को नमस्कार करते-करते मगला की याद हो ग्राई उसे। खुशकिस्मती थी कि वर की उम्र की बात पर ज्यादा ग्रानाकानी नही की। ग्रौर मगला से तो वह उऋण ही नही हो सकेगी।

## 2

ससुराल की घोर दरिद्रता पर शादी के ग्राठ दिनो तक महाश्वेता की नजर नही पडी। मध्य वर्ग बगाली घर मे विवाह ग्रादि सामाजिक कार्य चाहे कर्ज लेकर किए जाएँ या भीख माँगकर, एक प्रकार का ग्रनावश्यक ग्राडम्बर ग्रवश्य किया जाता है, जिससे कि घरवालो की वास्तविक स्थिति का पता लगाना कठिन है। समृद्ध घरो मे तो कही-कही कजूसी भी देखी जाती है, पर जहाँ जितना ग्रभाव रहता है वहाँ उतनी ही कृत्रिमता ग्रा ही जाती है।

ग्रभयपद के घर में भी यही प्रथा पाली गई। दहेज के इक्यावन रुपए के ग्रलावा ग्रभयपद ने ग्रपने बहुत कष्ट से जमा किए हुए साठ रुपए भी ला दिए थे। ऊपर से कुछ कर्ज भी लेना पडा था उसे। ग्रब सामने था घर का खर्च, ग्रौर कर्जे की चुकती—सब कुछ उसी उन्नीस रुपए छः ग्राने की तनख्वाह से। नवागता पत्नी के सामने कुछ भी गोपनीय रखना संभव नही था। महाश्वेता जब दो महीने बाद फिर ससुराल ग्राई तब सारा बाहरी ग्राडम्बर हट गया था—जैसे माँस ग्रौर चमडा

नष्ट हो जाने पर सिर्फ ढाँचा ही बाकी बचा हो। अभयपद जिस दफ्तर मे काम करता था वह हवडा के पुल के पास था कही। कारखाने की नौकरी—आठ बजे पहुंचना पडता। इसलिए वह छ बजे ही खाना खाकर रवाना हो जाता था। पूरे अढाई कोस पैदल चलकर वडे रास्ते पर पहुँचने पर वह भी अगर सवा सात बजे के अन्दर पहुँच पाता तो कुछ सहूलियत हो जाती यानी दफ्तर के साहब लोगो की जो गाडियाँ उसी रास्ते से जाती थी उनमे से किसी-किसी को दया आ जाती और उसे कोचमैन के वगल मे बैठा लेते। नही तो सारा रास्ता उमे पैदल ही तय करना पड़ता। लौटते समय भी यही हाल होता।

जो हो रात की बासी दाल-तरकारी के साथ ताजा-भात मिलाकर खा लेता अभयपद। जिस दिन बासी दाल-तरकारी नही रहती उस दिन दाल-भात मिलाकर खिचडी बन जाती। इससे अधिक क्षीरोदा कुछ नही कर पाती। उठती तो वह रोज़ चार ही बजे रात को थी लेकिन पिछला काम निपटा कर स्नान करते और भात चढाते-चढाते पाँच वज जाते। जिस दिन किसी कारणवश बासी दाल-तरकारी नही बचती उस दिन ज़रा हाय-तोबा भी मचाती वे। "हाय रे हाय। ज़रा-सी उबली दाल के साथ भात कैसे खाएगा रे। घर मे तो कुछ भी नही है, इसीलिए कहती थी कम-से-कम दो-एक आलू ही लाकर रख दे। इस समय अगर एक आलू रहता तो कितनी सुविधा होती।"

कहना न होगा, अभयपद किसी दिन भी ऐसी बातो का कोई जवाब नही देता। खाने के विषय मे वह कभी किसी से कोई चर्चा भी नही करता। यहाँ तक कि दाल मे नमक न रहने पर भी कुछ नही बोलता, न माँगता। भूल से दुबारा नमक पड जाने पर भी कोई शिकायत नही करता। रात का खाना भी वही सबसे पहले खाता—लेकिन उसे खिलाकर क्षीरोदा को सन्तोष नही होता। पहले वह बोलती —"तू कैसा है रे, उसी समय कहता तो नमक डालकर फिर से जरा उबाल देती।" लेकिन इससे अभयपद की शान्ति या मौन नष्ट नही होता, वहुत ज्यादा ज़ोर देने पर कहता—"क्या जरूरत है। जिसने राँधा है वह भी तो खाएगी। सब समझ जाएगी।"

"तो क्या तुझे खाने मे फीका स्वाद नही लगता ? तू कैसे खा लेता है ?"

"खा लेता हूँ इसी से समझ लो कि असुविधा नही होती।" इससे अधिक वह कभी नही बोलता।

सुबह भात केवल अभयपद के लायक बनता—छोटी-सी हाँडी मे पत्तों की आँच से। उसके जाते ही क्षीरोदा मुहल्ले मे घूमने निकल पडती। किसके घर के पिछवाडे 'डूमर' फला है, कहाँ थोड़े डाँटा मिलेगे, किसी के घर से थोडे से 'आमडे', कही से एक टुकडा केले की छाल उतरा गूदा इन सब वस्तुओ के साथ वह आठ बजे के करीब घर लौटती। उसके बाद उसी हाँडी मे दाल चढाई जाती। महाश्वेता जब

आई थी तो उसने देखा कि हमेशा एक ही किस्म की दाल बनती है—अरहर की। वह एक दिन सास से पूछ बैठी थी, "माँ, रोज-रोज अरहर की दाल ही क्यो बनती है ?" सास ने जवाब दिया था, "इतना भी नही जानती महा, अरहर की दाल बहुत पौष्टिक होती है।—साहब लोग भी रोज खाते है।" लेकिन बाद मे महाश्वेता ने सुना था कि यह बात नही है। उसकी हमउम्र ननद ने एक दिन दिलजोई करते वक्त कहा था, "हाँ, पौष्टिक ना खाक! असल बात तो यह कि यही खूब सस्ती मिलती है। दादा (भैया) कहाँ से तो दाल लाते है चार पैसे सेर। बस वही चूर-चूर दाल, फिर भी पौष्टिक। कुण्डू के घर अरहर की दाल आती है—ऐसे बडे-बडे दाने। तो भी उसके यहाँ केवल दरबान लोग ही अरहर की दाल खाते है।"

वही एक ही दाल और एक तरकारी, सुबह-शाम एक ही इन्तजाम। किसी दिन आमडा या इमली भी कही से मिलने पर ज्यादा से ज्यादा यही होता कि खटाई देकर दाल उबाली जाती। अगर चटनी बनती तो उसमे मीठा नही पडता। माँ कहती उससे तबीयत खराब होती है।

केवल दाल-तरकारी से ही रोज भात खाने मे महाश्वेता को कोई आपत्ति नही थी। बशर्ते कि ये भी ठीक तरह से रोज मिलते। रोज ही वह देखती कि पोई साग या कोहडे के डठल दोनो ही सब्जियाँ उनके आँगन मे ही काफी हुई थी, पास-पडोस से लाए डूमर केले के गाछ का गूदा या कच्चे केले—जिस दिन जो भी तरकारी बन पाती—अधिकतर पुरुषो और छोटी ननद की थाल मे डाल दी जाती और जो-कुछ बाकी बचा रहता कुछ डठल वगैरह वही सास पतोहू को नसीब होते। जब सहजन की फलियाँ बनती तब तो महाश्वेता जैसे त्योहार मनाती, लेकिन ऐसे अवसर बहुत कम ही आते। पानी की तरह पतली दाल और पोई के डठलो के साथ भात खाते वक्त किसी-किसी दिन तो महाश्वेता की आँखो मे आँसू भर आते। अलबत्ता सास भी वही खाती थी, लेकिन इससे उसे कोई खास सान्त्वना नही मिलती।

एक दिन उसने पूछा था, "हाँ, माँ, हमारे यहाँ बाजार से दूसरी सब्ज़ियाँ क्यो नही आती ?"

अचानक क्षीरोदा का मुँह शर्म से लाल हो उठा. "यही तो होता है यहाँ, बहू। दस-पाँच पास-पडोसी स्नेह से कुछ-न-कुछ दे दिया करते है इसी से काम चल जाता है—इसीलिए बेटा अभयपद को भी कुछ फिक्र नही रहती।"

सबसे बडी मुश्किल यह थी कि महाश्वेता पति को कभी अपने पास नही पाती। इस बार ससुराल आने पर उसने देखा कि सोने की तो व्यवस्था ही दूसरी है, बडे कमरे मे उसका छोटा देवर, छोटी ननद, सास और वह सोती है—फूटे घर मे बाकी दोनो भाई। इससे भी उसको कुछ दु:ख ही आ था, ससुराल के जितने भी आदमी थे उनमे उसका पति ही सबसे भला था और 'अपने मन की बात तो निस्संकोच

उसी से कहूँगी,' यह बात महाश्वेता न जाने खुद ही कैसे समझ गई थी। पर उपाय ही क्या था ? अपने मुँह से वह तो कह नही सकती थी कि वह दूल्हे के पास ही सोना चाहती है। इसके अलावा सास ने भी साफ-साफ मना कर ही दिया था कि "अभी तुम बिलकुल बच्ची हो बहू, कुछ दिन मेरे साथ सोओ—नही तो शायद डर-वर जाओगी—"

इस बात से महाश्वेता को हँसी आ गई थी। पहले जब आठ दिनो तक रही तब डर नही लगा था—और अब उसे पुरानी जगह मे डर लगेगा ?

इसी बीच, एक दिन रविवार था शायद। मौके से अभयपद को एकान्त मे पाकर कह दिया उसने, "परवल लाओ न, किसी दिन। परवल खाने की बडी इच्छा हो रही है। लेकिन ढेर-से लाना, नही तो माँ और मेरे नसीब मे न आएँगे।"

अभयपद ने कहा था, "लाऊँगा। लेकिन तुम माँ से बाजार की चर्चा फिर कभी नही करना। हम लोग गरीब है—हाट-बाजार से सौदा खरीदकर लाने से हमारा काम कैसे चलेगा ? किसी तरह माँग-जाँच कर घर का खर्च चल जाए, यही बहुत है। फिजूल माँ शर्मिन्दा होनी है।"

झेप गई थी महाश्वेता इसी उम्र मे। "फिर कभी नही कहूँगी।" इतना कह कर तेजी से भाग गई वह।

दूसरे ही दिन अभयपद गमछे मे गठरी बाँधे ढेर से परवल लिए घर आया। माँ के पास गठरी रखकर बोला—"आज एक जरूरी काम से पोस्ता की तरफ गया था—एक पैसे मे इतने सारे परवल मिल गए सो ले आया।"

लेकिन उन परवलो को देखकर महाश्वेता हँसे या रोए यह उसकी समझ मे नही आया। जितने सब पीले-पीले पके हुए परवल कितने तो सड चुके थे। किसी-किसी के तो दो-दो टुकडे हो गए थे।

जितने परवल और एक रात भी नही टिक सकते थे। उन्ही को उस रात को पकाया गया। वे ही उस रात का एकमात्र सहारा थे। सास रात तो भात नही मूडी (चिवें, लय्या) खाती थी—उन्होने भी पकाए हुए परवल के साथ मूडी खाई। खुशी-खुशी बोली—"पके परवल भी कितने स्वादिष्ट लगते है, देखा बहू ? मैं पीले परवलो को तल कर खाना बहुत पसन्द करती हूँ।"

महाश्वेता को अच्छा नही लगा। वह नानी के घर परवल की भुजिया या रसदार आलू परवल का दम खाती थी। यह क्या खाक है। वह मन-ही-मन बार-बार कहने लगी, 'यही आखिरी है। उस दरिद्र से फिर कभी कुछ लाने को नही कहूँगी। अच्छा सबक मिल गया।'

एक बार खाना खाते-खाते उसने सास से पूछा भी, "अच्छा माँ, आप इतनी पतली दाल क्यो बनाती हैं ? मेरी नानी तो अरहर की या चने की दाल खूब गाढी बनाती है, ठडी हो जाने पर उस पर छाली पडकर फट जाती है। वही दाल तो अच्छी

लगती है।" इस बात से क्षीरोदा इतनी हँसी कि महाश्वेता बहुत शर्मा गई। वह सोच रही थी न जाने क्या कहते, क्या कह गई। दूल्हा उसे एकान्त मे कही फिर न फटकारे।

क्षीरोदा ने कहा था, "अरी महा, अरहर की दाल और खूब गाढी? लोग सुनेंगे तो हँसेंगे। और किसी के सामने ऐसी बात न बोलना।"

अरहर की गाढी दाल खाना ऐसी कौन सी शर्म की बात है—यह नही समझ सकी महाश्वेता। खाने मे तो वही अच्छी लगती है। फिर उसने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि खाने-पीने की बात वह फिर कभी नही उठाएगी। बाप के घर तो उसे दोनो शाम भात जुटना भी सपना था। यहाँ पेट-भर भात खाने को तो मिल जाता है, यही क्या कम है।

उम्र कम रहने पर भी अभाव और दरिद्रता के कारण बहुत ज्यादा समझदार हो गई थी महाश्वेता। वह अपने को बुजुर्ग मानने लगी थी।

लेकिन उसे एक बात पर रोना आता था। उसके देवर और ननद रोज पहले खाना खाते—जिसकी थाली मे जो कुछ भी पडा रह जाता, सास उसे बटोरकर एक कटोरे मे रख छोडती और उसे खाने को देती। दाल-तरकारी से सना हुआ भात छाँट-छाँटकर वह लोग खाते, खासकर छोटे देवर दुर्गापद की तो नाक ही सदा बहती रहती, उसके खाने का दृश्य याद आते ही महाश्वेता का जी मिचलाने लगता। रोज़ ही कुछ-न-कुछ भात वह थाली मे छोड देता लेकिन तरकारी थोडी भी नही, कभी नही। इस मामले मे बडा चतुर लडका था वह। सब कुछ चाट-पोछकर खा लेता था। खाली दाल से सना भात!—मैया री, सात थालियो की जूठन वह भी बटोरा हुआ ठण्डा सना भात!—किसी-किसी दिन अकेले मे सिर पीट-पीटकर रोती महाश्वेता जोरो से। किसी-किसी दिन गुस्से मे आकर अँगुली चटकाती हुई गालियाँ देती—"मरजा, निर्वंशी हो जा। इतने लोगो को हैज़ा होता है, तुझे क्यो नही होता?"

सरकार घर के तालाब मे जब पोद्दार की स्त्री नहाने आती थी तो इसी तरह गालियाँ देती थी अपने देवरो को। महाश्वेता को ये सब ज्यो की त्यो याद थी। किसी-किसी दिन जब काम के वक्त भी दुर्गापद रोना शुरू कर देता तो क्षीरोदा कहती—"ज़रा उसे बहलाना बहू— न, न, गोद मे न उठाना, यो ही हाथ पकडकर ले जा, बहकादे बस किसी तरह।"

महाश्वेता को तब मौका मिल जाता। ज़ोर से चिकोटी काट लेती वह। लडका और भी जोर से चिल्ला-चिल्लाकर रोता। तब धीरे से दाँत पीसकर महाश्वेता कहती, "राक्षस कही का? मरता क्यो नही, तू मरे तो को मुझे चैन मिले।" फिर सास को पुकारकर कहती, "माँ, देखिए न जरा, किसी तरह भी चुप नही होता।"

## 3

महा की ससुराल मे राधा दामोदर की प्रतिमा है—यह बात वह शादी के वक्त अच्छी तरह नही समझ पाई थी । एक देवालय मे ले जाकर माथा टिकवाया गया था, बस इतना ही। छोटे से अँधेरे कमरे मे नीचे स्थान पर दो नग-धडग मूर्तियाँ —कृष्णजी की मूर्ति पत्थर की, राधाजी पीतल की अथवा अष्टधातु की। सामने एक सिहासन पर एक शालिग्राम और पत्थर का एक शिवलिंग । नमी के कारण सील भरी कोठरी मे अनगिनत तेलचट्टे इधर-उधर घूमते थे, एक तरह की बू भी आती थी। सक्षेप मे यह कि महाश्वेता की उन मूर्तियो मे थोडी भी भक्ति नही थी। नानी के साथ जब वह गगा-स्नान के लिए गई थी तब आनदमयी तल्ला मे जो मूर्ति देखी थी उसने बाग-बाजार मे मदनमोहनजी को देखा था—एक बार दक्षिणेश्वर भी गई थी । सभी कितनी सुन्दर मर्तियाँ हैं वे, कैसी चमक-दमक रहती है वहाँ, कितने आभूषण और फूल-चन्दन की सुगन्ध है। यहाँ तक कि मायके मे सरकारो का देवालय है, वह भी तो अलग है, बिलकुल मन्दिर की तरह ऊँचा है। और यह कितना खराब है। लेकिन जो कुछ भी हो, ये मूर्तियाँ इनकी निजी है यह वह तब नही समझी । करीब आठ महीने बाद जब उसने सुना कि अगले महीने से मूर्तियो की पूजा की बारी अब इन्ही लोगो की है ।

"इसके क्या माने, माँ ?" पूछा महाश्वेता ने।

क्षीरोदा ने बतलाया, "तुम्हारे ससुर के दो और चचेरे भाई हैं—ये मूर्तियाँ मेरे बडे ससुर की हैं—सो इस वश के सभी लोगो को बारी-बारी से पूजा करनी पडती है, एक-एक साल । हम लोग एक वर्ष पूजा करेगे उसके बाद मेरे देवर की बारी आएगी समझी, बहू।"

"तो सभी मिलकर एक साथ ही क्यो नहीं करते ?"

"वह नही होने का, महा। तब तो कोई भी नही करता—सभी परे हट जाते, बहानेबाज़ी करते।"

यह कैसी बात।—महा ठीक-ठीक नही समझ सकी। भगवान की पूजा करना तो सौभाग्य की बात है। मौसी के मुँह से कितनी ही बार सुना है उसने, इसमे कही बहानेबाजी भी करता है कोई !

फिर भी इस बात से उसे प्रसन्नता ही हुई । बच्चो का मन—भगवान की मूर्ति-पूजा करने मे उन्हे गुडियो के खेल का मजा आता है। उसने आग्रह से पूछा—"भगवान यहाँ कब आएँगे माँ ?"

"आएँगे तो नही—उसी जगह रहेगे । हम लोग वही जाकर पूजा करेगे । उन लोगों की ओर का दरवाज़ा बन्द होकर हमारी ओर का दरवाज़ा खुल जाएगा। बस इतना ही। देखा नही—उन लोगों के तीन दरवाज़े हैं ?"

लेकिन उसने तो दिन गिनना शुरू किया । भगवान् की पूजा की बारी आने पर वह उस घर को झाड-पोछकर साफ करेगी । तेलचट्टो को पकड-पकडकर मारेगी—दोनो वक्त धूपबत्ती या धूनी जलाकर वहाँ की बदबू मिटा लेगी । और भी क्या-क्या ।

एक दिन अभयपद के आफिस जाते वक्त पिछले छोटे दरवाजे से निकलकर वह बगीचे मे आम के एक पुराने पेड की ओट मे खडी हो गई । अभयपद को इसका आभास नही था । वह तेज़ी से आगे बढता जा रहा था कि महाश्वेता ने पुकारा, "सुनो तो ।"

अभय अवाक् । पास आकर जरा मुस्कराकर बोला, "क्या बात है, जल्दी बोलो—देर हो रही है । कुछ फरमाइश है शायद । क्या चाहिए इस बार ?"

महाश्वेता बोल उठी, "अगले महीने से तो भगवान् की पूजा की बारी हमारी होगी—लकडी का एक ऊँचा-सा सिहासन खरीद लाओ—समझे ? भगवान को उतने नीचे रखना बडा खराब लगता है मुझे ।"

"हूँ, फरमाइश तो खूब लम्बी-चौडी है, देखता हूँ । महीने मे एक भी रुपया तो बच नही पाता । आज दो महीने से ओवर टाइम भी बन्द है । कहाँ से खरीदूंगा ? जानती हो—अभी तक शादी का कर्ज नही उतरा ?"

महाश्वेता का चेहरा उदास हो गया । सोचने लगी क्यो वह मरने आती है—पति से फरमाइश करने । हर बार उसे ऐसी ही बात सुननी पडती है—ऐसा अपमान । छि, उसने फिर प्रतिज्ञा की—फिर कभी कुछ नही कहेगी ।

लेकिन अगले ही रविवार को देखा कि बगीचे के एक किनारे इकट्ठे किए हुए काठ के टुकडो को लेकर अभयपद सुबह से ही बैठा है । औजार उसके पास ही रहते थे शायद—कम-से-कम महाश्वेता ने तो यही समझा, क्योकि कही से मॉगकर लाया हो ऐसा नही जान पडा । खैर, जो भी हो, शाम होते न होते उसने देखा कि एक अच्छा, ऊँचा-सा सिहासन भी तैयार है । महाश्वेता ने मन-ही-मन कहा—वाह रे, आदमी कारीगर तो बुरा नही है !

पहले-पहल वह बडी खुश हुई थी यह सोचकर कि उसके एक छोटे-से शौक का भी उसने ख्याल रखा और उसे पूरा करने के लिए उतनी मेहनत की, लेकिन उसके बाद ही डर से उसका दिल धडकने लगा सोचने लगी । कही मॉ से न कह दे—'तुम्हारी बहू ने फरमाइश की थी इसीलिए बनाना पडा ।' माँ भी क्या सोचेगी कि शायद बहू उनके बेटे से इसी तरह लुक-छिपकर बाते किया करती है और अभी से फरमाइश करना शुरू कर दिया है । "हे माँ काली, जैसे भी हो वह यह बात मॉ से नही कहे ।"

लेकिन बड़ा अच्छा था अभय । क्षीरोदा ने जब पूछा—"हाँ रे, दिन-भर यह क्या कर रहा है ?" तब उसने बड़े साधारण ढंग से जवाब दिया—"पूर्णिमा से

तो भगवान् की पूजा करनी है—इसलिए सोचा एक अच्छा ऊँचा-सा सिंहासन बना डालूँ। देखूँ, कहाँ तक क्या होता है।"

साँझ होने पर जब काम खतम हुआ तो अभयपद ने माँ को बुलाकर दिखलाया "देखो तो माँ, कैसा हुआ ?"

माँ ज़रा अनमनी होकर बोली—"हुआ तो अच्छा ही, लेकिन भगवान् का सिंहासन पुरानी लकडी से बनाया इसमे दोष तो नही होगा ?"

"वाह तुम भी कैसी हो। मैने छील-छाँट जो दिया है, फिर चीज तो नई बनी। लकडी मे क्या दोष है ?"

× × ×

लेकिन जब भगवान् ने सचमुच ही उन लोगो की तरफ का दरवाज़ा खोला तब महाश्वेता की समझ मे आई कि भगवान् की पूजा और चाहे जो कुछ भी हो गुडियो का खेल नही है। हजारो तरह के काम और झझट। पूजा का कोई विशेष आयोजन तो नही है लेकिन विधान अवश्य है। मिट्टी की बासी हांडी का भात नही चलेगा। रोज मँजी हुई पीतल की हाँडी मे भात बनाओ। भात के साथ अन्य सामग्री कुछ रहे या न रहे, ब्राह्मण के घर भगवान को कम-से-कम अन्न का भोग तो लगाना ही होगा। इसके अलावा और क्या भोग लगेगा ? सुबह दो बताशे के सिवा कुछ भी नही रहता—मुहल्ले वालो मे से कभी किसी ने खीरा दे दिया तो किसी ने अमरूद या फिर किसी की मनौती रहती तो भगवान् को नैवेद्य भी नसीब हो जाता। किसी त्यौहार के दिन मुहल्ले से पूजा के लिए ढेर-सा नैवेद्य आया करता लेकिन प्रसाद भी काफी बाँटना पडता जिससे लाभ मे सिर्फ अत्यधिक परिश्रम ही पल्ले पडता। भोग भी लगता तो वही दाल-भात और तरकारी, किसी दिन थोड़ी-सी खीर की भी व्यवस्था नही हो पाती।

रात की आरती के लिए एक पाव दूध लिया जाता—उसे सास पी लेती। एक दिन महाश्वेता ने कहा था—"सुना है, भगवान को खीर का भोग लगाना चाहिए।" इस पर सास ने जवाब दिया था—"हमारे यहाँ वैसी बात नही है—हमारे यहाँ आत्मवत् पूजा होती है। हम लोग खुद जो खाते हैं वही भगवान को देते है।"

महाश्वेता को रात की आरती की बात याद आई—वे लोग तो रोज़ दूध नही पीते, भात ही खाते है फिर भगवान को दूध क्यो दिया जाता है ?—लेकिन कहने का साहस नही हुआ उसे।

भगवान् की पूजा आने के साथ-साथ और एक वस्तु आई गाय। अभयपद पता नही कहाँ से एक बडी-सी बछिया ले आया जो कुछ और बडी होकर डेढ साल के अन्दर ही दूध देने लगेगी। दूध देगी या नही यह तो महाश्वेता को पता नही लेकिन इससे उसका काम जरूर बढ गया। बिचाली काटना, सानी लगाना, पानी

पिलाना, गोबर उठाना ये सारे काम उसी को करने पडते। सास तो देवालय को लेकर ही व्यस्त रहती, उनको साँस लेने की भी फुर्सत नही, यह महाश्वेता अपनी आँखो से देखती। इसलिए उनको तो दोष नही दिया जा सकता। गुस्सा आता उसे अपनी ननद पर। उम्र मे उसी की बराबर है जैसा कि सास कहती है। 'महा' उसे अधिक उम्र की समझती थी फिर भी उसने कुट्टी मे कभी हाथ भी नही लगाया। सास भी उसे कुछ नही कहती—दिन भर गुडियो से खेलती फिरती। उस पर भी भाभी की शिकायत करने को मौका मिलता तो कभी न चूकती। जरा भी कुछ देखा कि गला फाडकर चिल्ला पडती, "माँ—देखा न भाभी—।" उसको देखकर महाश्वेता की हड्डियाँ जलने लगती। सास से कहने पर सुनती—"बहू, इसके नाज़-नखरे तो जरा सहने ही पडेगे। ननद जो है—इसके अलावा उसे अक्ल ही कितनी है। बुरा न मानना, पराये घर जाने पर खुद-ब-खुद सीधी हो जायगी।"

× × ×

अगहन के महीने मे और एक काम बढा। उनकी जमीन साझे की थी। हर साल इन्ही दिनो उनके हिस्से का धान आ जाता। जिस साल कम आता उस साल एक ही बार मे चावल बनवा लिए जाते। कोई तीन महीने लायक चावल होते। इस बार अभयपद ने दूसरे हिस्से का धान भी सस्ते भाव मे खरीद लिया। इसके अलावा धान इस बार हुआ भी ज्यादा था। इसलिए बोरे मे भर-भरकर बडे कमरे मे ही रखवा दिया गया। बीच-बीच मे धान निकालकर उबालना पडता, फैलाकर सुखाना पडता है उसके बाद। बडे ससुर के घर ढेकी मे कुटवाने के लिए ले जाना पडता। फिर उसे झाड-फटककर गुण्डी, भूसा आदि अलग करने पडते। महा को ही सबसे ज्यादा मेहनत करनी पड़ती।

उसे इतनी मेहनत की आदत नही थी, शरीर भी इस लायक नहीं था। बीच-बीच मे महाश्वेता की आँखो मे आँसू आ जाते। खाना खाकर उठते ही गाय का काम निबटाती, फिर धान सुखाकर रखने के बाद सास के साथ तालाब के घाट पर बर्तन माँजने बैठती। उस समय आँसू रोके नही रुकते। अनजाने ही अपने आप टप-टप कर पानी मे गिरने लगते। उस समय वह सास की ओर से अपना मुँह फेरे रहती, कारण उन आँसुओ का कोई प्रतिकार तो सभव ही नही था, मुफ्त मे तरह-तरह के सवालो के जवाब देने पडते। ऐसा भी हो सकता था कि सास अपने लडके से कह देती। इसलिए वह जी जान से अपने कष्टो को चुपचाप ही सह लेती।

यहाँ तक कि अपनी माँ को भी कभी नही बताती। जब वह बीच-बीच मे मायके जाकर पन्द्रह-बीस दिनो तक रहती थी, तब समझती थी कि जेल से छूटकर आई है। माँ को उसे बुलाने मे संकोच होता—लडकी के आने पर जमाई को भी लाना पडता था। इसमें काफी खर्च होता था। इसके अलावे वह लडकी को ठीक तरह से खिला-पिला भी नही पाती थी। और जो हो, दोनो वक्त भर पेट

भात तो खाने को मिलता है ससुराल मे । लेकिन महा को उतनी समझ कहाँ, वह तो माँ के गले से लिपटकर कहती—"जल्दी-जल्दी बुला लिया करो माँ, तुम्हारे पास भूखी रहकर भी मुझे शान्ति मिलती है ।"

पहले श्यामा सोचती कि यह केवल स्नेहवश ऐसा कहती है। लेकिन उसके बाद बातचीत के माध्यम से एक-एक करके सभी बाते उसने अपनी सरल हृदया लडकी से उगलवा ली । सुनकर बडा ही दुख होता लेकिन फिर यह सोचकर मन को समझा लेती कि जब गरीब के घर पैदा हुई है तो मेहनत तो करनी ही पडेगी । जमाई अच्छा मिला है इतना ही क्या कम है।

एक साल बीतने पर महाश्वेता की किस्मत जरा बदली। सोने की व्यवस्था मे परिवर्तन हुआ । अभयपद को कही से कुछ रुपये मिल गये तो उसने उस छोटे से कमरे की मरम्मत करवा डाली—उसके बाद से महाश्वेता को पति के कमरे मे ही सोने का हुक्म हो गया ।

वह तो जैसे जी गई। मन की दो बाते तो कह पाती थी अभयपद से । चाहे वह जवाब दे या न दे । अधिकतर बातो का वह कोई जवाब नही देता था । आधी रात मे सियार के 'हुआ-हुआ' करने पर जब उसकी नीद खुल जाती और डर लगने लगता तो उससे लिपटकर उसकी छाती मे मुँह तो छिपाया जा सकता था यही क्या कम लाभ है ? 'आदमी सचमुच भला है ।' ज्यो ज्यो दिन बीतते त्यो-त्यो वही समझती जाती महाश्वेता । दूर कही से मुर्दा ले जाने वालो की चीख—'हरिबोल' 'हरिबोल' की आवाज-आते ही वह खुद ही पत्नी को खीचकर छाती से सटा लेता और पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछता, "डर तो नही लगता ?"

# पंचदश परिच्छेद

## 1

लड़की की शादी के बाद जो एक वर्ष का समय बीता वह श्यामा के लिए एक युग के समान था। हर आदमी को बारह वर्षो मे इतना दुख इतनी तकलीफ नही झेलनी पडती—इतनी दुर्भावना और दुश्चिन्ता नही भुगतनी पडती। एक-एक दिन ऐसा आता कि लगता जैसे कटेगा ही नही। कुछ आमदनी का रास्ता हुआ सही । हेम भी स्कूल मे पढने लगा, फ्री है फिर भी कुछ तो खर्च पडता ही है । जब तब यजमान के यहाँ भी नही जा पाता । फिर लडकी-जमाई भी तो आते ही हैं, जमाई की खातिर के लिए कुछ-न-कुछ चीजे जुटानी पडती है। यह भी तो एक प्रकार की साधना ही है ।

एक दिन की बात है—उस समय शादी को कुछ ही महीने हुए थे—किसी के द्वारा हेम को तेज बुखार आने की खबर पाकर शनिवार को अभय आ पहुँचा। घर मे कुछ भी नही था। सरकार घर के प्राय सभी लोग मगला के मायके मे होने वाले किसी उत्सव मे शामिल होने गए थे। रुपये-पैसे तो हाथ मे थोडे भी नही रहते थे। फिर बाजार से चीजे भी कौन लाता। इस तरह की शर्मिन्दगी कभी नही हुई थी श्यामा को। ऐन्द्रिला बगीचे से नारियल की टहनियाँ उठा लाती थी लेकिन उसे बाजार तो नही भेजा जा सकता था। बक्से-पिटारो से ढूँढ-ढाँढ करने पर सिर्फ दस पैसे निकले, लेकिन बाजार कौन जाए ? जमाई के सामने बाज़ार जाना ? छि यदि देख ले तो ?

ऊँच-नीच सोचती रही श्यामा। उसकी भी तबीयत ठीक नही थी। हाल ही मे उसके एक लडकी हुई थी, अभी तीन महीने भी नही हुए थे। प्रसव के बाद से तरह-तरह के रोगो ने उसे जीर्ण-शीर्ण कर रखा था—भूत की तरह काम-काज मे जुट पडने की ताकत तो थी ही नही—दिमाग भी कमजोर पड गया था।

उन दस पैसो को हाथ मे लेकर श्यामा किकर्तव्यविमूढ-सी रसोईघर के बरामदे मे बैठी रही। सोने के कमरे मे अभय हेम से बीमारी के बारे मे पूछ-ताछ कर रहा था।

ऐन्द्रिला न जाने अपने आप ही क्या-क्या बके जा रही थी।

कही किसी आम की डाली पर बैठी बासन्ती चिडिया कर्र-कर्र कर रही थी, शायद इन्ही आवाजो की ओर कान लगाये थी वह।

अकस्मात् एक गर्म हवा के झोके से उसकी आविष्टता भग हो गई। हड-वडाकर उठ खडी हुई वह। रास्ता निकल आया। ठीक ही तो है, दाले तो है ही। सीधे मे मिले एक पाव घी और मैदा भी है।

उसने-दो तीन तरह की दाल भिगो दी, चूल्हा जलाकर चने की दाल चढा दी। थोडी-सी सूजी पडी थी उसका हलुवा बना दिया, जमाई के जलपान के लिए। हठात् उत्साह का ज्वार-सा उभडने लगा उसके शरीर और मन मे। अपने दैन्य को अकेले से छिपा लेगी, यही था उसका सकल्प। तीन घटे बाद जब जमाई के लिए खाना परोसा तब वह स्वय ही चकित हो गई। दाल की बड़ियाँ, पराठे, रसबडे, खीर। पहले तो खीर के लिए मुश्किल मे पड गई, क्योकि चीनी, बताशे, मिश्री जो कुछ भी घर मे था झाड-पोछकर हलुवा और रस मे खर्च हो गया और मिठाई भी मँगा नही पाई थी, उस अभाव को सिर्फ रसबडे से हटाना उसे अच्छा नही लग रहा था, बडे भी तो तेल मे तले थे। चाहा तो था कि·· ठीक तरह से घी मे तल कर रसबडे बनाए पर उसके लिए घी कहाँ था। इसीलिए तो लूची (पूरी) न बनाकर पराठे बनाने पडे। फिर दूध भी तो था ही। काफी देर सोचने के बाद जैसे अँधेरे मे रास्ता मिला उसे। कुछ दिन पहले ही कुडु बाबुओं के यहाँ

से 'वन्धानी' ग्राई थी। उसमे के कुछ सदेश भी पडे थे हाँडी मे। एक तो चीनी से भरे सदेश फिर इतने दिन के वाद भी थोडी गध भी ग्राने लगी थी—ऐसे सदेश भला जमाई को कैसे खिलाये जाते। इसी समय ध्यान ग्राया उसे कि इन्हे चीनी के काम मे तो लाया ही जा सकता है। बेकार नप्ट करने से क्या लाभ? गध? वर्षाकाल मे तो चीनी मे भी थोडी गध हो ही जाती है। फिर यदि ढूँढ-ढाँढ कर कही से एक छोटी इलायची मिल जाए तो यह बास भी चली जाएगी।

खूब तृप्ति के साथ खाया ग्रभय ने। किसी भी दिन कुछ भी नही बोलता था लेकिन ग्राज तृप्ति की एक उच्छ्वास लेकर बोल ही पडा, "वहुत दिनो से इतना ग्रच्छा खाना नही खाया। खाना क्या था वस ग्रमृत ही था।" ग्रभय श्यामा को माँ कहकर नि सकोच नही पुकार पाता था। शायद उसे करीव-करीब हमउम्र (समवयसी) सास को माँ कहने मे शर्म ग्राती थी।

उस दिन की घटना से श्यामा को जरा गौरव-सा महसूस हो रहा था। काफी दिनो तक उस घटना को याद कर-करके ग्रानन्द मे छाती फूल उठती थी उसकी। मगला ने भी मैके से ग्राकर जब सब सुना तो कुछ देर गाल पर हाथ रखकर बैठी रही, मुँह से बात ही नही निकल पाई। काफी देर बाद बोली, "तुम्हारी बुद्धि तो बडी तेज है। मैं तो सात बरस सोचने पर भी इतनी बाते दिमाग से नही निकाल पाती। यह तो बहुत ही ग्रच्छा खाना था ग्रौर क्या चाहिए।"

लेकिन केवल गर्व ही नही यह एक लज्जा की भी बात थी। कितनी ही तृप्ति से खाया हो, पर बुद्धिमान जमाई की ग्राँखो से ग्रसली बात छिप नही सकी। ऐन्द्रिला के हाथ मे एक रुपया तो दिया ही था, दूसरे दिन शाम को मुहल्ले के एक लडके से काफी सामान भी भिजवा दिया—साग-सब्जी, कच्चे केले, विना पैसे का ग्रनाज ग्रौर उसके साथ कुछ और मिश्री हेम के लिए।

श्यामा को बहुत शर्म ग्रा रही थी। जमाई के सामने सिर झुक गया था—जमाई की इस सहायता से। सहायता नही तो ग्रौर क्या थी? पर चीजे लेते समय श्यामा की ग्राँखो मे ग्रानन्दाश्रु ग्रा गए थे। जो इतना समझदार है उसकी छत्र-छाया मे लडकी सुखी ही रहेगी, उसके समान दुख नही पायेगी।

श्यामा ने यह भी लक्ष्य किया कि ग्रभय के ग्राने से उसके बच्चो के मुँह पर उल्लास छा जाता है। वह उन लोगो के हाथो मे रुपया या ग्रठन्नी दे जाता यही नही—उसके लिए जो विशेष खाना वनता उसका भी कुछ भाग मिलता उन्हे। केवल वही लोग क्यो—हेम ग्रस्वस्थ था उस दिन जमाई के खाने के बाद जो कुछ बचा वह ग्रकेली ऐन्द्रिला के लिए खाना ग्रसम्भव था इसी से क्या उसने स्वय नही खाया था वह। श्यामा जमाई की जूठन खाने से पहले काफी देर सोचती रही थी—लेकिन ग्रत मे लोभ ग्रौर ग्रावश्यकता की ही जीत हुई। घर मे कुछ भी न था, शरीर दुर्बल, हाल की प्रसूति के कारण ग्रसह्य क्षुधा-लोभ-सवरण करना कठिन था।

खाया था और खाकर खुशी ही हुई। उस बात की याद आते ही इतने दिन बाद भी लज्जा होती है—लेकिन उस दिन और उपाय भी क्या था।

श्यामा काफी दिनो से सोच रही थी कि कलकत्ता जाएगी, लेकिन पहले की तरह अब जाना सरल नही था, इसीलिए जाना नही हो सका। लेकिन उसका जाना जरूरी था—इस बार के प्रसव के बाद से उसका शरीर किसी भी तरह ठीक नही हो पा रहा था। कुछ दिन बैठकर खाने से शायद थोडी ताकत आती उसमे। किन्तु हेम का स्कूल, उसके लिए खाने की व्यवस्था, दो-दो सेवा-पूजा। फिर हेम को छोडकर वह कैसे जा सकती थी ? कौन उसे खाना देगा, कौन देखेगा ? यही सब सोचकर उसका जाना नही होता था—अपने थके शरीर को जैसे वह चाबुक मार-मारकर चला रही थी।

इसी बीच चिट्ठी आई। उमा ने लिखा था मॉ की तबीयत बहुत खराब है—डॉक्टर ने चेज के लिए कहा है। मॉ को भी राजी कर लिया है, लेकिन जाने से पहले माँ अपनी तीन बेटियो को एक साथ एक जगह देखना चाहती है—लौटेगी या नही इसका भी कुछ ठीक नही है। क्या श्यामा दो-चार दिन के लिए आ सकेगी ?

चिट्ठी पढकर श्यामा व्याकुल हो गई, स्वाभाविक भी था। मॉ केवल माँ ही तो नही है, आज भी उनका भरोसा है, आश्रय है। किसी बडी कठिनाई के समय मॉ के पास जाकर खडी हो सकती थी वह। मॉ के पास क्या है—कितना है यह उसे नही मालूम फिर भी मॉ काम चला ही लेती हैं किसी तरह। इसी विश्वास पर तो जीवन सघर्ष चला रही थी श्यामा। कही भरोसे की जगह कोई सहारा है, इसी अनुभूति ने तो शक्ति दी थी उसे। वही अवलम्बन क्या अन्त मे समाप्त हो जाएगा ? इतनी जल्दी ऐसे समय मे ? अभी तो हेम आदमी भी नही हुआ। अभी तो···

मतलबी जैसे विचार मालूम होने पर भी ये स्वाभाविक थे। कोई दु सवाद सुनते ही आदमी की पहली प्रतिक्रिया उसके स्वार्थ पर ही होती है। श्यामा को इसीलिए दोष नही दिया जा सकता।

जाना आवश्यक है—और वह भी अभी, इसी वक्त।

केवल मॉ को अन्तिम बार देखना ही है यही बात नही थी। उसका कहॉ क्या है, कितना उसके हेम को मिलना है—यही तो जानना आवश्यक है।

लेकिन जाना क्या सभव है ?

चिट्ठी हाथ मे लिए उदास मुँह से बैठी थी श्यामा, आँसुओ से भरी आँखे। इसी समय मुँह भरकर पान चबाती हुई मगला आई।

"क्या हुआ री ? ऐसी खोई-खोई-सी क्यो बैठी है ? ओ माँ, हाथ मे चिट्ठी है—कोई बुरी खबर है क्या ? माँ-बहिन अच्छी तो है ?"—अवरुद्ध कंठ से कुछ

शब्द बाहर ग्रा रहे थे।

श्यामा उत्तर देते रो ही पडी।

सब सुनकर मगला ने कहा, "अभी चली जा, हेम को छोड जा, हम लोग देखेगे। न होगा तो मै ही रात को यही रहा करूँगी। डर किस बात का है ?"

"लेकिन उसका खाना-पीना ?"

"अरे हाँ," कुछ देर को चुप हो गई मगला। फिर थोडी ही देर मे मुख उज्ज्वल हो गया, "वह भी किसी तरह हो जाएगा।···भात चढा दूँ तो किसी तरह उतार नही पाएगा क्या ?"

हेम पास ही बैठा था, उसने कहा, "इतना मैं कर लूंगा, दिखा देने से ही कर लूंगा।"

उत्साहित हो उठी मगला, "तुम लोगो का तो ग्रर्वा चावल का भात होता है, बिना मॉड निकाले खाने का भी अभ्यास है। इस तरह से पानी डालूंगी कि मॉड भी नही निकालना पडेगा ग्रौर मेरी जो दाल-तरकारी होगी दे जाऊँगी। रात को दो रोटी भी कर दूंगी। तू निश्चित होकर जा, मै तेरे लडके को देखूंगी, फिर वे तो मिसरानी रखने के लिए भी चेष्टा कर रहे है। मेरा तो जी ठीक नही रहता, पिटकी भी ठीक से खाना नही बना पाती। मिसरानी के मिलने पर ग्रौर क्या चिंता है ? हमारे यहाँ ही खायेगा हेम भी। मिलनी तो बहुत है मिसरानियाँ, लेकिन मैं जवान ग्रौरत को नही रखूंगी—यह मेरा निश्चय है, चाहे खाना मिले या नही। उन लोगो मे यही तो खराबी होती है, ग्राते ही मालिक पर डोरे डालना शुरू कर देती है ! जवान ग्रादमी भी नही चलेगा, जवान-जवान लडकियाँ हैं मेरे घर मे। यही तो मुश्किल है। जो था उसे तो मैंने ही भगाया है। मेरी बडी ग्राफत है, चोर-उचक्का न हो यह भी देखना होगा।"

इसके बाद वह ज़रा रुकी ग्रौर पान की पीक फेककर फिर बोली—"तू कल सुबह ही चली जा।"

रासमणि की तबीयत इधर कुछ दिन से खराब थी। कमला ग्रौर उमा की चिट्ठी से भी उसके ग्रस्वस्थ होने की खबर मिली थी उसे, लेकिन सचमुच इतनी खराब हालत थी—श्यामा कल्पना न कर पाई। ऐसी राजारानी जैसी मूर्ति सूख-झुलस कर ठठरी हो गई थी। रोज बुखार होता, शायद मलेरिया था। लेकिन इतने दिनो तक किसी डॉक्टर को नही बुलाने दिया। मुहल्ले के ही एक वैद्य का इलाज चल रहा था। जब कुछ भी नही हुग्रा तो एक दिन कमला जबर्दस्ती डॉक्टर को ले ग्राई। उनकी दवा से बुखार तो उतर गया लेकिन उसने एकदम नही छोडा। शाम के वक्त रोज शरीर गर्म हो जाता था। डॉक्टर ने कहा था हवा बदलनी होगी नही तो पुराना ज्वर किसी भी तरह पीछा नही छोडेगा ग्रौर हवा बदलने के लिए पश्चिम जाना ग्रावश्यक था। देवघर जाना ग्रच्छा था, लेकिन यदि

इतनी दूर नही जाना चाहती तो बर्दवान या नलहाटी जा सकती है—हवा-पानी अच्छे है, फायदा होगा। नलहाटी तो तीर्थस्थान भी है, मूर्ति भी है वहाँ, बावन पीठो मे से एक है।

रासमणि ने काफी सोचा। उमा को अकेला नही छोडा जा सकता। साथ ही ले जाना होगा। इस घर मे कौन रहेगा ? शायद कमला राजी हो जाए। लेकिन वे ही भला अकेली किसके भरोसे जाएँ। दुर्बल शरीर, अकेली वह कही भी नही गई कलकत्ता के बाहर। कही भी अकेली जाने का अभ्यास नही था उन्हे। साथ मे कौन जाएगा ?

लेकिन कमला ने इसकी भी व्यवस्था कर दी। उनके वृद्ध पुरोहित राघव घोषाल काफी तीर्थो मे घूम आए थे, बाहर जाने का उनको अभ्यास था। वह साथ जाने को राजी हो गए। कहा, "खर्च और खुराक देने से ही वह चले जाएँगे, उन्हे कोई दिक्कत नही होगी। लडके बडे हो गए थे। वे यजमानी सँभाल सकते थे। फिर उनका शरीर भी तो अच्छा हो जाएगा।"

रासमणि 'ना' नही कर पाई। वह हमेशा से ही मनस्विनी रही थी। शान से जीना जानती थी। इस तरह अकर्मण्य होकर लडकियो की सेवा पर भरोसा करके जीना मृत्यु के समान समझती थी। इतने दिनो का गगा-स्नान जो उन्होने कभी भी किसी कारण से बद नही किया था वह भी अब बद कर देना पडा था। यह और भी कष्टकर था। जब प्लेग वाले साल मे सारा कलकत्ता श्मशान हो गया था, तब भी वह रोज सुबह स्नान करने जाती थी। रास्ते के साँय-साँय करते खाली घर जैसे काटने को दौडते, तब भी रासमणि घबडाई नही और कलकत्ता छोडकर भागी भी नही। मृत्यु से, अचानक मृत्यु से डर भी नही लगता था उन्हे। शहर को उजाड कर भाग गए थे सब लोग। मैले ढोनेवाली गाडियो को भी धो-पोछकर और उन्ही मे बैठ-बैठकर भागे थे वे लोग—अच्छी गाडियो का अभाव जो था। इन्ही गाडियो ने पन्द्रह और बीस रुपए प्रति सवारी लिये थे। यहाँ से चन्द्रनगर या चूँचुडा तक जाने के। देखती रासमणि और हँसती। ये लोग क्या हमेशा इसी तरह प्राणो को बचा पाएँगे ? यहाँ तक कि जब पुलिस ने डुग्गी पीटकर नीमतल्ला पर गगा स्नान बद कर दिया तब भी रासमणि विचलित नही हुई—केवल स्नान का समय जरा पहले कर दिया। रात को चार बजे जाती थी अब तीन बजे जाना शुरू कर दिया। इतनी सुबह पुलिस नही होगी, यह जानती थी।

नही, डरनेवाली औरत नही थी रासमणि। उस समय शवो की अधिक सख्या होने के कारण ऐलान हुआ था कि कोई भी दो घटे से ज्यादा चिता नही जला पाएगा। इन दो घटो मे जो कुछ फुँकता था वह फुँकता था—बाकी जो बचता वह गगा मे डाल देते लोग। इसीलिए गगा स्नान और भी निषिद्ध हो गया था।

इसी तरह जब एक अधजला शव स्नान करने वाले घाट के नीचे की सीढी मे अटक गया तब रासमणि का घाट पर उतरते समय उस पर पाँव पड गया लेकिन वे चिल्लाई नही, वहाँ से भागी नही, किसी भी तरह विचलित भी नही हुई। बल्कि जरा हटकर और बात को ठीक से समझकर 'नम शिवाय' करके एक लोटा जल उसके शरीर पर छोड दिया और उसकी परिक्रमा करके गगा मे विसर्जित कर दिया। साथ मे जो टसर की साडी थी, उसे भी अपवित्र नही माना।

घर आकर जब यह बात बताई तो उमा चीखने लगी थी डर से। रासमणि ने उसे आश्वासन देते हुए कहा, "डरने की क्या बात है ? अग्निदग्ध होकर गगा मे पडा शव क्या मुझे भूत बनकर डराएगा ? जैसे शिव, वैसा ही शव।"

"लेकिन बीमार होने का डर तो है। छूत का रोग यदि पकड ले ? दो दिन गगा स्नान बद कर देने मे क्या दोष है ?"

"वाह बहुत ठीक, मैं गगा-स्नान बद कर दूँ। मुझे वह रोग लगेगा ही क्यो ? जानती हो, जो सब लोग मर रहे है वे सब हर साल के मरनेवाले है एक-न-एक कुछ बहाना शुरू होता है और झुण्ड-के-झुण्ड लोग मरने चले जाते है। मैं क्यो मरने लगी ?"

वही गगा स्नान अब उन्हे बद करना पडा यही सबसे बडा दुख था।

जीवन की सारी वेदना, सारी व्यथा, सारी ग्लानि माँ गगा के शीतल जल ने सब भुला दी थी। आँखो के गर्म आँसू माँ गगा के शीतल जल मे मिलकर हृदय को शांति देते। माँ गगा की धार के ऊपर से आती शीतल वायु मे अपना दीर्घ नि श्वास मिलाकर उनको शांति मिलती। सिर्फ सहिष्णुता खोजी थी उन्होने पर प्राप्त करली—दुर्भाग्य के साथ युद्ध करने की शक्ति।

गगा-स्नान केवल नशा ही नही था उनका आश्रय भी था। सारे दुखो को उन्होने यही पर विसर्जन किया था नही तो शायद पागल हो जाती। अपने जीवन से अनुभव किया था उन्होने कि कैसी शाति, कैसा अभय छिपा है गगा की इन लहरो मे ! कैसी दया है माँ गगा की यह रासमणि को छोडकर शायद और कोई नही जानता।

वही गगा-स्नान उनके जीवित रहते बद हो गया। बहुत कुछ इसीलिए रासमणि राजी हुई थी हवा बदलने को।

लेकिन यदि जाना ही है तो बर्दवान, नलहाटी या देवघर ही क्यो—काशी ही जाएँगी। ज़रा स्वस्थ होकर यदि विश्वनाथ बाबा पर एक लोटा जल चढा पाएँगी तो कुछ पुण्य तो होगा। इस जीवन मे कभी किसी तीर्थ मे नही जाना हुआ। मरने से पहले एक बार काशी जाने से सात्वना मिल सकती थी।

ठीक किया, वे काशी ही जाएँगी। राघव घोषाल से कह दिया, पडा को एक घर ठीक करने के लिए चिट्ठी लिख दे।

पीहर के घर मे घुसते ही जैसे श्यामा की दोनो आँखे गीली हो उठी, वैसे ही रासमणि की आँखें भी सूखी नही रही। यह कैसा चेहरा हो गया भला। खिले कमल जैसी मेरी मँझली लडकी का ? यह तो ककाल मात्र है। इसके पहले भी वह कई बार भूख-पीडित और थकी आई है लेकिन इतनी दुर्बल तो कभी नही देखी।

अपने रोग से काँपते हाथ को उसके सिर पर फिराती-फिराती बोली—"तू मेरे साथ काशी जाएगी, बेटी ? चल, तेरा शरीर भी ठीक हो जाएगा।"

"मै ? काशी जाऊँगी ?"

"हाँ—चल न ? तब उमा को नही ले जाऊँगी। कमला और उमा दोनो यही रहेगे। उमा का तो लडकियो को पढाने का भी हर्ज होगा।"

"क्या पढाना ?"

उमा पास ही बैठी थी, सिर झुकाए, सिर उठाकर श्यामा की ओर देखती हुई बोली, "तुम्हे नही मालूम ? तुम्हे बतलाया भी तो नही। मैं इसी मुहल्ले मे कुछ लडकियाँ पढाती हूँ। आजकल बहुत से लोग लडकियाँ पढाना चाहते है लेकिन पढाने वाली स्त्रियाँ नही मिलती। छोटी-बडी कई लडकियो को पढाती हूँ। किसी-किसी घर मे बहू और यहाँ तक कि बडी-बडी मालकिने भी पढती है।"

"तू—तू घर-घर जाकर पढाती है ?"

"और क्या करूँ तो, बोल। वे मेरे घर क्यो आने लगी ? कोई-कोई आ भी सकती लेकिन सभी तो आना नही चाहती।"

श्यामा को फिर भी विश्वास नही हुआ, "हमारे घर की लडकी घर-घर बच्चो को पढाती फिरती है ?"

उमा का मुख लाल हो गया। वह जरा कठोर शब्दो मे ही बोली, "तुम्हारे यहाँ शायद शीशा नही है, छोटी दीदी। इसी घर की लड़की नारियल और जलाने की लकडी बाजार मे जाकर बेच आती है—वह शायद नही देखा ?"

सो तो था ही। इस बार श्यामा ने सिर झुका लिया।

रासमणि के सिर्फ शरीर मे ही परिवर्तन नही हुआ था मन मे भी हुआ था—नही तो वह सफाई देने वाली महिला नही थी। आज जैसे कुछ उसी स्वर मे बोली, "क्या करूँ तू ही बता ? उसने मुझसे जब पूछा तो 'ना' नही कह पाई। सच तो है, क्या खाएगी ? और तो कुछ भी नही है। मैं ही यदि चार दिन अगर जिन्दा रहूँगी कौन खाना-कपड़ा देगा, यही चिन्ता है। कमली को तो उन सोलह रुपयो का फिर भी भरोसा है। बड़े जमाई होते तो वही देखते। इससे उसका कुछ तो काम चलेगा ही।"

श्यामा की व्यावहारिक बुद्धि अब तीव्र हो गई, "कितना कमा लेती है ?"

"कही दो रुपए तो कही-कही पर एक-एक रुपया। एक जगह तीन लडकियाँ पढती है तो वे चार रुपए देती है। सब मिलाकर काफी हो जाते है, किसी-किसी

महीने मे सोलह-सत्रह रुपए भी।"

"किस समय जाती है री ?" इस बार सीधा उमा से ही प्रश्न था।

"यही खाना खाकर निकलती हूँ, ग्यारह बजे। सध्या तक लौट आती हूँ। सब इसी मुहल्ले मे तो है।"

"क्या कहती है तू, काशी जाएगी ?" रासमणि ने अपना प्रश्न दोहराया।

"अपनी इस गृहस्थी को लेकर ?"

उमा ने कहा, "न होगा तो ऐन्द्रिला हमारे पास ही रह जाएगी। खूकू (छोटी बच्ची) को ले जाओ।

"लेकिन हेम ? उसको भी तो अकेला छोड आई हूँ। न जाने क्या कर रहा होगा, खुद भात बनाता है, कही हाथ-वाथ जला ले तो !"

इस बार सभी चुप हो गए।

लेकिन श्यामा का मन लोभ से डोलने लगा। काशी-यात्रा उन दिनो सभी सधवा या विधवा बगाली महिलाओ का स्वप्न था, एक बहुत ही बडा स्वप्न ! आजकल की तरह तो उस जमाने मे हर साल घूमने का रिवाज नही था। अपने सारे जीवन मे काशी और 'श्री क्षेत्र' (पुरी) एक बार ही जा पाते थे लोग, वह भी काफी प्रयत्नो के बाद।

दिन-भर सोचने के बाद श्यामा ने एक चिट्ठी हेम को लिखी, जवाबी पोस्ट-कार्ड।

दो दिन के बाद उत्तर आ गया—कल्पनातीत सुसवाद लिखा मगला ने। उसे एक बूढी मिसरानी मिल गई है। हेम उनके यहाँ ही भात खाएगा अब। श्यामा जितने दिन चाहे माँ की सेवा कर सकती है। पिटकी का जो लडका हेम का ही समवयसी था, हेम के साथ सोएगा। वैसे सभी हेम की हमेशा फिक्र रखते है। कुछ डर नही है।

श्यामा को शान्ति मिली। ठीक हुआ कि कमला उमा के पास आकर रहेगी, ऐन्द्रिला को भी वे ही देखेगी। श्यामा काशी जाएगी माँ के साथ।

× × ×

पत्रा-वत्रा दिखवाकर एक दिन रवाना हो गईं रासमणि। साथ मे गए राघव घोषाल और उनका छोटा लड़का सत्यहरि—उम्र करीब सोलह साल। राघव तो बूढे हो गए थे, रासमणि को इस अवस्था मे वह अकेले सम्हाल पाएँगे, इसमे सन्देह था उन्हे, इसीलिए यह व्यवस्था हुई। सत्यहरि, और कुछ न सही, दौड-धूप तो कर ही लेगा। काफी सोचने के बाद उसका भी खर्च वहन करने मे ही कुशल समझी गई। गाडी मे आने-जाने के करीब आठ रुपए—और काशी मे रहकर एक मास खाने का और कितना लगेगा ज्यादा से ज्यादा चार रुपए।

श्यामा ने सोचा इसी पैसे मे हेम को लाया जा सकता था अगर नित्य-सेवा का काम न होता तो।

रासमणि ने इस बीच तीन-चार बार कहा है कि उनके पास और कुछ भी नही है। एक जोडी गहने बिक्री करके उन्होने कुल सौ रुपये इकट्ठे किए थे और जो कुछ था वह भी तीन-चार वर्ष से ज्यादा चलने का नही था। बाद मे तो उमा की कमाई पर ही निर्भर करना पडेगा उन्हे। एक अलग घर मे रहने का जो सुख है वह भी शायद नही रहेगा अब।

लेकिन श्यामा को इस बात पर विश्वास नही हुआ। वह इसलिए भी साथ जा रही थी, वास्तव मे माँ के पास और कितना है—क्या-क्या बाकी है, अच्छी तरह से यही सब मालूम करना चाहती थी वह। ऐन्द्रिला का विवाह भी यदि उन्ही के द्वारा हो जाता तो ठीक था, पर ऐन्द्रिला तो बहुत छोटी है अभी।

छोडने के लिए कमला और गोविन्द गए थे। साथ मे मुहल्ले का एक लड़का भी था। पालकी से उतरते ही पहले जिसके साथ मुलाकात हुई वह था नरेन। दाढी से भरा मुँह, घुटनो तक धूल, नगे पैर, देह पर एक फटी मिर्जई। दरवाजे पर ही बैठा था, पास ही अँगोछे मे बँधी एक पोटली-सी थी।

कमला को देखकर बिना भूमिका बाँधे कहने लगा, "अच्छा देखो तो, दीदी, उमी की हिमाकत। मुझे देखते ही दरवाजा नही खोला, बोली कि दीदी को आने दो। क्या मैं कोई शेर या चीता हूँ ?"

"उससे भी बडे, चोर-उचक्के हो—शेर-चीते से भी ज्यादा खतरनाक।"

"तुम भी यही कहती हो दीदी ?" आहत नरेन ने कहा।

"तुम्ही तो कहलवाते हो। मैं क्या कहती हूँ। चलो भीतर।" भीतर आकर नरेन पाँव धोता-धोता बोला, "घर लौटकर हेम से सुनते ही दौडता-दौडता आया हूँ। मुझे तो पैदल ही आना पड़ा, तुम्हारी तरह गाडी या पालकी मे चढ़ने की तो मेरी क्षमता नही है—तुम लोग स्टेशन गए हो और मैं आया हूँ। तो क्या मेरी घरवाली भी सचमुच काशी चली गई ?"

"अभी गाड़ी मे चढाकर आई हूँ।"

"लेकिन यह सासुजी की कैसी अक्ल है ? तुम्ही कहो दीदी। वह तो काफी समझदार है। मेरी घरवाली को बिना मेरी अनुमति के वे किस क़ानून से अपने साथ लिवा ले गई ?"

"तुम्हारी घरवाली तुम्हारे हुक्म से चले, ऐसी स्थिति रखी है क्या तुमने ? उसे खाना देते हो तुम ?"

"देता नही हूँ तो क्या ? हेम जो नित्य-सेवा का काम करता है वह किसका काम है ? मै यदि ले लूँ ?"

"तब तो वह बच जाएगा। तुम परिश्रम करके उन्हे खिलाओ यही तो नियम है। हेम जो कर रहा है, वह तो तुम्हारा काम है।"

"हुँ, बड़ा नियम है ! मैं परिश्रम करूँ और ये लोग बैठकर खाएँ।"

कमला चुप हो गई। ओछे लोगो से बात करना बेकार दिमाग खपाना है।

पोटली खोलकर हुक्का और चकमक पत्थर निकाला नरेन ने। तम्बाकू सुलगाते-सुलगाते बोला, "हूँ। तो और कौन-कौन गया साथ मे ?"

"माँ, श्यामा, राघव घोषाल और उसका छोटा लडका सत्यहरि।"

"कौन ? कौन गया है ?" नरेन का गला तीखा हो उठा—"राघव घोषाल ? वह कौन है ? कितनी उम्र है ?"

"अरे वही हम लोगो का बूढा पुरोहित ! तुम्हारी शादी भी उसी ने कराई थी। लगभग साठ वर्ष की उम्र है।"

"हो साठ ! साठ कुछ ज्यादा नही है, दीदी। मेरे एक यजमान ने सढसठ वर्ष की उम्र मे शादी की थी और फिर तीन-तीन बच्चे भी हुए।"

कमला थककर दीवार के सहारे बैठ गई और वही चुपचाप बैठी रही। कुछ भी अच्छा नही लग रहा था उसे। माँ इस हालत मे काशी गई है, स्वस्थ होकर लौटेगी या नही कौन जानता है। उसके ऊपर भी तो माँ के सिवाय कोई नही है।

हठात् फिर उसी तीक्ष्ण कठ से प्रश्न सुनाई पडा, "और वह लडका, न जाने क्या नाम कहा था—सत्यहरि या फत्यहरि—उसकी उम्र कितनी है ?"

"पन्द्रह-सोलह की होगी !" सक्षिप्त उत्तर दिया कमला ने।

"ओ माँ, तब तो वह युवक है। गाडी मे कौन कहाँ बैठा था ?"

"सभी एक डिब्बे मे चढे है। माँ अस्वस्थ हैं। जनाने डिब्बे मे अलग चढाने का साहस नही हुआ।"

"सो तो ठीक हुआ। लेकिन मेरी घरवाली के पास कौन बैठा था ?"

"माँ।"

"वह तो हुई एक ओर। और दूसरी ओर ?"

"और इस ओर पुरोहित है—डर की कोई बात नही है।"

"हूँ। तो मेरी स्त्री बैठी है राघव घोषाल और सासुजी के बीच मे ? और वह छोकरा ? वह कही बीच मे आकर मेरी स्त्री के पास तो नही बैठ जाएगा ?"

कमला इस बार खडी हो गई और गुस्से होकर बोली, "इतना मैं नही जानती हूँ; यही सब जानने की बहुत इच्छा है तो उडकर देख आओ।"

"वाह, खूब मजे की बात है। मेरी स्त्री किसके पास बैठकर जा रही है—मै खबर नही लूँगा ?"

तब तक कमला ऊपर चली गई। उसी ओर देखते-देखते थोडा तम्बाकू और पीकर नरेन अपने मन-ही-मन मे बोल उठा, "लौटने दो इस बदजात को। एक ही झटके में खत्म न कर दूँ तो मेरा नाम नरेन नही।"

ऊपर से मुँह निकालकर उमा ने पूछा, "रात को यही खाओगे क्या ?"

"वाह वा ! ससुराल आया हूँ—खाऊँगा भी नही ? जरा अच्छी तरह सौफ वगैरह पीसकर गाढी दाल बनाओ न, उमी जरा। मैने यह बहुत दिनो से नही खाई है !"

# षोडश परिच्छेद

## 1

उमा कुल मिलाकर नौ लडकियाँ पढाती थी। इससे कम से काम नही चलता चूँकि फीस ज्यादा नही मिलती। वह अंग्रेजी जानती नही थी अत लडको को पढाना उसके लिए असम्भव था। सभी ने लडको को अंग्रेजी पढाना शुरू कर दिया था। किसी तरह से भी थोडी-सी अंग्रेजी सीखते ही अच्छी नौकरी मिल जाती थी। लडकियो को अंग्रेजी पढाने का अभी उतना रिवाज नही था। किसी-किसी ने उन्हे भी अंग्रेजी पढाना शुरू कर दिया। पहले की तरह अब लडकियो के स्कूल खाली नही पडे रहते थे। उमा का खयाल था कि सुविधा मिलने से वह जल्दी ही अंग्रेजी सीख लेगी। लेकिन सुविधा कैसे मिलती ? कौन पढाए उसे अंग्रेजी ?

गोविन्द ने मुहल्ले की पाठशाला मे जाना शुरू किया था। उसके कोर्स मे अंग्रेजी की पहली किताब भी थी। पर वह जितना जानता था उमा ने पाँच-सात दिनो मे ही सीख लिया। किन्तु यह तो वर्ण-परिचय मात्र था। उसका मन आगे सीखने के लिए छटपटाता पर पाँच-छ वर्ष के बच्चो के खयाल से स्कूल के मास्टर साहब खूब धीरे-धीरे आगे बढ रहे थे। उमा की इच्छानुसार तो वे चल नही सकते थे। पूर्ण वयस्का उमा जो पाँच मिनट मे सीख लेती शिशु गोविन्द को वही सीखने मे एक सप्ताह लगता।

लडकियो को पढाने का रिवाज बहुत न होने पर भी लोगो ने इस ओर ध्यान देना शुरू कर दिया था। पर उसके अपने मुहल्ले के सम्पन्न लोगो मे ज्यादातर कलकत्ता के व्यवसायी थे। उन लोगो की धारणा थी कि लडकियो को पढाने से लक्ष्मी चली जाएगी। इन लोगो के रीति-रिवाज अभी सत्रहवी शताब्दी के ही थे। लक्ष्मी चले जाने के डर से इन लोगो ने आगे नही पढ़ना चाहा। पर वे लोग भी लक्ष्मी को उसी तरह नही रख पाए। कलकत्ता के इस व्यापारी दल को पीछे हटना पडा। अपनी जगह मारवाडियो के लिए छोड़कर।

जो भी हो, उमा को जरा दूर-दूर जाना पडता। सदर रास्ता पार करके उधर की दो एक गलियो मे भी। लेकिन उसे अब डर नही लगता। न जाने कैसे उसे यह समझ आ गई थी कि डरने से तो डर धर दबोचता है। वह किसी की मना या होशियार करने की बाते भी नही सुनना चाहती। चूँकि आज जो लोग सतर्क करने

आते है दुर्दिनो मे तो उनमे से कोई नही आता। तब तो उसी को कही सूख-सूखकर प्राण देने पडेगे। और यही क्या ठीक है कि वह घर पर ही मरेगी। घर तो खुद का नही है। किराया नही दिया तो मकानमालिक निकाल बाहर करेगा। सिर्फ एक रास्ता है गले मे रस्सी बाँधकर झूल जाना। लेकिन यह रास्ता भी तो हर वक्त खुला ही है। बिना अन्त देखे भाग्य के साथ अन्त तक बिना जूझे उमा कभी नही जाएगी उस रास्ते पर। महाभारत मे उसने पढा है कि आत्म-हत्या करना महापाप है। यह महापाप वह नही करेगी। पिछले जन्म मे ही न जाने क्या-क्या महापाप किए थे, किसको इतना अधिक कष्ट दिया कि इस जन्म मे इस तरह दु ख सहना पड रहा है। एक सधवा लडकी अजलि मे रूप-यौवन सजोए बैठी है—लेकिन अभी तक किसी के पाँवो मे उसे सौप नही सकी। यह जीवन अछूता ही रह गया—यह फूल खिला और मुर्झा रहा है। इस जन्म मे वह फिर कोई भी महापाप करने को तैयार नही, पहला जितना कुछ पाप है उसे इसी जन्म मे ही भोग लेना चाहती है।

नौ लडकियो को पढाती थी पर उसे जाना पडता सिर्फ छ घरो मे। एक घर मे दो और एक घर मे तीन एक साथ पढती थी। दो डॉक्टर की लडकियाँ थी, जो सीधे चार रुपए देती। जहाँ तीन पढते—दो लडकियाँ एक लडका—वे लोग कायस्थ थे किसी एक बडे विलायती फर्म मे काम करते तनख्वाह काफी मिलती—लेकिन थे काफी कजूस। वे इन तीनो के लिए चार रुपए देते। और चार लडकियों को अलग-अलग पढाना होता है दो तो देती दो-दो रुपए और बाकी दो एक-एक रुपया। ये ही लोग है उस विशेष समुदाय के जिन्होने साहस करके लक्ष्मी ठुकराई है, इसलिए ये लोग तो कुछ एहसान ही जताते है।

सादिक मियाँ के घर पढाने से इतनी परेशानी नही करनी पडती। उनके घर मे ही कुल मिलाकर आठ-नौ बच्चे—बूढे सादिक अभी जीवित थे, उन्होने यह भी प्रस्ताव रखा कि उमा को अगर उनके यहाँ आने मे आपत्ति हो तो वे अपने नाती-नातिनो को उसी के घर भेजने की व्यवस्था कर सकते है लेकिन इस पर रासमणि राजी नही हुई। उन्होने सादिक से हाथ जोडकर कहा यदि आपके बच्चो को पढाकर उसके लिए हाथ फैलाकर रुपए लेने पडे, तो इससे अधिक लज्जा की बात उमा के लिए और नही है, इससे तो फाँसी लगाकर मर जाना अच्छा है। इसके अलावा आप तो सभी समझते है बाबा, ब्राह्मण की लडकी आपके यहाँ नौकरी करे यह शायद हमारा समाज न सहे। उसे तो इसकी कुछ परवाह नही है—लेकिन मेरी और भी दो लडकियाँ है, उन लोगो का तो ध्यान रखना ही है। व्यर्थ ही उन्हे कष्ट मे डालने से क्या लाभ ?

इस पर सादिक और अधिक कुछ नही कह पाए। नसीबन की शादी हुई है टैरिटी बाजार के एक दिल्ली वाले धनी व्यापारी के साथ—उसके खाविन्द की ख्वाहिश था अपने अजीज और अजीजा को यानी नसीबन के देवर और ननद को

बगला भाषा सिखलाने की। नसीबन के पास फिटन गाडी भी थी। उसने कहा कि वह उमा को गाडी मे ले जाएगी और पहुँचा देगी, लेकिन यह भी नही हुआ—वही एक कारण। रासमणि ने नसीबन की पीठ पर हाथ रखकर सस्नेह समझा-बुझा दिया। इसके अलावा उनकी राय मे एक अपरिचित मुसलमान के घर रोज जाने मे उमा के लिए खतरा भी था। और कोई खतरा न भी हो तो बदनामी तो होती ही।

लाचार होकर उमा को इन्ही छ घरो मे जा-जाकर पढाना होता था। अपने घर पढाना सम्भव नही था—छोटी-छोटी लडकियो को कोई भी माँ-बाप घर से बाहर जाने देने को राजी नही थे। सबसे ज्यादा मुश्किल समय की थी। करीब बारह-एक बजे घर का काम-काज निबटाकर वह निकल पडती थी—लौटते-लौटते पाँच-छः बज जाते। गर्मियो मे जरा देरी भी चलती, चूँकि सध्या काफी देर से होती है, लेकिन जाडो मे तो जैसे झट से अधकार हो जाता, साँस लेने को भी वक्त न मिलता। अँधेरा होने के बाद रास्ते मे कही भी रुकने की हिम्मत नही पडती—ठीक भी नही था। मधु-लोभी मधुकरो का दल हमेशा मौजूद रहता। बेकार और मनचले युवको की सख्या उस वक्त भी कम नही थी। आजकल काम न पाने से बेकार रहते है। उस समय बेकार थे इसलिए इसी तरह काम चल जाता था। वह एक अजीब-सी बेकारी थी। जितने दिन यौवन रहता खोटे काम और दुश्चरित्रता मे कमी नही आती। दिन मे भी उन लोगो की हिम्मत कम नही पडती। लेकिन इस ओर उमा का भी कुछ जोर था। रासमणि से इस मुहल्ले के प्राय सभी लोग प्रभावित थे, उसका इतिहास भी सब जानते थे—उसके चरित्र मे माधुर्य के साथ ही जो दृढता थी उसका परिचय काफी लोगो को मिल चुका था। मुहल्ले मे उसके लिए सहानुभूति और श्रद्धा दोनो ही रहती थी। अत' अधिक धृष्टता करने पर घरवालो की डाँट पडेगी, ये सब जानते थे। साथ ही सादिक मियाँ के बलिष्ठ लडके और नातियो का भी सहारा था। इसलिए दिन मे निडर होकर वह किसी भी रास्ते चल-फिर सकती थी। लेकिन रात की तो बात ही दूसरी है। दिन मे जो साहस होता है, रात में वही दु साहस माना जाता है।

परन्तु लोग जब वेतन देते है—भले ही वह एक रुपया हो या दो—तब सभी की नजर घडी पर रहती है। एक घटा तो पढाना ही होता है—ज्यादा से ज्यादा चार-पाँच मिनट ही इधर-उधर हो सकते है। अत एक घर से दूसरे घर मे उमा बहुत जल्दी-जल्दी जाती। धीरे-धीरे चलने का उसका अभ्यास इन कुछ ही महीनो मे जाने कहाँ चला गया। फिर भी किसी-किसी दिन अतिम बार शिष्याओ के घर से निकलते (वह ज्यादातर डाक्टर का घर ही होता, चूँकि यही उमा के घर के पास था और वे लोग बहुत ही सभ्य थे। देरी हो जाने पर अपनी नौकरानी को उसके साथ पहुचाने भेज देते।) काफी अँधेरा हो ही जाता।

एक दिन इसी तरह जल्दी करते-करते भी देर हो गई। डाक्टर की नौकरानी किसी काम से बाहर चली गई थी। डाक्टर की गृहिणी ने प्रस्ताव रखा कि न हो तो बडा लडका ही पहुँचा आएगा। क्या कहा, बडा लडका ? यानी तेईस-चौबीस साल का जवान लडका—जिसके हाव-भाव उमा को कभी अच्छे नही लगे उसके साथ रात के अँधेरे मे अकेले जाने से तो अपने भाग्य पर ही भरोसा करना अच्छा था। उमा ने सर हिलाकर कहा, "ना, ना काकी माँ ! मैं ऐसे ही चली जाऊँगी, थोडा-सा ही तो रास्ता है।"

वह उनके घर से निकलकर करीब-करीब दौड़ने लगी। रास्ता अधिक न होने पर भी दो गलियाँ जो पार करनी थी। पहली गली ही अधिक निर्जन गली थी। वहाँ एक घर मे इस समय कुछ वृद्ध लोग बैठे गप-शप करते थे। उमा को उन्ही का भरोसा था लेकिन गली मे काफी अन्दर आने पर उसने देखा कि वह घर आज खाली पडा था। या तो इन बुड्ढो ने किसी कारणवश और कही बैठक बना ली थी, अथवा उस दिन कोई भी अपने-अपने घर से बाहर ही नही निकला। उस समय लौटना भी सम्भव नही था। मन-ही-मन दुर्गा-दुर्गा जपते उमा आगे बढी, लेकिन ठीक इसी समय उसे लगा कि उसके पीछे-पीछे ही बराबर पैछड हो रही है, कोई उसके पीछे ज़रूर आ रहा है। हो सकता है भ्रम हो—पर पीछे मुडकर देखना सम्भव न था। और भी जोरो से दौडने लगी वह और नतीजा यह हुआ कि मोड के पास आकर एक आदमी से टकरा गई—निश्चय ही कोई अपरिचित और पर-पुरुष था। पर उस आदमी की तो कोई गलती नही थी, वह उस ओर से आ रहा था। उमा को देखकर स्वय सतर्क होना उसके लिए सम्भव नही था। आतक, आशका, लज्जा और क्षोभ से शायद उमा बेहोश ही हो जाती कि कानो मे एक विस्मय-सूचक ध्वनि पहुँची—"अरे, यह तो तुम हो ?"

फिर जरा रुककर बाकी प्रश्न भी समाप्त किए उसने। "यहाँ, इस वक्त, अकेली ?"

वह आदमी था शरत्।

इस आदमी के साथ उसका परिचय बहुत थोड़ा था, उस पर भरोसा करने या उसकी साधुता पर निर्भर करने का कोई कारण भी नही था, फिर भी उमा को उस वक्त जो दिलासा मिला उसका अन्दाज़ नही लगाया जा सकता। एक लम्बी साँस लेकर वह वहीं खड़ी रह गई। शायद दम लेने की कोशिश की, लेकिन फिर किसी भी तरह वह खडी न रह पाई। इतनी परस्पर-विरोधी अनुभूतियो से जैसे उसके सारे स्नायु शिथिल हो गए थे—उसने प्राणपण से अपने को सम्हालने की कोशिश की लेकिन अन्त मे वह आत्म-सवरण न कर सकी और शरत् के ऊपर मानो गिर-सी पड़ी।

"अरे, देखो-देखो, यह क्या हो गया तुम्हे ?"

अनजान की तरह शरत् ने उसे पकडा और पर-स्त्री के भाव से पकडे ही रहा।

उमा ने इतने मे ही अपने को सम्हाला। पति की इस तीव्र जडता मे जो अपमान था उसने शायद उसके स्नायुओ को जल्दी ही सक्रिय कर दिया। सारी जानी-अनजानी बातो को भूलकर, सारे युक्ति-तर्कों के बावजूद भी जो आशा और सान्त्वना एक पत्नी के हृदय मे जगती है वे ही शायद पति के ऊपर अकस्मात् गिरते वक्त उमा के मन मे भी जगी थी—भीत और क्लात पत्नी को इस दशा मे स्नेह से छाती से लगाना ही कम-से-कम कुछ समय के लिए ही सही—शरत् से भिन्न किसी दूसरे व्यक्ति के लिए सम्भव था।

आवाज से कमजोरी न जाहिर हो, उमा ने इस तरह कहा, "हे भगवान्।"

उमा ने जरा चुप रहने के बाद सहज स्वर से कहा, "बहुत डर लगा मुझे।"

"सो तो देख ही रहा हूँ, लेकिन क्यो ? इस सुनसान गली से इस समय कहाँ जा रही थी—इतनी जल्दी-जल्दी ?"

"घर ही जा रही थी। हटो, रास्ता दो बिलकुल अँधेरा हुआ जा रहा है और देरी करने का अवसर नही है।"

"ठहरो—इस तरह और नही दौडना होगा, चलो तुम्हे घर तक पहुँचा दूँ।"

खतरे के वक्त इस आदमी के साथ भेंट हो जाती है। इतने दुख मे भी यह सोचकर उसे हँसी आ रही थी—आहा—क्या रिश्ता है!

साथ-साथ चलने मे उसे शर्म लगी। शरत् आगे-आगे और उमा जरा पीछे-पीछे चल पडे।

शरत् ने फिर वही प्रश्न किया, "कहाँ से आ रही हो ?"

"लडकियो को पढाकर।"

"क्यो—कैसे ?" ठिठककर खड़ा हो गया शरत्।

"सडक पर यूँ खडे रहना ठीक नही। आओ चले। कोई देख लेगा तो क्या सोचेगा। तुम्हे तो यहाँ कोई पहचानता नही।" व्यग भरे स्वर मे उमा ने कहा।

शरत् चलने लगा। उसका प्रश्न प्रश्न ही रह गया।

"पर कह क्या रही थी, मै नही समझ पाया।"

"कहती थी—आजकल ट्यूशन पढाती हूँ। महीने के अन्त मे एक-दो रुपये हर जगह से मिल जाते है—फिलहाल नौ ट्यूशन है। छ घण्टे की मेहनत के बाद अभी लौट रही हूँ। जान ही सकते हो इस वक्त क्या हाल है मेरा ? यो तो दिन रहते ही लौट आती हूँ पर आज जरा देर हो गई—इसलिए डरपोक की तरह भागी जा रही थी।" उमा के स्वर मे तीखापन आ गया।

तो भी मानो शरत् का सन्देह दूर नही हुआ।

"तुम घर-घर जाकर पढाती हो ? इस कच्ची उम्र मे ? अकेली ?"

"क्यो, इसमें चौकने की क्या बात है ?"

"तुम्हे—तुम्हे सचमुच पैसो की इतनी जरूरत है ?"

"क्यो, इसमे भी कोई अपराध है क्या ?" बातो के दौरान उमा अपने मकान तक आ पहुँची। चौखट पर पैर रख वह पीछे मुडकर बोली, "भरण-पोषण की प्रतिज्ञा करके भी जब पति अपनी प्रतिज्ञा नही निभा सकता तो फिर पत्नी के लिए दूसरा उपाय ही क्या है, बताओ ? तुमने सोच रखा है मेरी विधवा माँ मुझे आजीवन खिलाएगी और मरते दम इतना धन छोड जाएगी कि मै घर बैठे-बैठे ही काम चला लूँ, यही न ? अगर वेश्यावृत्ति अपनाती तो क्या तुम्हारी राय मे अच्छा रहता ? चौक क्यो रहे हो। मुझसे प्रश्न करने के बजाय मेरे पति से पूछो—देखे क्या जवाब आता है !"

उमा उत्तेजना से काँपने लगी।

"आओ। चलो अन्दर चले—तुम्हारा स्वर इतना चढ रहा है कि अभी पास-पडोसियो की भीड लग जाएगी," सहमी हुई आवाज मे शरत् ने कहा।

उमा भी जरा झेप-सी गई। वह फौरन अन्दर चली गई। पीछे-पीछे शरत् भी कुछ कदम अन्दर बढ गया।

"बारह की निकली, छ बजे लौट रही हूँ—लगातार बकझक करनी पडती है लडके-लडकियो से। उस पर भी यह आतक। रूप और यौवन ये दो दुश्मन तो दिन-रात छाया की तरह पीछे पडे रहते है। उफ् ! अब मुझसे और नहीं सहा जाता।"

शरत् के लिए उत्तर देना भी कठिन हो गया—पर गनीमत हुई की उसे उत्तर नही देना पड़ा।

"किससे बाते कर रही है री उमी ?" बत्ती लिए कमला नाचे उतर आई।

"अरे शरत् ! आओ-आओ। ऊपर चलो। आज तो हम लोगो के जैसे भाग्य खुल गए।"

"नही दादी, आज रहने दो। राह मे एकाएक भेट हो गई— इसलिए मैं बल्कि…"

शरत् की जबान लड़खडा गई।

कमला ने आगे बढकर उसकी कलाई पकड ली, "मै जीजी लगती हूँ तुम्हारी, आज भर तो कहना मान लो। स्त्री के पास दो पल बैठने से तुम्हे कोई नही टोकेगा। चलो ऊपर।"

यत्रचालित की तरह शरत् ऊपर आ बैठा। रोशनी मे उमा ने अन्दर साफ-साफ देखा कि शरत् काफी दुबला हो गया है, जैसे बूढा हो गया हो। उसका सुन्दर सलौना मुखडा गाल पिचकने से भद्दा लगता है। कमला उन्हे बैठाकर अभी आई कहकर चली गई। दोनो अकेले रह गए। अनजाने मे ही उमा कह उठी, "यह सूरत कैसी बना रखी है ? बीमार हो गए थे क्या ?"

"मैं ? नहीं तो।" पल-भर रुककर फिर कहा शरत् ने, "काफी परिश्रम करना पड़ता है । एक छोटा-सा छापाखाना खोला है—बेहद मेहनत करनी पड़ती है । थोड़ी पूँजी जो ठहरी।"

फिर दोनों मौन हो गए ।

कुछ देर बाद सिर झुकाये फर्श पर लकीरें खींचता हुआ शरत् बोला, "मेरे ऊपर बहुत कर्जा हो गया है—वरना तुम्हारा खर्चा ही कितना है—फिलहाल यदि कुछ रुपयों की ज़रूरत हो तो ?

"ना । अब तो मैं खुद ही कमा रही हूँ। अभी-अभी सुना नहीं क्या ? फिर क्या जरूरत है पति से भीख माँगने की । उसमें मेरा अभाव तो दूर नहीं होगा ?"

"अच्छा तो अब चलूँ।" शरत् सचमुच उठ खड़ा हुआ ।

"इतनी जल्दी ?" उमा आर्त स्वर में कह उठी, "लोग पत्नी को छोड़ वेश्यालय जाते हैं, और तुम एक वेश्या को छोड़कर दो घड़ी ब्याहता पत्नी के पास भी नहीं बैठ सकते।"

शरत् का झुका सिर और भी अधिक झुक गया, कुछ इधर-उधर करके किसी तरह उसने जवाब खोजा, "पत्नी होने के नाते ही तो तुम्हारे पास नहीं रुकना चाहता । प्रेम न रहते हुए भी आदमी वेश्या के यहाँ जा सकता है पर पत्नी के पास नहीं ठहर सकता । दिन-रात उसके सहवास में रह उसके यहाँ बनी रसोई खाकर तुम्हारे पास आना तुम्हारा अपमान करना न होगा ? मैं पति कहलाने योग्य नहीं—पर इससे यह न समझो कि मुझे तुम्हारी मर्यादा का खयाल नहीं । जहाँ भी जिस हालत में भी रहूँ ईश्वर से यही मनाया करता हूँ—जल्दी-से-जल्दी दुनिया से मुझे उठा ले । विधवा होने पर कम-से-कम तुम्हें इस अपमान से तो छुटकारा मिलेगा ।"

अन्तिम वाक्य कहते-कहते शरत् का कण्ठ रुँध गया, उमा तन्मय हो उसकी आवाज़ के कम्पन तथा अन्तिम कथन का उपभोग कर रही थी—एक तरह से विह्वल और जड़वत् खड़ी हो वह दीपक की ओर देखती रही । वह शरत् का पलायन भी न जान सकी और न मिठाई लेकर अन्दर आई कमला का आगमन ही ।

"अरे यह क्या, शरत् चला गया । और तू उसे दो घड़ी भी नहीं रोक सकी ?"

शायद उमा ने यह उलाहना भी नहीं सुना । वह ज्यों की त्यों पत्थर बनी खड़ी रही ।

## 2

उमा की वह पागलों जैसी हालत सारी रात बनी रही । नींद उससे कोसों दूर रही । यों तो आजकल ऐसा प्रति दिन ही होता था । प्रायः उसे नींद आधी रात

तक आती ही नही। पर आज की बात जरा दूसरी ही थी—उसने सोने की कोशिश ही नही की। सारी रात बैठी रही। नीद उचटने पर भी कभी-कभी कमला पूछ लेती, "अरी उमी! तू अभी सोई नही?" और उमा हर बार कहती—"बस अब सोने ही जा रही हूँ दीदी!" लेकिन सोना दूर रहा उसने सोने की कोशिश भी नही की। आज की रात सोना उसके लिए बिलकुल असम्भव-सा था।

शरत् का अन्तिम कथन उससे भी कही अधिक उसके स्वर-कम्पन ने उसकी हृदयतत्री को झकझोर डाला। अन्तिम कथन कहते वक्त उसकी भर्रायी आवाज़ का अन्दाज़ करने अथवा सुनने का मौका उमा को नही मिला, कारण इतने अल्प समय मे शरत् इतनी बाते कह गया कि अन्तिम कथन और आवाज़ की प्रतिक्रिया की स्मृति ने उसके मन मे एक अपूर्व माधुर्यपूर्ण इन्द्रजाल ही रच दिया। रेगिस्तान का दिग्भ्रान्त प्यासा राही गन्दे पानी का विचार नही करता। उमा को जीवन मे पति-प्रेम का कोई आस्वाद नही मिला था। दूसरो की जबानी एक धुँधला आभास मात्र था उसे। पर-तृष्णा तो सहज ही है, अत तृष्णा की उग्रता उसमे भी कुछ कम नही थी। स्वर के कम्पन और भर्राये कण्ठ ने उसकी अतृप्त तृष्णा को उभाड दिया। प्रगाढ अन्धकार मे प्रकाश की क्षीण रेखा को इन्सान हाथ बढाकर पकडना चाहता है, उसका दैहिक स्पर्श करना चाहता है, उसी प्रकार उमा भी कुछ पहले के कण्ठ स्वर को अपने अनजाने ही हाथ बढाकर पकड़ना चाहती थी।

दूर कही टैगौर-कैसल की घडी ने तीन बजने की सूचना दी। उमा दबे पाँव किवाडे खोल बाहर निकली। रात को जवान लड़कियो का बाहर निकलना सख्त मना था, कमला ने बार-बार कह रखा था, बाहर निकलना हो तो उसे जगाये। पर आज न तो कमला को जगाना सम्भव था और न इस बन्द कमरे की धुँधली रोशनी मे बैठे रहना ही। बाहर निकलने के लिए क्या कैफियत देती वह कमला को? इससे अपने पर भरोसा कर अकेली निकल जाना ही आसान था। होगा क्या, चोर-डाकू क्या रोज-रोज ताक लगाये बैठे रहते हैं? फिर इस हालत मे किसी दूसरे का कण्ठ स्वर भी तो नही सुनना चाहती वह। आज उसकी हृदयतत्री मे एक अपूर्व सगीत प्रतिध्वनित हो रहा है, अपनी समस्त इन्द्रियानुभूति से वह उसी को सुनने का प्रयास कर रही है, किसी अन्य परिचित कण्ठ स्वर के आघात लगते ही यह तत्री छिन्न-भिन्न हो जाएगी, इसके स्वर खो जाएँगे।

छत की ठण्डी हवा मे रात्रि जागरण से क्लिष्ट देह शीतल हो उठी। मानो किसी ने उस पर ठण्डा पानी छिड़क दिया हो। कृष्ण पक्ष का फीका और अपूर्ण चन्द्रमा अभी ढला न था, अँधेरा भी गहन नही था, सडक की बत्तियो की रोशनी बोस-मजिल की दीवारो पर टकरा रही थी, उसके आलोक मे छत साफ दिखाई दे रही थी।

उमा छज्जे की रेलिग का सहारा ले खडी हो गई।

शान्ति व निस्तब्धता छा गई चारो ओर। सारा शहर नीद मे डूबा था। अपने मन की बात सुनने का यही सुनहरा मौका है उमा ने अनुभव किया।

मल्लिक की कोठी से कुक सरदार एक-सी आवाज मे लगातार चिल्ला रहा है, उनके चिडियाघर के सारसो का जोडा भी रात्रि के अन्तिम प्रहर की घोषणा कर कर्कश और भद्दी आवाज मे चिल्ला उठे, पहले उमा ये आवाजे सुन डर जाती थी। विशेषकर कुक सरदार की एक स्वर की हाँक से, पर आज उसे डर नही लगा। यहाँ तक कि इस आवाज से उसकी विचारधारा मे कोई बाधा भी नहीं पड़ी। उसी प्रकार खड़ी-खडी वह नवीन अभिज्ञता की अपूर्व मधुरिमा का उपभोग करती रही। रात के सुन्नाटे मे उस पिच्छल अँधेरे ने जागते हुए ही एक सपना देखने मे उसकी मदद कर दी।

सुबह उमा की आरक्त आँखे देखकर कमला जरा भी विस्मित न हुई। उस अभागिन की मनोदशा का उसे अन्दाज था। रात को नीद न आना तो स्वाभाविक ही है। विधवा होकर अनेक रातें उसने भी जागकर काट दी थी। अतः उसने न तो कुछ पूछा ही और न कुछ सान्त्वना देने की ही कोशिश की।

पर थोडी देर बाद उसे सचमुच आश्चर्य हुआ। उमी को हो क्या गया है? कही बौरा तो नही गई? सोचते-सोचते कमला उद्विग्न हो उठी।

उमा का स्वभाव पहले से ही धीर-स्थिर-शान्त था। कमला ने उसमे चपलता कभी नही देखी थी। पर आज एकाएक वह इतनी चपल कैसे हो गई?

उछल-उछलकर सीढियाँ चढना, फुर्ती से काम निबटाना, किसी भी काम मे कितनी ही त्रुटियाँ छोड़ जाना और सर्वाधिक आश्चर्य तो यह कि रसोई मे काम करते हुए किसी को भी आस-पास न देखकर भी गुनगुना कर गाने गाना।

भला उद्विग्न कैसे न हो, विशेषकर एक लम्बे अरसे से जिसने उमा को देखा है उसके लिए तो उमा का आचरण बिलकुल अस्वाभाविक था। पर कुछ देर बाद ही मन-ही-मन दो और दो मिलाकर चार का अदाज कर कमला का उद्विग्न चेहरा प्रसन्नता व कौतुक से खिल उठा। कल बहन तथा बहनोई मे क्या बाते हुई यह वह नही जानती। सकोचवश उसने पूछा भी नही। सोचा, क्या जरूरत है जले पर नमक छिडकने की। पर कुछ बाते अवश्य ऐसी हुई है, जिससे कि उसने कल तो उमा को निष्प्रभ और जड-सा देखकर सोचा था कि शायद कोई बुरी या वेदनादायक घटना घटी हो या शरत् से और भी अधिक बुरा व्यवहार मिला हो।

पर आज पहली बार उसने सोचा—'ऐसा नही था। हो सकता है शरत् ने अपने कल के व्यवहार मे अभूतपूर्व सहानुभूति और स्नेह प्रकट किये हो। या शायद...'

उसे आज भी सकोच हुआ पूछने मे, पर कमला आड से उमा को जितना देखती उसे अपना वही विश्वास दृढ होता नजर आता। आज उसके मन मे बसन्त

का मलयानिल बह रहा था यह तो उसी की मदहोशी है।

उमा ने आज काफी काम किया। दूसरे का काम भी छीन लिया उसने। उबटन की कटोरी मे भरकर वह कमला की देह मलने लगी। वह आज कोई बात नही सुनना चाहती। बोली—"विधवा हो इसलिए शरीर पर मैल जमा करना होगा क्या ?" वह गोविन्द को भी लाड-प्यार करने लगी। बात-बात पर हँस-हँसकर लोट-पोट हो जाती। उसका यह आचरण इतना अस्वाभाविक-सा लगा कि बूढी नौकरानी तक अवाक् हो कमला की ओर देखने लगी—मानो उससे पूछ रही हो कि आखिर बात क्या है ?

फलत. कमला भी सारे दिन प्रसन्न बनी रही।

पर उसी दिन और भी एक घटना घटी। शाम को एक नौकरानी आकर सफेद कपड़े मे लिपटा एक पुलिदा दे गई। बोली, "हमारे बाबू—शरत् बाबू—ने बहूजी के लिए भेजा है, बहूजी की बडी बहन के हाथो देने को कहा है।"

उनकी नौकरानी गिरिबाला हाँफती हुई ऊपर चली आई। घटना इतनी अप्रत्याशित थी कि कमला को यह समझते ज़रा देर लगी। पर जब समझी तो व्याकुल हो बोली, "अरी उसे जल्दी बुला—कुछ हाल तो सुनूँ। उसे पानी पिला और कुछ पैसे ·"

पर तब तक वह अदृश्य हो गई थी। शायद शरत् का यही निर्देश रहा हो। कमला दुख प्रगट करने लगी। "नौकरानी गिरिबाला भी हैरान हो गई, "मैंने उसे जाने के लिए तो नही कहा दीदी, कहा था खडी रहो। मैने उसे समझाकर कहा था तू यहाँ पलभर खडी रह मैं दीदी को खबर कर आऊँ—भला वह औरत भी क्या है, कहा नही, सुना नही जिसके लिए चीज लाई वह उसे मिली या नही, पूछा तक नही और हवा हो गई ?"

कमला ने ऊपर का कपडा हटाकर देखा कि काली किनार की कीमती साडी बँधी है। ऐसी-वैसी नही—कम-से-कम छ-सात रुपए की होगी। शरत् ने उमा के लिए भेजी है जानकर आनन्द से कमला की आँखे छलछला आई।

उस वक्त तो उमी बाहर पढाने गई थी। शाम को घर लौटते ही कमला ने दौडकर सारा समाचार सुना दिया, "उमी, अरी उमी! शरत् ने तेरे लिए साडी भेजी है—विलायती या ओछी साड़ी नही—असली फरासडागा की कीमती साडी।"

"क्या—किसने भेजी है ?" उमा प्राय आर्तनाद कर उठी।

"शरत् ने। एक नौकरानी दे गई थी आकर।"

अपने जीवन मे उमा ने आसानी से सारी चोटे सह ली थी। पर इस स्नेह के अप्रत्याशित निदर्शन की जो प्रतिक्रिया उसके हृदय पर हुई—उसे उमा सहन न कर सकी। खासकर इन चौबीस घण्टो मे ही उसके हृदय पर से एक अवर्णनीय तूफान निकल गया था। उसके सारे स्नायु सुन्न पड़ गए थे। अब कोई आघात

सहने का सामर्थ्य उसमे न रहा ।

वह कुछ कहना चाहती थी पर कह न सकी, एक अस्फुट-सा स्वर उसके काँपते अधरो से निकलकर रह गया—उसके बाद ही उसकी सज्ञाहीन देह दीदी के सीने से आ लगी ।

## 3

काशी आते ही पन्द्रह दिन मे ही रासमणि काफी स्वस्थ हो गईं । उसके पहले वह यहाँ कभी नही आई थी । कलकत्ता की एक सकीर्ण गली मे घर की चहारदीवारी मे ही बन्द पडी रहती थी । स्वास्थ्य मे फर्क पडना भी स्वाभाविक ही था । फिर जलवायु का भी तो अपना गुण है । घी-दूध अनाज सभी चीजे प्राय सुस्वादु और सस्ती थी । गगा और विश्वनाथ का मन्दिर । बहुत दिनो बाद उनका मन भी खूब हल्का और स्वस्थ हो उठा ।

जरा स्वस्थ होते ही रासमणि खुद ही विश्वनाथ के दर्शनार्थ जाने लगी । फिर चार-पाँच दिन जाते न जाते शाम को रानी भवानी की गोपाल-कोठी मे कथा तथा दशाश्वमेध घाट पर कीर्तन सुनना शुरू किया । मानो उन्हे नव-जीवन मिल गया हो । एक अपरिचित आनन्द का सन्धान मिला हो । रासमणि ने इतने आनन्द की कल्पना कभी नही की थी । कलकत्ता के प्राणियो की चिन्ता मानो वही तक सीमित रही यहाँ तक नही पहुँच सकी हो ।

पर श्यामा छटपटाती रहती । हेम वहाँ पडा है । उसे कौन रसोई पकाकर खिलाता होगा ? नरेन आया कि नही कौन जाने—वह कही घर आकर हेम को मारता-पीटता न हो—बस ऐसी चिन्ता-फिक्र लगी रही उसे । जो एक-दो बर्तन बचे थे, शायद वह उन्हे भी बेचकर खा गया होगा । आते वक्त उसे कुछ भी नही कह आई वह । हजार हो, आखिर वह उसका पति है । एक अरसे से उसे नही देखा—यह बात वह कभी नही बिसराती । एक बार आकर लौट गया तो क्या पता फिर कितने दिन न आए । अजीब कारणों से उसका अभाव बोध भी रह-रहकर तीव्र हो उठता ।

रासमणि की ओर से भी श्यामा अब मन-ही-मन हताश हो चली थी । यह बात नामजूर करने से अब कोई लाभ नही था ।

इस महीने की सेवा-शुश्रूषा मे अन्य बातो की आड़ मे यही एक बात श्यामा ने बार-बार पूछी कि रासमणि के पास असल मे है कितना ? किस हद तक उस पर भरोसा किया जाए ? पर हर बार उसे एक ही उत्तर मिलता, कोई खास रकम नही है । अब हाथ खाली हो चला है । बहुत हुआ तो तीन-चार वर्ष और । इससे अधिक जीवित रही तो सन्दूक के बर्तन-भाडे बेचने पडेगे ।

घुमा-फिराकर बस वही एक बात । श्यामा सुनती और दिल मे एक बर्फानी

ठण्ड-सी महसूस करती। उसे मालूम था कि रासमणि झूठ नही बोलती। अब इतने दिनो बाद रुपये-पैसे के मामलो मे झूठ बोलेगी, यह कभी नही सोचती। इतनी पूछ-ताछ और इतनी जिरह के बावजूद भी जब एक ही उत्तर मिलता रहा तो फिर सन्देह का अवकाश ही कहाँ था? कट्टर मिथ्यावादी लोग भी इतनी जिरह के बाद सच नही छुपा पाते।

अत आशा की एक किरण भी कही नही दीखती। सब कुछ अब उसी को निभाना था। ज्यो-ज्यो यह विचार दृढ होता गया इस प्रवास के प्रति उसकी विरसता बढती गई। लौट चलने के लिए उसका हृदय छटपटाने लगा।

रासमणि चौक उठी। इतने ही दिनो बाद लौटने की बात? सच तो यह था कि वह अभी लौटना नही चाहती थी। प्रश्नसूचक दृष्टि से वह राघव की ओर ताकती।

"इतनी जल्दी क्या पडी है, मझली दीदी। आपको आये तो अभी दो हफ्ते ही हुए है। ज़रा माँ को स्वस्थ हो उठने दो। जल्दबाजी करने पर सारा किया-कराया व्यर्थ हो जाएगा। वहाँ जाकर फिर बीमार हो जाओगी। इससे अच्छा है कुछ दिन और यहाँ रह जाओ, देखना कीचड मे कैसा कमल खिलता है।"

पल-भर रुक फिर कहते—"सुना है दो-एक दिन मे रामनगर के बैंगन भी बाजार मे आने लगेंगे। कहते हैं एक-एक बैंगन आठ-आठ सेर वजन का होता है और फिर भी काफी मीठा। यहाँ ये सेर के हिसाब से बिकते है, एक या दो पैसे सेर। ऐसे बैंगन अगर नही खाए तो जीवन बेकार है, समझ लो। जब आ ही गई हो तो सब कुछ खा-पीकर ही जाओ।"

श्यामा उलाहना-भरे स्वर मे कहती, "तुम्हे क्या है बामन दादा, दूसरे के पैसो पर मौज कर रहे हो, फिर भला तुम क्यो जाने की बाबत सोचने लगे? पर मैं बाल-बच्चों को छोड आई हूँ। मेरा दुधमुँहा बच्चा वहाँ अकेला रहता है, पूजा-पाठ, लिखाई-पढाई सब कुछ अकेला देखता है। भगवान् जाने क्या सोचता होगा? कही बीमार न पड गया हो? कलकत्ता मे उस नन्ही-सी बच्ची को लेकर दीदी भी क्या कम तकलीफ मे न होगी?"

राघव घोषाल की उम्र भी काफी हो चली थी, फिर वह एक अरसे से इन्हे देखता आ रहा था। ऐसी बाते सुनी-अनसुनी करके हँसते हुए कहता, "ठीक कहती हो श्यामा ठकुरानी, दूसरे के बल-बूते पर ही तो गुलछर्रे उडा रहा हूँ, भला ऐसा मौका क्या इस ठूंठ से शरीर को कही कभी मिलेगा? इसका लोभ तो है ही। पर तुम्हारा भी तो वही हाल है। दूसरो की सहायता बिना यहाँ कैसे आ पाती? जिसकी देह चलते-चलते हम सब यहाँ आ पहुँचे है, जरा उसका भी तो ख्याल करना चाहिए? यही कुछ दिन और यहाँ न रहे तो इतनी दूर आने से क्या लाभ हुआ?"

श्याम गुम हो बैठ जाती।

राघव घोषाल आगे कहता, "तुम्हारी बच्ची तो राजी-खुशी है। रही बात लडके की, सो गरीब के घर जन्म लिया है तो कष्ट तो सहना ही पडेगा। इतनी-सी उम्र मे तुम्हारे लडके ने कौन-सा काम नही किया। भला यह उम्र क्या नौकरी करके खाने की है ?"

उस दिन मानने पर भी श्यामा चुप नही बैठी, रह-रहकर वापसी की बात छेडती रहती—"माँ, कलकत्ता लौटने के बारे मे क्या विचार है ?"

आखिर रासमणि तग आ गई। फिर भी वापस जाने को उनका जी नही चाहता था। एक लम्बे अरसे के बाद चैन की साँस ली थी। नील स्वच्छ-सलिला गगा और बाबा विश्वनाथ। सुलगते मन की आग बुझाने का स्थान यही तो है न। गगाजल मे मिलकर जब उनके आँसू बाबा विश्वनाथ को समर्पित होते तो सच-मुच उन्हे असीम शान्ति मिलती।

"महीने भर का किराया ही जब दे दिया है तो कुछ दिन रह जाएँ। न हो तो आगे का किराया और नही देगे।"

लाचार हो उमा जी मसोसकर रह गई।

आखिर उमा को अँधेरे मे रोशनी की झलक मिली। एक दिन भोजनोपरान्त राघव घोषाल ने आकर पूछा, "तुम्हारी लडकी की क्या उम्र है ? उसे पढाओगी या नही ? यो ही अनपढी का ही ब्याह करके ही निश्चिन्त हो जाओगी क्या ?"

"कहाँ से पढाऊँ, बामन दादा ? उस देहात मे भला किसी ने यह बात सुनी तक है ? हाँ, घर पर पढा सकती हूँ, जो कुछ मैं जानती हूँ, पर उसके लिए भी तो समय और सुविधा कहाँ है ? पेट के लिए ईंधन जुटाऊँ या कि यह सब करूँ ?"

"हाँ, सो तो है ही।"

"अच्छा माँ, ऐन्द्रिला कुछ दिन उसी के पास ही क्यो न रहे, वह गैरो के लडके-लडकियाँ पढाती है, अपनी भतीजी को नही पढा सकेगी ?

रासमणि चौकी।

"उमी के पास ! पर उसे वक्त कहाँ मिलता है ? बारह बजे जाती है और शाम को लौटती है।"

"तब तो और भी अच्छा होगा, माँ ! बेचारी अकेली रहती है, ऐन्द्रिला के रहने से कम-से-कम जी तो बहला रहेगा। बच्ची की उम्र भी तो अभी थोडी ही है। गरीब घर मे पली है, पर किसी चीज के लिए रोयेगी भी नही। फिर थोडा-बहुत काम भी जानती है, लाड-प्यार करने की हालत मे तो मै हूँ नही। छोटी उम्र से ही काम-काज सीखना पडा है उसे।"

रासमणि फिर भी चुप रही। वह और एक नया झमेला नही मोल लेना चाहती थी। फिर यह भी सोचती, सच तो उमी बेचारी अभी अकेली है, अगर

एक-दो छोटे-छोटे लडके-लडकी पास रहे तो कम-से-कम जी बहला रहेगा।"

"क्या ख्याल है माँ ?"

"बेटी, तुम हर बात मे जल्दी करती हो।" रासमणि जरा चिढी। "पहले सोच तो लूँ। लौटकर उमी से पूछूँगी। उसकी सलाह भी तो लेनी होगी। काम तो उसी को करना है न ?"

श्यामा ने शान्ति की साँस ली। उमा को राजी करना कोई कठिन नही था, ऐन्द्रिला उसे प्राणो-सी प्यारी थी। जैसे भी हो तीन वर्ष निकलते ही तो उसकी शादी तय कर देनी होगी। तब तक इनको भी इससे कुछ मोह हो जाएगा। और तब वे ही शादी की रस्म भी पूरी कर देंगे।

मन-ही-मन वह हिसाब लगाने लगी कि ऐन्द्रिला के वहाँ रहने से और क्या-क्या सुविधाएँ हो सकती है।

अब यहाँ पडे रहना उसे और भी असह्य-सा लगा।

कुछ दिन पहले ही कमला का खत आया था। उसमे नरेन तथा शरत् के आने का हाल भी लिखा था। शरत् ने उमा के लिए साडी भेजी है, शायद इतने दिनो बाद उमा के प्रति उसका मन खिंच रहा है।'' यदि ऐसा हुआ, उमा यदि पति के साथ गिरस्ती होने चली तो कभी भविष्य मे उसके सन्तान भी तो होगी, फिर क्या वह ऐन्द्रिला को देखेगी ? शरत् भी क्या उसे साथ रहने देगा ? अपने मनजाने ही श्यामा शंकित हो उठी। वही बदकिस्मत है नही तो आज इतने दिनो बाद एकाएक शरत् ।

'नही ' नही, यह वह क्या सोच रही है।' एकाएक चौक पडी श्यामा अपनी स्वार्थपरता पर। लज्जित भी हुई। उमा सुखी रहे। उसकी चिन्ता न करे। मेरे भाग्य मे जो है सो होगा ही। और आज ही तो सब कुछ नही होने जा रहा है। शरत् को तो आनाकानी करने मे ही दो-एक महीने गुज़र जाएँगे, तब तक उमा को ऐन्द्रिला से और भी मोह हो जाएगा, हो सकता है माँ को भी हो जाए कुछ।

नरेन आया था। अब कहाँ होगा ? कौन जाने, फिर कब लौटेगा ? खुली खिडकी से उस पार रामनगर के सुदूर प्रसारित धू-धू करते मैदान की ओर देखती श्यामा पति के बारे मे सोचती रहती।

## 4

उमा को राजी करना श्यामा ने जितना आसान समझा था, कलकत्ता लौटकर उमा से प्रस्ताव करने पर पता चला कि बात उतनी आसान नही है। उमा पहले कुछ समझ ही नही पाई, विह्वल दृष्टि से श्यामा की ओर ताकती रही। दुबारा समझाने पर उसने माँ की ओर देखा। पर वहाँ तो वही निर्लिप्तता छाई थी, माला जपती हुई वे खुली खिड़की से बाहर ताक रही थी।

अर्थात् वह उमा को किसी ओर भी प्रभावित नही करना चाहती थी। वहाँ से नजर हटा उमा ने अपनी दीदी की ओर भी देखा, फिर गर्दन नीची कर धीरे से बोली, "मुझे माफ करो, दीदी, मुझसे यह न होगा।"

श्यामा ने ऐसे साफ जवाब की आशा नही की थी। वह स्तब्ध होकर कुछ क्षणो तक तो बहन की ओर ताकती रह गई।

"नही क्यो ? यह क्या कहती हो ? तुम्हारे लिए तो यही अच्छा होता कि ऐन्द्रिला को साथ रखती," धीरे-धीरे रुकते-रुकते लडखडाती जबान से श्यामा ने पूछा।

"अपना भला मुझे ही सोचने दो। किसी दूसरे के लिए मेरी भलाई करना असम्भव है।"

"पर क्यो, इसमे तुम्हारा हर्ज ही क्या है ?" इतने दिनो की कल्पना-आशा एक-बारगी ताजमहल-सी ढहती देख निराशा के क्षोभ से श्यामा का स्वर और भी तीखा हो उठा।

उमा शायद और भी रूढ जवाब देना चाहती थी, कहना चाहती थी कि क्या भला होगा ? या शायद यही कहती कि, 'मेरी सुविधा-असुविधा मै आप समझ लूंगी, उसकी कैफियत तुम्हे क्यो दूँ ?' पर मुँह खोलकर भी चुप हो गई वह। वह कुछ रुक-रुककर फिर बोली, "क्या ज़रूरत है, भगवान् ने जब यह झमेला मुझे नही लगाया तो खामखाँ पराया बोझ ढोने से क्या होगा ?"

"ऐन्द्रिला पराई है ?" उमा की इस कटुता से कमला भी झुझला उठी।

"अपनी सन्तान तो नही है, दीदी। चाहे जितना पालो-पोसो, वह पराई सन्तान होकर ही रहेगी, उस पर मेरा वास्तविक अधिकार कभी किसी दिन नही हो पाएगा।"

"तो तू उसे गोद ले ले।" श्यामा ने साग्रह सुझाया।

"तो भी गोद शब्द सदा उसके पीछे लगा रहेगा। उसे सुनते ही मुझे घृणा होती है। नही दीदी, अश्वत्थामा की तरह मे दूध का स्वाद पिठी का पानी पीकर नही पा सकती। गृहस्थी बनने के लिए ईश्वर ने मुझे नही भेजा।"

कुछ देर तक तो बाकी और सभी मौन बने रहे।

रासमणि की जप-माला पहले जैसी ही फिरती रही थी। उनका निर्विकार चेहरा देखकर यह भाँपना कठिन था कि वह क्या चाहती है ?

कुछ देर बाद श्यामा ने दूसरा कौशल रचा। वह जरा खिन्न स्वर मे बोली, "और कुछ नही, जरा लिखना-पढना जान जाती। माँ के पास रहती तो जरा अदब-कायदा भी सीख लेती। ऐसी सुन्दर लडकी है, यदि पढ़ सके तो भले घर मे ठौर मिल जाएगी।"

कमला ने ही इस बार स्पष्टतया माँ से पूछा, "तुम्हारा क्या ख्याल है, माँ ?"

रासमणि ने शान्त भाव से उत्तर दिया, "बेटी, मै क्या कहूँ, मुझमे अब वह क्षमता नही रही कि यह कह सकूँ कि छोड जाओ। जिसका काम है, वही समझे, मेरा बीच मे पडना ठीक नही।"

कमला की जरा ममता उमड आई थी, वह हठ करके बोली, "उमी, तुम्हे जरा माँ का ख्याल भी तो करना चाहिए, तुम चार-पाँच घण्टे बाहर रहती हो, उस समय माँ घर मे अकेली रहती है। उस पर उनकी तबियत का हाल तो जानती ही हो। अगर ऐसे समय कोई पास रहे तो कम-से-कम पखा झेल हवा तो कर सकेगी, प्यास लगे तो पानी लाकर ही पिला देगी।"

उमा अब उठकर खडी हो गई, "जब तुम सभी सहमत हो तो फिर मेरी राय से क्या आता-जाता है। ठीक है, रख लो उसे पर, बडी दीदी, माँ ने यह कितनी ही बार कहा है, दूसरे की औलाद को हँसाना, नचाना पर रुलाना मत। और शासन करने का अधिकार न रहने पर लडके-लडकियाँ सुसस्कृत नही होते।"

श्यामा अधीर हो उठी, "तुम्हारी जितनी इच्छा हो तुम उस पर शासन करो। तू यदि उसे काट भी डाले तो भी मै मुँह नही खोलूँगी।"

"यह सम्भव नही है, दीदी," खडी-खडी उमा ने जवाब दिया, "यह तुम भी जानती हो और मैं भी जातनी हूँ। व्यर्थ की बातो से क्या लाभ ? चाहे जितना लाड-प्यार करूँ कोई नही पूछेगा पर जरा-सी डाँट-फटकार करने पर आजीवन कलक लग जाएगा। दूसरो की औलाद पालने का यही पुरस्कार है। माँ सामने ही बैठी है, उन्ही से मैने कितने ही ऐसे किस्से सुने है। चाहो तो पूछ लो।"

उमा कमरे से बाहर निकल गई।

यह सब होने पर श्यामा को ऐन्द्रिला को साथ ले जाना ही उचित था पर चिर-दारिद्रय ने उसे जो महान् उपदेश दिया था उसमे अन्यतम यह था कि जहाँ स्वार्थ-सिद्धि प्रधान उद्देश्य हो वहाँ आँख की शर्म की कोई गुजाइश नही। उमा की रूढता के बावजूद भी वह ऐन्द्रिला को वही छोड़कर चली गई।

## 5

श्यामा के दिन फिर उसी दरिद्रता मे गुजरने लगे। जीवन-निर्वाह के लिए कितना अटूट परिश्रम, कितना सग्राम। कल की चिन्ता मे ही आज की रात गुजरा करती।

हेम की पढाई चल रही थी पर पूजा-पाठ करते रहने से वह विद्यालय नियमित रूप से नही जा पाता। अभी काफी छोटा होने के कारण विवाह, उपनयन आदि बडे-बड़े अवसरो पर भी उसकी पुकार नही होती। केवल दो ही जगहो पर वह नियमित रूप से पूजा-पाठ किया करता, यही एकमात्र सम्बल था। हाँ, 'षष्ठी' या 'मनसा' आदि की पूजा मे कभी-कभी कोई उसे भी बुला लेता था। उम्मीद थी

दो एक वर्ष बाद सरस्वती पूजा मे भी उसकी पुकार होने लगेगी । पर वह दिन अभी दूर है। साप्ताहिक लक्ष्मी-पूजा अथवा मनसा-पूजा मे कोई कपडे वगैरह भी नही देता। वही हाल षष्ठी पूजा मे भी होता ' बहुत अधिक हुआ तो उसे हाथ-डेढ हाथ का लाल अगोछा मिल जाता । सिर्फ नैवेद्य के चावल, कटे फल, बताशे आदि ही मिला करते । रही दक्षिणा की बात सो कभी चार पैसे तो कभी दो आने । वे भी पौष, भाद्र, चैत्र महीनो मे, अन्यथा नही । षष्ठी-पूजा नियमित समय के अलावे कभी-कभी आकस्मिक भी होती है, सन्तानादि होने पर। लेकिन उसमे हेम को कोई नही बुलाता । लक्ष्मी-पूजा तथा मनसा-पूजा प्राय सभी भद्र घरानो मे होती अत पुजारियो की खूब पुकार भी होती ।

पर इससे प्राय होने वाले उपवास ही बद हुए अधिक कुछ नही । उधार खाता फिर भी चलता । फलो की चोरी, अनाज की चोरी लगी ही रहती । पिटकी खुल्लमखुल्ला कहती फिरती, "अरे यह बामनी एक महीना नही थी तो कम-से-कम बाग मे फलो की सूरत तो देखने को मिलती थी, अच्छा तुम फिर काशी नही जाओगी, बामनी दीदी ?"

श्यामा इस बात की कटुता की ओर ध्यान नही देती । मुस्कराकर रह जाती, जवाब न देती और कुछ नही करती । वह पिटकी की बात को नितान्त मजाक समझकर उडा देती । उसी बीच श्यामा ने एक और सन्तान को जन्म दिया। उस समय नरेन भी कई बार लगातार आया था, मगला का कहना था कि सन्तान फल मे आकर्षण होता है। कारण, श्यामा के गर्भवती होने का समाचार सुनते ही नरेन जो चला गया तो फिर नही लौटा । केवल यही नही बर्तन वगैरह बेचकर प्रसव का खर्चा भी सम्भल जाता, पर उसने वह रास्ता भी बद कर दिया। अतिम बार जाते समय, दान-दक्षिणा मे मिले हुए पीतल के जो दो-एक बर्तन रखे थे, उन्हे भी बेचकर खा गया था वह । कुछ पुराने बर्तन तो उसके पहले ही कलई करने-कराने के बहाने बेच आया था और नये बर्तन एक दिन श्यामा और हेम की अनुपस्थिति मे आकर इस तरह ले गया था कि किसी को कुछ पता नही चल सका। पीतल के साधारण बर्तनो को भी वह बेचकर खा जाएगा, इसकी श्यामा ने कल्पना भी नही की थी । वरना, वह पहले ही सावधान हो जाती ।

श्यामा को यह पता न था कि सब कुछ स्वाहा हो गया है। पर मगला इस ओर से बडी चालाक-चतुर थी, उसने एक नजर मे ही सारी स्थिति भाँप ली, "अरी बामनी ! देख तेरे फूटे बर्तनो की क्या गति हुई है। सारे के सारे बर्तन एक साथ नही ले जा पाएगा, इसलिए उस दिन कैसा खासा बहाना बनाया था । कम चालबाज है तेरा आदमी । नही तो जिसने कभी घर की किसी चीज को इधर-से-उधर नही किया, वही डेढ कोस बोझ ढोकर तेरे फूटे बर्तनो को झलाने और कलई कराने ले जाएगा, यह कभी सोचा भी जा सकता है ? कही बौरा तो नही गई तू ?"

बात ठीक ही थी। अब श्यामा की समझ मे आया कि नरेन पर विश्वास करके कितनी बडी भूल की। गृहस्थी की चिन्ता भला नरेन को क्यो सताने लगी। वह क्यो बर्तन झलाने और कलई कराने डेढ कोस पैदल चलकर शिवपुर के बाजार जाएगा ? पर उस दिन जब नरेन ने यह प्रस्ताव किया था तो लेश मात्र भी सन्देह नही हुआ था उसे, "कब कलाई करने वाला आएगा तुम तब तक बैठी रहोगी ? उस पर वे साले कसाई होते है। लाओ दो, शिवपुर के बाजार से झलवा लाऊँ मैं। ऐसी क्या तकलीफ होगी, जाऊँगा और आऊँगा।"

"कोई ज्यादा पैसे भी नही चाहिए, अभी चार पैसे दे दो, बाकी का काम तो जनेऊ दिखाकर कर लूँगा।"

"जनेऊ दिखाकर माने ?"

"अधिक पैसे माँगेगा तो पहले उसे समझाऊँगा कि बेटा ब्राह्मण से अधिक मत माँगो, जो दे रहा हूँ, वही चुपचाप ले लो। इस पर भी यदि न माने तो जनेऊ तोडकर शाप देने की धमकी दूँगा। फिर भला किसकी हिम्मत है कि मुझसे अधिक पैसे माँगे उस बाजार मे। हिन्दू ही तो ज्यादा है वहाँ, जनेऊ तोडकर शाप देने की बात सुनते ही तो मुसलमान भी डर जाते है।"

अपनी चतुराई पर नरेन अपने आप ही अट्टहास कर उठा।

श्यामा ने फिर भी पति पर विश्वास किया, यही कमाल था। विश्वास के कारण ही तो खोज-खाज कर चार आने पैसे दिए थे उसने। बडे घडे के न रहने से ही अधिक तकलीफ हो रही थी, एक घड़ा पानी होने से ही काम बन जाता था। नही तो छोटे घडे से बार-बार पानी लाने मे बडी तकलीफ होती थी। जाने-आने की मेहनत, उस पर इतनी फुरसत कहाँ हैउसे।

यहाँ तक कि नरेन जब शाम को खाली हाथ लौट आया तो भी सन्देह न हुआ श्यामा को। उसे लौटा देख ही सारा सशय दूर हो गया। केवल ऊपर से पूछा था, "कहाँ हैं मेरे बर्तन ? नही लाए ? बेचकर खा गए क्या ?"

इस बार भी नरेन अट्टहास कर उठा था, "वाह, खूब कहा। तुम्हारे उन फूटे बर्तनों को भला कौन खरीदता ? कोई खरीदे भी तो कितने पैसे मिलेगे ? असली बात यह है कि आज तो बाजार मे सार्वजनिक पूजा है, आज कोई यह काम नही करेगा। परसो सुबह कर देने को कहा है, तभी जाकर ले आऊँगा।"

श्यामा को राहत मिली।

सचमुच क्या कीमत होगी भला उन पतली चद्दर के फूटे-छिते बर्तनो की। और अगर यह बेच ही देता तो लौट कर आता क्यो, वही से हवा हो जाता।

इसलिए जब नरेन की झूठ धीरे-धीरे समझ मे आई तब श्यामा उसके साथ पहली घटना का कोई योग-सूत्र नही खोज सकी पर अब मगला की बातो से सारा मामला साफ-साफ समझ मे आ गया।

"अब प्रसव का प्रबन्ध करोगी या बर्तन खरीदोगी।" ऐसा कह फिर एक बार मुँह मे तमाखू ठूस मगला चली गई।

पर श्यामा को नीद कहाँ। उधार लेकर कुछ हो सकता है पर पूरा खर्च कैसे निकलेगा ?

आखिर माँ को लिखना ही पडा। माँ ने खत का जवाब तक नही दिया। केवल पाँच रुपये भेज दिए और शायद माँ से सारा विवरण सुन कमला ने और भी दो रुपए अपनी ओर से छिपाकर भेज दिए।

हाय—यदि बडी दीदी की अवस्था भी अच्छी होती तो। मन-ही-मन श्यामा अपने भाग्य को कोसती, 'कहते है आठवे गर्भ का लडका पहले मरता है। मेरा भी वही हाल है, जो सहायता कर पाता, भगवान् ने पहले उसका ही सर्वनाश कर डाला। मुझे सताने के लिए ही भगवान् ने यह जाल रचा है।'

जीवन-निर्वाह की सारी दिशाएँ जब घोर अन्धकार से आच्छन्न हो गईं, जब भविष्य की आलोक-रेखा कही नजर नही पडी, तभी अकस्मात् एक समाचार श्यामा को सुनाई पडा। उसने सोचा शायद अँधेरी रात के बाद अब उषा की स्निग्ध किरणे एक नवीन पथ का सन्धान दगी।

उसने सुना कि दो बार एक ही श्रेणी मे अनुत्तीर्ण होने से अम्बिकापद का स्कूली जीवन खत्म हो गया और दामाद अभयपद ने उसे अपने ही दफ्तर मे कही नौकरी दिला दी है। यानी अम्बिकापद अब कमाऊ पूत हो गया।

यही तो रास्ता है—आगे बढने का, जिसके अन्त मे प्राचुर्य और जीवन-यात्रा की निश्चिन्तता है।

हालाँकि अम्बिकापद हेम से तीन-चार वर्ष बडा था पर उससे क्या, हेम भी तो चौथी कक्षा मे पढ रहा था। कुछ ही महीनो मे पाँचवी कक्षा मे आ जाएगा। वैसे विद्या मे कोई विशेष अन्तर तो है नही। यदि अम्बिकापद दफ्तर की नौकरी कर सकता है तो हेम क्यो नही कर सकेगा ? हेम तो अम्बिकापद से कही अधिक चतुर और फुर्तीला है।

श्यामा ने एक दिन दामाद को बुलाया हेम के द्वारा। लेकिन अब वह पहले की तरह दामाद को अक्सर नही बुलाती—कारण, दामाद जब भी आता कुछ-न-कुछ अवश्य साथ ले आता। हर प्रकार की वस्तुएँ कभी एक लालटेन (दफ्तर से गायब की हुई), थोडा-बहुत अनाज, तो कभी थोडा-सा मिट्टी का तेल। सभी वस्तुएँ काम आ जाती। जरूरत होने पर ही दामाद वस्तुएँ ले आता पर श्यामा शर्म से सिकुड जाती। दामाद अभाव देखकर जो भी सहायता करता उसे ग्रहण करने मे श्यामा के आत्मसम्मान को ठेस जो पहुँचती-थी।

अभय आया तो रसोई की देहरी पर बैठ गया। उसके हाथ मे एक छोटी-सी गठरी थी, जिसमे दो नारियल तथा थोडा-सा गुड़ (बडा बाज़ार मे मिलता है ईख

का गुड—पर बिल्कुल सूखा हुआ। उसे लोग कुछ मुक्त गायो को खिलाते थे पैसे-दो पैसे सेर बिकता था यहाँ।)और साथ मे तार का एक छोटा बण्डल भी था। हेम को लक्ष्य कर वह बोला,—"तुम लोगो को कपडा सुखाने मे दिक्कत होती थी न? यह तार इसीलिए लाया हूँ—रसोईघर की खिडकी तथा सोने के कमरे की खिडकी से बाँध देना।"

श्यामा ने दामाद को बुलाया था पर साथ-ही-साथ जलपान की व्यवस्था भी कर दी थी, चार चन्द्रपली और दो पके केले दामाद के सामने धर दिए और स्वय थोडी दूर पर घूँघट काढकर बैठ गई। इतने बडे दामाद से बगैर घूँघट के बाते करने मे उसे हमेशा शर्म लगती थी।

अभय ने आदत के मुताबिक दो मिठाई और एक केला खाकर तश्तरी अलग रख दी। चाहे जितना दिया जाए आधे से अधिक वह कभी नही खाता, अत. पहले से ही जरा अधिक दिया जाता था आजकल।

यह आदमी भी बडा विचित्र है। श्यामा अभी तक दामाद को पूरी तरह पहचान नही पाई थी। खूबसूरत चेहरा रहने पर भी कभी बालो मे कघी नही फिराता, हजामत नही बनाता। पोशाक भी कोई खास अच्छी नही रहती, जीन का कोट और घुटनो तक धोती पहने रहता है। खुद ही धो-धाकर पहनने का आदी है। शादी के बाद कई महीने जरा अच्छे कपडे पहनकर आया-गया पर अब वही अपनी रोज की पोशाक पहने चला आता है।

जलपान समाप्त कर अभयपद ने दो बार खँखार कर गला साफ किया और कहा, "माँ, मुझे बुलाया था?"

घूँघट से हल्की-धीमी आवाज मे श्यामा बोली, "सोच रही थी मेरे हेम की कहीं नौकरी नही हो सकती? सुनती हूँ अम्बिकापद को कही नौकरी दिला दी है तुमने?"

पल भर रुककर अभयपद ने कहा, "अम्बिका ने तो कुछ लिखा-पढी की है—इसलिए उसे एक किरानी की नौकरी दिला सका। नही तो हमारे इस कुली-मजूरी के काम मे किसी जाने-पहचाने को बुलाने की इच्छा नहीं होती।"

"पर बेटा", जरा गर्व से बोली श्यामा, "हेम भी कुछ कम लिखा-पढा नही है। वह अभी चौथी कक्षा मे पढ रहा है, कुछ महीने बाद पाँचवी कक्षा मे आ जाएगा। अपने अक्षय बाबू की ही बात ले लो, काफी बड़ी नौकरी करते है—सुनती हूँ वे तो और भी कम पढे लिखे है। कहते है, ऐसा ही होता है।"

"पहले होता था, आजकल अब उतना आसान नही है। बगैर अंग्रेज़ी जाने आजकल के साहब लोग नौकरी नही देना चाहते। वैसे भी पढे-लिखे कितने ही लडके तो घूमते रहते है। हेम की अभी उम्र ही क्या है?"

"उम्र—चौदहवाँ चल रहा है।"

"यह भी एक मुश्किल है। कम उम्र के लड़के को साहब लोग किरानी के स्टल

पर नही बैठाना चाहते । खैर कोशिश करूँगा मै ।"

उस दिन कोई आश्वासन न दे पाने पर भी दो-तीन सप्ताह बाद एक दिन अभयपद स्वय ही आया । बाबू की तो कोई नौकरी खाली नही है और रहने पर भी छोटे-से लड़के को—जो कि दफ्तर का काम क्या होता है कुछ जानता नही—देना नही चाहते । हाँ रग के कारखाने मे एक काम है—लेबिल साँटने का । तनख्वाह दस रुपये । वहाँ लगाना चाहे तो लगा सकती है । एक बार लग जाने पर फिर क्या चाहिए, काम भी सीखेगा और अगर आँख-कान खुले रखकर दफ्तर का हिसाब-किताब समझ लिया तो हो सकता है वही दफ्तर मे किरानी की जगह भी मिल जाए । वहाँ मेरे जाने-पहचाने लोग है ही, कुछ-न-कुछ उपाय निकल ही आवेगा । क्यो, आपका क्या ख्याल है ?"

श्यामा जरा नाराज हो गई । अपने भाई के लिए तो दफ्तर मे जगह निकल आई ! विद्या-बुद्धि मे तो दोनो समान है, हाँ उसकी उम्र जरा बडी है, बस इतना ही तो । केवल इसीलिए मेरे लडके के लिए दफ्तर मे जगह नही मिली ? इस ओर से अन्य साधारण स्त्रियो की तरह नासमझ ही थी श्यामा । उसने यह भी सोचा कि छोटा भाई हेम से अधिक पढा है शायद यही प्रमाणित करने के लिए दामाद ने उसे किरानी की नौकरी दिलाई है ।

पल-भर चुप रह श्यामा बोली, "सो तो जानती हूँ । अच्छी नौकरी मिलने लायक भाग्य लेकर तो वह जन्मा नही है । अभागा जहाँ भी जाता है, दुर्भाग्य दस कदम उसके आगे रहता है । दूसरे लोगो को तो जाते ही अच्छी नौकरी मिल जाती है, बेटा, मेरे हेम की भला क्यो लगने लगी ? नही तो मेरी कोख मे क्यो आता ?"

क्षण-भर के लिए अभय की भौहे सिकुड गईं—सिर्फ एक लमहे भर के लिए । श्यामा को इसका आभास तक न लगा ।

उसने कुछ देर रुककर कहा, "तो इसे रहने दे । देखूँ जरा दूसरी ओर कोशिश करके ।"

श्यामा व्याकुल हो बोल उठी, "नही-नही बेटा, वृथा चेष्टा करने से कोई लाभ नही । उसके भाग्य मे ही नही है । कही हाथ आई यह नौकरी भी निकल न जाए । फिलहाल जहाँ जगह खाली है तुम उसे वही लगा दो । मुझसे अब और नही सहा जाता ।"

अभय जरूरत से ज्यादा बाते नही करता था । सास की बातो का कोई गूढ अर्थ वह निकाल पाया या नही—उसका आचरण देख यह भी विदित न हो सका । किसी के रूठने से विचलित होने का स्वभाव ईश्वर ने उसे दिया ही नही था । शान्त भाव से उसने कहा—"कल सुबह साढे छ' बजे उसे खिला-पिलाकर तैयार रखिएगा, मैं आकर साथ ले जाऊँगा ।"

"सुबह साढे छ बजे! —तो फिर उसकी पूजा-अर्चा ?"

"पहले ही कर लेगा। आठ बजे हाजिरी होती है—पूरा डेढ कोस का रास्ता है—पहले दिन जरा जल्दी ही जाना पडेगा। केवल पहुँचा देने से ही तो काम नही चलेगा, काम शुरू होने के पहले साहब से भेट करनी होगी। फिर मुझे भी तो अपने काम पर जाना है। कह-सुनकर एक घण्टे की छुट्टी मजूर करा पाया हूँ—नौ बजे मुझे भी अपनी जगह पहुँचना है।"

अभयपद चला गया।

डेढ कोस का फासला तय कर नित्य जाना-आना। आठ बजे की हाजिरी दस रुपए तनख्वाह। सिर्फ चौदह साल का लडका।

श्यामा का मन डगमगाने लगा। जी मैं आया कि दामाद को बुलाकर ना कह दे, पर यह नही कर पाई वह। उसकी जीवनी शक्ति क्षीण हो चली थी। अब अकेले निभा पाना उसके लिए असम्भव था।

मगला यह सुनते ही बोली—"अरी यह तो खुशखबरी है। किसी प्रकार एक बार लग जाने से ही बस काम हो गया—नही तो नौकरी क्या दूध-भात समझ रखी है ? आज दस हैं पर बीस होते कितनी देर लगेगी ? नसीब खुला है री तुम्हारा, अब और क्या चाहती हो ? सवा पाँच आने का परसाद चढा दे, अदूल की सिद्धेश्वरी पर चढा आना, पहली तनखा मिलते ही। हमारे बाबा को भी परसाद चढाना, उसी की किरपा से सब हुआ है, समझी ?"

"अवश्य चढाऊँगी। उससे एक रुपया निकाल सत्यनारायण की कथा भी कराऊँगी। भला कैसे न करूँगी ? उन्ही की तो माया है सब।"

सारी रात श्यामा सो न सकी। मन-ही-मन मनसूबे बाँधती, रह-रहकर आशका भी होती, 'क्या जाने, हेम के भाग्य मे क्या बदा है, हो सकता है ऐसा ही रहे और उन्नति न कर पाए। कभी श्यामा अपने मन को डाँटती, स्वप्न देखने का समय अभी नही आया है। कौन जाने क्या हो ? भाग्य मे कुछ हो तभी न। नही तो श्रीवत्स राजा जैसा हाल होगा, भूँजी मछली भी भाग जाएगी।'

पर मन क्यो मानने लगा। आशा-निराशा के पालने मे झूलता रहा मन श्यामा का। कभी वह चिन्ता करती, कभी सुनहरे सपने देखने लगती। उसका अपना मकान होगा, बाग-बगीचा, तालाब। किसी की लाञ्छना या गर्जन-तर्जन नही सुनने पडेगे। अपने मकान, अपनी गृहस्थी की वही मालकिन होगी। बहू, पोते, पोतियाँ, एक हरी-भरी दुनिया होगी।

दूसरे ही क्षण वह अपनी कल्पना पर आप ही लज्जित हो उठती। अभी से इतनी आशा लगाना ठीक नही। उसके भाग्य मे क्या बदा है कौन जाने !

इस प्रकार आशा-निराशा मे बैठे-बैठे सारी रात गुजर गई। चार का भौपू बजते ही वह हडबडाकर उठी। हेम काम पर जावेगा उसके लिए अभी से भात पकाना होगा।

# सप्तदश परिच्छेद

## 1

महाश्वेता पति से रोज पूछती, "मँझले देवर की शादी का क्या किया ?"

अभयपद अन्यमनस्क हो उत्तर देता, "बस, इस बार उसी की शादी होगी।"

"यह तो रोजाना की बात है। पर दरअसल होगी कब ? नौकरी करते वर्ष-डेढ वर्ष हो गया, अब क्यो देर करते हो ? मुझ अकेली से अब सारा काम नही होता। खटते-खटते यह हाल तो हो गया ?"

पर दूसरी ओर से इसका कोई जवाब नही मिलता। अभयपद गहरी नीद मे सो जाता। रोज यही हाल होता। महाश्वेता ऊब जाती, पर इलाज ही क्या था ? दिन-भर भलेमानस की सूरत भी नही दीखती। भोर होते ही दफ्तर जाने की पडती। जाडो मे तो तब रात ही रहती। एक ही दफ्तर मे दोनो भाई काम करते थे, पर इससे क्या ? अम्बिकापद 'बाबू' होने की वजह से नौ बजे हाजिर होता और मिस्त्री होने के नाते अभय को आठ ही बजे हाजिर होना पडता। फिर अम्बिकापद की हिमाकत भी कम नही थी। कहा करता, "जरा सुनने मे खटकता है इसलिए मिस्त्री कहता हूँ, नही तो दफ्तर के साहब लोग तो 'कुली' ही कहते है। हिसाब खाते मे भी कुली ही लिखा हुआ है।" "बाबू बनता है, अठारह रुपए का बाबू !" यह बाबूगिरी देख महाश्वेता के बदन मे आग लग जाती। साफ-धुली कमीज रोज चाहिए—अब कहता है कि चादर भी ले जाया करेगा। सारा जुल्म महाश्वेता पर ही होता है, कपडो का खार और मैल धोते-धोते सारा बदन अकड जाता है, कभी-कभी तो हाथ उठाने मे भी तकलीफ होती है। और ये भी एक भलेमानस है। उनसुनि स्टेशन से आजकल गाड़ी चलती है पौन कोस का रास्ता पैदल चलकर रेलगाड़ी मे चढने से ही चलता जैसा कि मगला का देवर करता है पर नही। हठ ठान रखा है। पैदल ही जाएँगे। मानो किराए के पैसो बिना गिरस्ती चलने वाली ही नही। सो भी यदि राह चलते साहबो की नजर पड जाए तो वे गाडी मे बिठा लेते हैं, नही तो चार कोस रोजाना आना-जाना कोई मजाक है क्या ?" मन-ही-मन महाश्वेता इसी तरह बक-झक करती रहती।

अभयपद पर इसका कोई असर नही पडता। रात रहते-रहते निकल जाता और रात होने पर लौटता। छुट्टी तो सिर्फ एक रविवार के दिन होती, पर उस दिन भी घर मे टिकता तब न। दुनिया भर के फिजूल के काम अपने सर मढ लेता। कही जगल साफ कर रहा है, तो कही घास-फूस और लकड़ी का पहाड

बना रहा है, बागबानी का शौक तो था ही। एक और भूत सवार हुआ था कि राजमिस्त्री का काम सीख कर अपने-आप अपना मकान बनाया जाए। अत पुरी मिलते ही जहाँ कही भी नया मकान बनता होता, मुँह बाए वही खडा देखता रहता। उस हालत मे महाश्वेता अपनी बाते कहती तो कब ?

दिन-दहाडे पति से बाते करने की मनाही थी। लुक-छुपकर कहने का अवसर मिलता तो दो-एक बाते चट-पट कह लेती। पर भलामानस ऐसा मौका दे, तब न?

एक अवसर था रात को। पर कितनी ही जल्दबाजी क्यो न करे, अभयपद के सोने को जाने के बाद कम-से-कम डेढ घण्टे पहले तक महाश्वेता को फुर्सत नही मिलती। दोनो भाई साधारणत साथ-साथ खाने बैठते सो भी पाँच मिनट। फिर उसी पत्तल मे बाल-बच्चे—छोटा देवर, ननद—खाने बैठते थे। उनको खाते झगडा-फिसाद करते-करते कम-से-कम आधा घण्टा तो लग ही जाता। फिर पत्तलो की झूठन बटोरकर महाश्वेता खाने बैठती थी। झूठा भात फेकना गुनाह था। साथ-ही-साथ बासी भात भी खाना पडता। सास का हुक्म था, "गृहस्थ घरो मे कभी नपी-तुली रसोई नही होनी चाहिए कौन जाने कोई अतिथि-अभ्यागत, भिखारी या गरीब-दु खी कब आ जावे ? दोपहर को भी किसी को मुट्ठी-दो मुट्ठी खाने को न मिले यह तो बडी शर्म की बात है। जो बिल्कुल नपी-तुली रसोई करते है उनके घर लक्ष्मी भी अधिक दिन वास नही करती, उनके वश की वृद्धि नही होती। इसमे सद्गृहस्थ की प्रतिष्ठा घट जाती है। दो-चार मूठ चावल ले लो, भात फेका तो नही जाएगा—तुम और मैं ही तो हूँ।"

वैसे भिखारी तो रोज ही आते रहते है। इस घराने का नियम ही विचित्र है कटोरी से चावल या अनाज देने की सख्त मनाही है, उनके सामने पत्तल मे भात परोसा जाता है। भिखारी भी इस बात से वाकिफ हो गए है, जिसे जब भोजन करने की इच्छा होती है या अन्यत्र कही कुछ नही जुटता तो इस द्वार पर आ खडा होता है। यदि वैसा ही कोई भिखारी आ जाता तो राहत मिलती, नही तो 'पखाल भात' (पानी मे भिगोया, बासी भात) महाश्वेता को ही खाना पड़ता। वैसे यदि अधिक होता तो सास भी खा लेती पर वे तो केवल एक ही बार भोजन करती थी, दोपहर को तब भला वह अकेली कितना खाती ? वैसे आने-जाने वाले भी लगे ही रहते। खाने के वक्त देहात मे कोई रिश्तेदारों के यहाँ नही जाता। आँगन से ही हाँक लगाते है, जरा लकडी जलानेवाले चूल्हे पर दो मुट्ठी चावल चढा दो। साग-पात तो सभी घरो मे है, और चूल्हे की भी कोई कमी नही। किसी के परेशान होने की बात वे कभी नही सोचते। महाश्वेता के लिए भी यही अच्छा था।

जो हो, पखाल भात हो या इकट्ठी झूठन, महाश्वेता को सब-कुछ सह-सा गया था बस केवल जरा पहले छुट्टी मिल जाती। सब के खा-पी चुकने पर सास

आवाज लगाकर कहती, "बहू, जरा मेरे लिए दो मुट्ठी 'मूडी' तो दे जा।"

पहले कभी नही कहती। बलिहारी इस आदत पर। कई बार महाश्वेता अपने खाने से पहले ही पूछ लेती, "माँ, आपके लिए कुछ लाऊँ ?"

"ठहरो बहू, अभी कुछ खाऊँ या नही, यही नही ठीक कर पा रही। पेट तो बगैर कुछ खाए मानता नही, पर मुँह मे कुछ रुचता ही नही है।"

लेकिन खाए बगैर एक दिन नही जाता। सन्ध्या-पूजा समाप्त कर वह एक बार जो रसोई की देहरी पर आकर बैठती तो फिर हटने का नाम नही लेती। माला एक हाथ मे रहती पर जबान से पाँच पकवानो का नाम ध्वनित होता रहता। मायके मे काफी अच्छी-अच्छी चीजे खाई थी—जिनका बखान वे रोज ही करती थी। इसी बीच लडके लौट आते और जरा सुस्ताकर खाने बैठते, तब उनके साथ गप-शप भी होती। वे लोग अपने दफ्तर की बाते करते और माँ, चाहे समझे, या न समझे, बडी लगन से बाते सुना करती। तो भी वे यह न सोच पाती कि रात को कुछ खाना है या नही। महाश्वेता के खा चुकने पर अचानक वे फरमाइश कर बैठती। तब तेल से भाँखकर मूडी देनी पडती, घर का खीरा बचता तो काटकर देना पडता वरना नारियल की गिरी से ही काम चल जाता। दुनिया भर के अनाज भुँजे रखे रहते, जब जो चाहती तेल या गुड के साथ अच्छी तरह सानकर देना पडता। महाश्वेता को इसकी कोई शिकायत नही थी। वह सिर्फ इतना चाहती थी कि जरा पहले से क्यो नही कहती ? झूठे बर्तन बटोरकर रसोई धो-धाकर दूसरे दिन के खाने की तैयारी कर जब वह सास के सामने आ बैठती तब सास चबेना चबाती। केवल खाने मे कही इतना समय लगता है, गपशप भी करती। अपने बचपन और किशोरावस्था की आपबीती सुनाती।

"बहू, कलकत्ता कहने को तो शहर है पर श्यामपुकुर मे आज भी बाघ दहाडते है।"

"कौन कहता है, मैंने तो कभी नही सुना माँ।"

"यह कैसे बताऊँ कि क्यो नही सुना, पर तुम्हारी शादी के पहले ही वहाँ दो बाघ मारे गए थे।"

"वह तो बहुत दिन पहले की बात है, माँ।"

"बहुत दिन कहाँ हुए है, बेटी, मैं क्या बहुत अरसे से बूढी हुई हूँ ?" जरा झुँझलाकर सास कहती।

महाश्वेता सहम जाती। किसी दिन कहती, "जानती है री बहू, डाक घोडा-गाड़ी से जाती है। छ-छ सात-सात कोस पर बडे-बड़े अस्तबल है उन्ही को डाकखाने कहते है। वही घोड़े बदले जाते है जिसे डाक-बदल कहते है। इन डाकखानों मे चिट्ठी-पत्र भी चढ़ा-उतरा करते है। बड़े-बडे राजा-महाराजा इसी

प्रकार घोडो की डाक-बदल कर देश-विदेशो मे घूमते है।"

नीद भरी ग्राँखे भरसक फाडे रहती महाश्वेता। किसी-किसी दिन प्रतिवाद कर कहती, "पर माँ मैंने सुना है ग्राजकल तो डाक रेलगाडी से ग्राती-जाती है।"

सास दृढ कण्ठ से प्रतिवाद करती, "मैने पिताजी के मुँह से कितनी ही बार सुना है। तो क्या वे झूठ बोलते थे?"

"वह तो बहुत दिन पहले की बात है, तब डाक वैसे ही जाती थी।"

"बहू, बलिहारी है तेरी बुद्धि की। ग्ररे सरकारी इन्तजाम कही बार-बार बदला करते है! उस वक्त एक ग्रौर जमाना था ग्राज दूसरा है—ऐसा भी कही हो सकता है? किसी दूसरे से ऐसा मत कहना—लोग हँसेगे।"

काफी रात बीते तक यही चला करता, समय का कोई ग्रन्दाज नही था, महाश्वेता सिर्फ इतना जानती थी कि सास जब खा चुकती है तब रात्रि की गहरी निस्तब्धता मुहल्ले मे साँय-साँय करती है। गली मे ग्रादमी का नामो-निशाँ नही होता—ग्रगर कोई जगा भी रहे तो यह समझना एक तरह से ग्रसम्भव-सा हो जाता है। सिर्फ जिस दिन टेगरा का बाप शराब पीकर हो-हल्ला करता है ग्रौर उसकी माँ रोती रहती है उसी दिन मुहल्ले मे जरा सरगर्मी महसूस होती है। शराबी नाम सुनते ही महाश्वेता के हाथ-पाँव थरथराने लगते है। शराबी को इतने पास मे देख उसका कलेजा धडधडाने लगता है। लगता है कि इससे तो यह गुम-सुम ग्रधेरी काली नागिन-सी रात ही कही ग्रधिक ग्रच्छी है।

सास के खा चुकने पर महाश्वेता को सब कुछ झाड-पोछकर रसोई मे ताला लगाकर पुन सास के शयनकक्ष मे ग्राकर हाजिरी देनी पडती। सास दीये के उजाले मे पान लगाती, बच्चे ठीक सोये है या नही यह देख लेती नही तो उन्हे ग्रच्छी तरह सुला देती। फिर बहू की ग्रोर देख सस्नेह कहती—"बहू, ग्रब तू भी सो जा—ग्रधिक रात क्यो कर रही है, बेटी? झपकी ग्रा रही है। ग्रब चली जा, मुझे ग्रौर कुछ नही चाहिए।"

तब कही महाश्वेता को फुर्सत मिलती। उस समय ग्रभय एक दूसरी ही दुनिया मे खो गया होता। इसमे उसका कोई ग्रपराध नही था। तडके ही उठकर ग्राफिस ज़ाना पडता। दिन मे विश्राम तो वह जानता ही नही था। सोना तो दूर रहा—बैठने तक की फुर्सत नही मिलती थी।

महाश्वेता रोज ही उस पर नाराज होती। कभी-कभी तो उसे रुलाई ग्रा जाती। मन-ही-मन वह सास पर जल-भुन उठती, 'राक्षसी, डायनी! खाती रोज है पर पहले से नही कहती।'

गुस्से मे ग्राकर वह सशब्द किवाडे बद कर लेती। दूसरे कमरे से सास रोज़ चिल्ला उठती, "धीरे बहू धीरे, डर गई क्या? ऐसा करने पर भला ये किवाड कितने दिन टिकेगे?" कमरे से ही ग्रावाज़ लगाती, पर सुबह होते ही सब-कुछ भूल

जाती। इसलिए महाश्वेता को डर भी नही लगता। दनदनाकर वह पैर पटककर चलती, अकारण ही सन्दूक आदि पटकती, आखिर इतने पर भी जब अभय की नीद न उचटती तो बिस्तरे पर बैठ पैर दबाने लगती।

तब अभय की नीद जरा उचट जाती। अस्फुट स्वर मे वह पूछता, "कौन अच्छा, बडी बहू। आओ सो जाओ। पैर दबाने की जरूरत नही, रात काफी हो गई है।"

महाश्वेता को आशा बँधती। वह कुछ कहना चाहती पर दूसरे ही क्षण अपनी निर्बुद्धिता पर आप ही चिढ उठती। जब असहनीय हो उठता तो अभय को धकेल-कर कहती, "धन्य है यह आदमी! इससे तो पत्थर के साथ गिरस्ती बसाना कही अधिक अच्छा है।"

इस पर अभय जरा आँख खोलकर हँसता। एकाध बात भी करता, कभी-कभी प्यार भी करता। उस दिन अपने सारे सवालो के जवाब महाश्वेता को मिल जाते। पर ऐसे मौके बहुत कम आते। अधिकतर तो उसे अपने भाग्य को धिक्कार कर बिस्तरे पर पडे-पडे अफसोस ही करना पडता। परिश्रम उसे भी कम नही करना पडता, तो भी न जाने क्यो उसे नीद ही नही आती। आन्तरिक आशा, निराशा, क्षोभ, रोष, अभिमान सारी रात उसे उत्तेजित और उद्वेलित किये रहते। बाँस के कुज से आती डरावनी आवाजे निस्तब्ध रात को और भी भयकर बना देती। महाश्वेता अपने पति को जकड लेती, उसके सीने मे अपना सिर छिपा लेती। देखते-देखते उसकी दोनो आँखो मे नीद छा जाती। पति की देह के स्पर्श व गध से उसकी सारी वेदना, सारा अभिमान रफू हो जाता, आशा व आश्वासन से उसके कोमल प्राण नवजीवन प्राप्त कर लेते।

## 2

एक दिन ऐसी ही एक अनमोल घडी मे जब अभय पूरी तरह से होश मे था महाश्वेता के एक सवाल के जवाब मे बोला, "अरे ठहर जाओ और थोडे दिन। एक कमरा और बना लूँ नही तो कहाँ खोका सोयेगा।"

छोटे भाई को खोका (मुन्ना) कहकर ही पुकारता था अभय कभी-कभी।

महाश्वेता के सारे जोश पर मानो पाला पड गया। बोली "बाप रे, पहले कमरा बनाओगे तब ब्याह करोगे देवर का। रहने दो। तब तो सालो बीत जाएँगे। तब तो हो गई यह शादी।"

"ना-ना, अब ज्यादा दिन नही लगेगे। बस अब काम शुरू होने ही वाला है। खोका के पैसो मे से एक धेला भी खर्च नही किया मैंने। सब-के-सब उसी के पास रहते है। उन्ही मे से कुछ लेकर एक कमरा और बना डालूँगा।"

अपने पति की बात पर महाश्वेता को बहुत ज्यादा भरोसा था। पर इस बार

वह सचमुच निराश हो गई। मन-ही-मन कहने लगी, 'अरे रहने भी दो। शादी की अब भली चलाई।'

किन्तु सचमुच अभय ने काम शुरू कर दिया, दो-एक महीने के भीतर। और एक अजीब तमाशा रहा। मकान बनाने वाले राज-मिस्त्री को बुलाते है, मजदूर रखते है—पर अभयपद की तो बात ही निराली थी। उसने नाम के लिए मज-दूर बुलाए, नीव खोदने मे मदद के लिए। वह सिर्फ इतवार को ताकि वह खुद भी साथ हाथ बँटा सके। फिर आगे का काम जैसे शुरू हुआ, कहाँ थे मजदूर और राज-मिस्त्री ? अभयपद के 'अपने हाथ ही जगन्नाथ' बन गए। आफिस से घर आते ही वह जुट पडता इमारत के काम मे। एक पाँच हाथ की धोती बाँधे वह दीवार चिनने मे मशगूल हो जाता। मसाला तैयार करने से लेकर ईंट-चूना ढोने तक सब खुद ही करता। पहले हाथ के पास ही ईंटे इकट्ठी कर लेता, फिर दीवार चिनता। कभी-कभी मसाला वगैरा घट जाता तो अम्बिका आकर एक कढाही-भर मसाला पकडा देता था, बस। इससे अधिक और किसी को हाथ लगाने ही नही दिया अभय ने।

शुरू-शुरू मे तो महाश्वेता को हँसी आई। कही पागल तो नही हो गया ? यह ठीक है कि उसे बहुत-सी ऐसी कलाएँ आती है पर मकान खडा कर लेगा, भला क्या राज-मिस्त्रियो की तरह ! उसने एक बार हँसकर कहा भी था, "हि हि हि, क्यो खामखा पैसे बरबाद किए जा रहे हो। कैसे हो जी तुम ?" पर चन्द दिनो मे ही उसकी-भावना पलट गई, जब उसकी आँखो के सामने एक पूरी दीवार धीरे-धीरे खडी होने लगी। ठीक वैसी ही दीवार, बिलकुल वैसी ही, जैसी कि दूसरो के घर पर उसने देखी थी। उसके विस्मय की सीमा न रही। आँखे फाड-फाडकर देखने लगी वह। फिर एकाएक काम करते हुए पति के पास आकर फुसफुसाकर पूछा उसने, "क्यो जी, यह तो बिलकुल दीवार-सी ही लग रही है।"

कन्नी उठाकर बाईं हथेली से माथे का पसीना पोछकर पल-भर उसकी ओर ताका अभय ने, फिर मुस्कराकर कहा, "क्यो दीवार-सी नही दीखेगी तो और क्या ? तुमने सोचा था बाँस के बेडा की तरह लगेगी ?"

सुनकर झेप-सी गई महाश्वेता। बोली, "नही, नही मैंने यह कब कहा ?" दफ्तर से बिना पूछे लाए भारी गेदारा, कुदाली, फावडे आदि औज़ारो को बडी आसानी से चलाता था अभयपद। देख-देखकर दग रह जाती महाश्वेता। पीछे से घूँघट की आड मे से खडी होकर देखती रहती, देखती ही रहती। भारी बोझ उठाते वक्त अभय के पीठ पर गोरे-गोरे पुट्ठे उभर आते और फिर दूसरे ही क्षण समा जाते। उसके सुन्दर चेहरे पर, माथे पर, गर्दन पर पसीने की बूंदे भी बडी अच्छी लगती।

आदमी खूबसूरत है, इसमे कोई शक नही। मन-ही-मन यह स्वीकार किया

महाश्वेता ने। कभी सोचती 'शायद दाढी न होती तो और भी खूबसूरती बढती।' फिर सोचती 'इतने गोरे जो है काली दाढी भी खूब जँचती है इनके चेहरे पर।'

सोये हुए पति की पीठ थपथपाकर पूछती है, "क्यो जी, हाथ-पैर दर्द कर रहे है न ? बदन दबा दूँ जरा ? बाप रे, कितनी मेहनत का काम है !"

नीद से भरी आवाज मे अभय जवाब देता है, "अरे नही, नही, सो जाओ तुम। इतनी रात गए अब तुम्हे हाथ-पैर नही दबाने पडेगे।"

कुछ शर्म के मारे, कुछ डरी-डरी-सी लेट जाती महाश्वेता। धीरे-से लिपट जाती है पति के बदन से।

सोचती रहती, उनके आगे मै कितनी छोटी हूँ। इतनी-सी नन्ही-सी।

× × ×

आखिर के दो-तीन दिन के लिए एक मिस्त्री, दो मजदूर भी बुलाए गए। लेकिन हाँ, काम खतम हुआ कि बाकायदा एक कमरा तैयार हो गया। मुहल्ले के लोगो ने भी अच्छी तारीफ की, लो इनकी तकदीर अब फिर से खुली है। साथ-साथ महाश्वेता की भी तारीफ हुई, 'कुछ भी कहो, बडी दुलहिन बडी ही सौभाग्यवती है।' उनकी बाते सुनकर महाश्वेता खुशी से फूली न समाई। फिर जिस दिन दीवार-पुताई खतम हुई चुपके से महाश्वेता ने आकर अपने पति के पैर छूकर प्रणाम किया।

"अरे यह क्या ?"

"मान लिया जी, तुम वाकई उस्ताद हो।"

पर वह खूब नाराज हुई सब सुनकर। सास ने खुद ही कहा, "इतनी मेहनत से बनाया है तूने, तू ही क्यो नही रहता उसमे। अम्बिका तो उस छोटे कमरे मे भी सो सकता है।" पर अभय ने जवाब दिया, "नही, नही। मुझे क्या जरूरत है नये कमरे की ? मै तो बस यही मजे मे हूँ। अम्बिका ही रहेगा उस कमरे मे।" मानो कोई सत बोल रहा हो ! अरे बाबा ! संतपन का ढोंग क्यो किया जाए ! तुम ठहरे बडे भाई। तुम्हारा ही पहला हक होना चाहिए सब चीज मे। सो नही। कैसा बिगडे दिमाग का आदमी है यह। तालाब के किनारे बर्तन माँजते-माँजते शायद उस निर्जन तालाब की मछलियो को ही अपने दु:ख की सारी बाते सुनाने लगी महाश्वेता।

और भी सुनो। इतने दिन तक अभय तनख्वाह मिलने पर सास को ही लाकर देता था। अब महीनो से देख रही थी महाश्वेता कि अम्बिका को सारे के सारे रुपये दिए जाते है। ले अब तू ही सम्हाल घर-बार का मामला। अब मुझे रिहा कर दे इन सब उलझनो से। तुझे भी तो कुछ सीखना चाहिए। माँ के सर पर हम और कितने दिन तक बोझ लादे चलेगे ?

"क्यो जी, माँ के आसपास और कोई नजर नही आती है तुम्हे ? मै क्या दीख नही पड़ती हूँ ? माँ के बाद घर-दुआर की जिम्मेदारी तो मुझ पर ही आनी

चाहिए। मै ठहरी इस घर की बडी बहू। सास के पीछे मालकिन बनने का हक तो मेरा ही है और तो किसी का नही। अब मुझे मेरा घरबार सम्हालने दो। सो नही।"

एक दिन तो साफ-साफ कह डाला उसने। पर जवाब मिला, "अरे रहने भी दो। अभी तो निरी बच्ची हो। उस पर लिखना-पढना भी तो आता नही। तुम भला हिसाब कैसे रखोगी ?'

"ज़रा सोचो तो सही। बात सुनते ही मानो अग-अग मे आग लग जाती है। माँ ही मानो बडी पढी-लिखी औरत है। उन्होने फिर कैसे सम्हाला था इस परिवार का भार और वह भी इतने अर्से तक ?"

"पर गुस्सा करना भी फिजूल है। ज़रूरी बात सुनने तक की ही फ़ुर्सत नही तो भला लडने-झगडने की बात कौन सुने। उस पर इस ढग की बाते करो तो और भी मजा। ज़बान पर ऐसा ताला पड जाता कि पूछिए मत। हजार बार सर पटकते रहो, मुँह से आवाज ही न निकलती मानो अब पत्थर के पुतले बन गए हो।"

धीरे-धीरे मन की जलन तो मिट गई, लेकिन उस नये कमरे की ओर निगाह उठाकर भी ताक नही पाती महाश्वेता।

अम्बिका की शादी तय हो गई। दुल्हन बहुत दूर के रिश्ते मे भानजी लगती थी पर इतना दूर का रिश्ता कि ब्याह-शादी मे अड़चन नही पडी।

ग्यारह-बारह साल की सुन्दरी लड़की नाम था प्रमीला। दहेज मे सौ-एक रुपये नकद। दान के बर्तन और रेशम के कपड़े मिले दूल्हे को।

उलुबेरिया से करीब तीन मील के फासले पर थी अम्बिका की ससुराल। बड़े भाई के पीठ पीछे अम्बिका कुछ बडबडाया भी था, 'वाह, क्या खूब है यह शादी और ससुराल! जाओ तो साथ ही खाने के लिए अनाज भी लेते चलो। या रास्ते मे भूखे रहो। घुटनो तक धोती उठाये और कीचड पारकर मीलो पैदल चलो। तब पहुँच सकोगे ससुराल। और दादा को भी क्या कहूँ। जरा भी तो अक्ल से काम लेना चाहिए था।

उम्र मे महाश्वेता की बराबर की ही होगी पर साहस मे कही अधिक थी प्रमीला। बात असल मे यह थी कि इस घर मे महाश्वेता तो बचपन ही मे आई थी। शायद यही वजह थी कि अपनी सास के आगे मुँह खोलने की आदत उसे कभी न पडी, स्वभाव से भी वह कुछ नरम मिजाज की थी। पर प्रमीला की प्रकृति कुछ और ही थी। कोई भी बात क्यो न हो, मुँह पर कह देने मे वह कभी न हिचकती। वह थी भी जरा शरारती। नई-नई आई थी घर की दुल्हन। इसी के बीच एक दिन पेड पर जा चढी। तैरने मे तो मानो उसका जवाब ही नही था। जिठानी की तरह-तरह की कमजोरियों को देखकर तो प्रमीला सचमुच चिंतित हो उठी, "मैया री, तुम्हे तैरना भी नही आता ? आओ चलो मैं तुम्हे अभी सिखा दूँ। नही-नही, इसमे डरने की कोई बात नही है। यह तो पकडो इस गगरी को। उलट दो उसे। हाँ, अब

देखो कितनी आसानी से तैर सकोगी इसके सहारे। लगा लो उसे छाती के साथ, हाँ। अब हाथ-पैर पटकते रहो। अरे-अरे डरो मत। अरे मैं तो यही हूँ।"

पर महाश्वेता डर के मारे पीली पड गई, "ना बाबा। यह नही होगा मुझसे। तुम्हारे पैरो पडती हूँ, छोड दो मुझे। बडा डर लग रहा है।"

हँस-हँस के उसकी आँखो पर पानी छलकाकर प्रमीला ने कहा, "लो चलो। नाजुक-सी कली कही की। अच्छा जाने दो, आज पहला दिन था, पर मै तुम्हे तैरना सिखा के ही छोडूँगी। देख लेना हाँ।"

विवाह-उत्सव का समारोह खत्म होते ही इस घर की स्वाभाविक जीवन-यात्रा के रूप धीरे-धीरे प्रमीला के आगे ज्यो-ज्यो प्रकट होने लगे त्यो-त्यो उसका विस्मय बढता गया।

"क्यो दीदी, इस घर के लोग क्या सब्जी-तरकारी नही खाते ? जान पडता है, मछली भी नही मँगाते ?"

"अरे तरकारी के टुकडे भी तो मिलते नही, तू कर रही है मछली की बात। इस घर की यही रीति है। तरकारी-भाजी जो भी है सो मर्दो के लिए। हम औरतो के लिए कुछ भी नही। अरे अभी तो आई ही हो। देखो आगे-आगे और क्या तमाशे होगे। अभी तो मानो शुरुआत ही है।" बडी-बूढियो के ढग से बाते की महाश्वेता ने।

"अरे छोडो जी। मै ऐसी बदी नही कि जो मिले वही खाऊँ, बैठी-बैठी ? यह सब मजाक मे ठीक किये देती हूँ।" दूसरे दिन ही तालाब मे नहाते वक्त प्रमीला ने कहा, "ऐ, दीदी, जरा पकडो तो यह अँगोछा। ठीक से, कसके पकड़ो।"

"क्यो री, क्या करेगी मझली बहू ?" पूछा महाश्वेता ने।

"देखो न कितनी मछलियाँ पानी मे घूम रही है। फँसा लूँगी अगोछे मे।"

"अरी माँ! अगोछे से मछलियाँ पकड़ेगी ? जा-जा रहने दे क्यो मजाक करती है।"

"अरे नही। तुम देखो तो सही। दो-चार तो जरूर ही पकड लूँगी। और तो सब खा-पी चुके है। बचे है बस हम दोनो। दो-चार मछलियाँ पकडी कि मजा आया। जाते ही भूँज लूँगी। और नही तो करोगी क्या ? भूखे मरोगी। अपने राम से यह सब नही होगा, बाबा। अभी कहे देती हूँ।"

दो-चार बार कोशिश करते-करते सचमुच पकड मे आ ही गई कुछ मछलियाँ। एक केले के पत्ते मे लपेट के रख ली तालाब के किनारे, प्रमीला ने। उस पर एक ईंट भी रख दी। फिर खुशी-खुशी उछल पड़ी। तालाब में तैर-तैरकर नहाने लगी। नहाना भी ऐसा-वैसा नही। कम-से-कम चार बार तालाब को तैर-तैरकर पार करना। उसकी हिम्मत देखती और हैरान हो जाती महाश्वेता।

बोली, "तू मछली पकाएगी तो माँ कुछ कहेगी नही ?"

"अरे वाह। कहेगी क्या ? अच्छी बात है चलकर देखूँगी।"

घर जाकर प्रमीला ने खुद ही सास से पूछा, "क्यो माँ, नहाते समय अँगोछे से मछलियाँ पकडी है हमने, दो-चार मछलियाँ है। छोटी कडाही मे भून लूँ ?"

अब सास भी कहे तो क्या, बोली, "हाँ, हाँ पकालो बेटी। कौन-सी है ? मोरेला ? कितनी लाई हो ? दो-एक दुग्गा के लिए भी रख छोड़ना, खाएगी शाम को।"

मछलियाँ साफ कर छोटी कडाही मे डालकर चूल्हे पर चढाते ही प्रमीला ने कहा, "देखा दीप्ति, अब की बार जब मायके से आऊँगी न, तो साथ-साथ काँटा-बसी भी लाऊँगी। फिर देखना मछली कैसे मारी जाती है ?"

"अरे राम ! तू औरत होकर काँटे से मछली मारेगी। गाँव के लोग क्या कहेगे ?"

"क्या कहेगे लोग ? कहने दो। मै भला किसी की परवाह करती हूँ। दोपहर को चुपके से करूँगी। किसी को पता ही न चलेगा। हाथ मे लिपटी कई गज सूतली किसको नजर आएगी ?"

कई महीने के बाद प्रमीला पीहर से लौटी तो सचमुच उसके बक्से के अन्दर मछली फँसाने की बसी और सूतली निकली।

महाश्वेता की जान मे जान आई। सब दिन मछली नही भी मारी तो क्या और भी बहुत-सी कलाओ मे माहिर थी मँझली बहू। कभी-कभी तालाब से गेडुँए मारकर अपने हेयर पिन से खाल खुरचकर माँस निकालती और पत्तल पर इकट्ठा करती, फिर चुपके से प्याज काटकर उन्हे भून लेती। पहले-पहल महाश्वेता को इन सब खाद्यो से बडी नफरत थी, पर प्रमीला खीचातानी करने लगी फिर धीरे-धीरे उसकी भी आदत पड गई। प्याज़ तो पहले इस घर मे लाना ही मना था। प्रमीला ने अपने पतिदेव से लड-झगडकर उसे मँगाना शुरू किया। इसके अलावा इन दिनो कुछ तरकारी भी बचने लगी। एक दिन तो प्रमीला ने अपनी सास को कुछ खरी-खोटी भी सुना दी। बोली, "क्यो माँ, उतनी थोडी-सी तरकारी रखने की क्या ज़रूरत है ? हम दोनो घर की बहुएँ जो ठहरी। बिना साग-भाजी के ही भात खा लेगी। हमे तो इसकी आदत ही है।"

सास ने झेपकर जवाब दिया, "राम राम ! ऐसी क्या बात है ? नही-नही बडी बहू, कल से सब्जियाँ कुछ ज्यादा ही काटा करो। तुम भी क्या कमाल की कजूसी करती हो।"

प्रमीला से और भी एक सबक सीखा महाश्वेता ने जिसकी कोई जानकारी उसे पहले कभी नही हुई थी।

अचानक एक दिन तालाब के पास उसके गले से लिपटते हुए प्रमीला ने पूछा, "तेरे पास दो रुपये होगे दीदी ? इस रास के मेले मे मै एक चीज खरीदूँगी।"

मानो आसमान से गिर पडी हो महाश्वेता। बोली "रुपये ! और मेरे पास ? मैं

रुपये कहाँ से लाऊँगी, पगली ?"

"आहा ! ढोंग करती हो। रुपये कहाँ से लाऊँ। जैसे मैं कुछ समझती ही नही। औरतो के पास भला रुपये-पैसे आते कहाँ से है। मैं भी तो सुनूँ, जरा।"

अब समझी महाश्वेता—"आहा ! यह बात है। हाय रे नसीब ! फिर तो तूने खूब पहचाना अपने जेठ को। अरे भाई, वह आदमी ही कुछ निराला है। तनख्वाह के सारे रुपये तो तेरे दूल्हे के हाथ पर धर देता है। तुझे क्या मालूम नही है ?"

"अरी माँ वह तो घर के खर्चे के पैसे है। क्या तेरे हाथ मे दो-चार भी नही आते ?"

"फूटी कौडी भी नही।"

"झूठ। मैं नही मानती।"

"तेरी कसम, मँझली। मैं तेरा बदन छूकर कहती हूँ। चाहे कोई भी सौगध ले ले।"

"खिल-खिलाकर हँस पडी प्रमीला। फिर हँसते-हँसते उसकी आँखो मे आँसू आ गए। उफ, कितनी नादान लडकी हो तुम ? वाकई तुम्हे देखकर दिली दुख होता है मुझे।"

"मै क्या करूँ—वे यदि पैसे ही न दे तो ?"

"अरी ओ, निपट अनाडी ! यो ही वे झूठ-मूठ तुझे क्यों पैसे देने लगेगे ? पैसे तो वसूल करने पडेगे। झगडेगी, लडेगी, गुस्सा करेगी तभी तो वे पैसे देगे। नही तो क्या यो ही ? मुफ्त मे कौन देगा ? आडे मौके पर कभी तेरे पास कुछ भी पैसे नही होने से कैसे चलेगा ? अरे पगली, औरत है तो क्या हो गया, हम भी तो आखिर इन्सान ही है। क्या हमे खुशी-गमी नही होती ? कभी दो पैसे खर्च करने को जी चाहा तो क्या हमेशा मर्दोंका मुहताज होना पडेगा कि कब वे कृपा करे हाय राम ! फिर तो हो गया काम।" हँस-हँसकर लोटती रही प्रमीला।

महाश्वेता दग होकर बैठी रही। मानो एक नई दुनिया उसकी आँखो के सामने धीरे-धीरे खुली जा रही थी। उसकी शक्ल ही दूसरी थी। उसे देखकर शका हो उठी उसे।

# अष्टादश परिच्छेद

## 1

छोटी-सी लडकी। पर उम्र के लिहाज से बहुत ही ज्यादा चालाक दीखती थी। अभी से हर बात मे उसकी अपनी राय थी। अपना पक्का विचार। राय भी उसकी बडी साफ-साफ और तीखी-तीखी होती। उस बच्ची के मुँह से, उसके नन्हे नरम गले से जब वैसी पक्की-पक्की वजनदार बाते निकलती तब रासमणि तक दग रह जाती—और खडी-खडी उसका मुँह ताकती।

शुरू-शुरू मे तो सभी उसकी बातो मे मजा लेते थे चूँकि चार-पाँच साल की बच्ची ही तो थी अभी। पर अब ऐन्द्रिला की बाते, उतनी पसन्द नही आती। लगता है कि लडकी बहुत ज्यादा बोलती है। होशियार तो है लेकिन ज़रूरत से ज्यादा है!

किसी के बदन का काला रग उसके मन को नही भाता। घर मे जो ग्वाला दूध देता था उसका रग काला था। उसका लाया दूध पीने से ऐन्द्रिला ने इन्कार कर दिया।

मइया री, कितना तो काला है! पसीना क्या चूता है मानो बदन से स्याही चूती है! और यह कहा भी तो उस आदमी के सामने ही। उमा तो पानी-पानी हो गई!

उस दिन रासमणि ने खूब डाँटा भी उसे। तब से कुछ सावधान ज़रूर हुई थी पर काले-गोरे का ख्याल ज्यो का त्यो था। काली चीजो से इतनी नफरत थी कि मछलियो मे से कोई भी काली मछली नही खाती थी। मिट्टी की बनी हाँडी अगर काली पड जाती तो इसमे भी उसे काफी नाराज़गी रहती थी। पर इस बात पर ज्यादा कुछ कहने की हिम्मत नही करती थी वह। सिर्फ रासमणि की गैरहाजिरी में ही उमा को सुनाती "मौसी जी, अभी तक तुम मिट्टी के बर्तनो मे क्यो रसोई करती हो! यह तो गाँव के लोग करते हैं—कोयला नही मिलने की वजह से। तुम्हारे यहाँ तो कितने कोयले भरे पडे है। फिर भी लकड़ी क्यो जलाती हो?"

बीच-बीच मे जब कमला आती, तभी मुँह बिचकाकर हँसती और कहती (आवाज़ हालाँकि नीची ही रहती। रासमणि के आगे जबान चलाने की हिम्मत किसी को नही पडती थी।) "मुँहजली, देखना तेरा दूल्हा ज़रूर काला ही आएगा!"

ऐन्द्रिला अपने पतले रगीन होठो को बिचकाते हुए कहती, "ओहो! बड़ा आया दूल्हा बनने! घर से झाड़ू मार-मारकर उसी दम न भगादूँ तो कहना!"

"तो फिर तेरे सिर पर भी तो आफत आएगी। तुझे कौन खिलाएगा-पिलाएगा?"

"क्यो," ऐन्द्रिला की आवाज़ और भी तीखी ही रहती, "मौसी की तरह मैं भी गुज़ारा करूँगी। लडकियो को पढा-पढाकर काम चलाऊँगी। मौसी जो ससुराल

नही जाती तो क्या वह खाये-पिये बिना थोडे ही रहती है ? वह भी तो अच्छी तरह खाती-पहनती है !"

"चुप-चुप, पगली,"—झिझककर कमला कहती। कमला ही फिर शर्म से सिर झुका लेती—क्यो उसने झूठ-मूठ इस लडकी से ये सब चर्चाएँ की। यदि उमा के कानो तक ये बाते पहुँची तो !—छि-छि !

आवाज़ दबाकर वह ऐन्द्रिला से कहती, "छि छि बेटी। ऐसी बाते तुम्हे कभी नही करनी चाहिए। छोटा मुँह और बडी बाते। नानी सुनेगी तो बहुत नाराज होगी।"

मुँह फिराकर ऐन्द्रिला ने जवाब दिया, "अरे छोडो भी नानी की बाते। उन्हे तो बात-बात मे नाराजगी आती है।"

कमला कह सकती थी पर कहा नही कि मौसी की तरह पढाने के काम मे भी थोड़ी-बहुत दूसरे प्रकार की योग्यता की भी जरूरत होती है। और यही एक ऐसी चीज़ थी जिसमे ऐन्द्रिला को जरा भी दिलचस्पी नही थी। उमा तो बाज आ गई थी—दो साल तक उसने कोशिश की, लेकिन दूसरे दर्जे की चौखट ऐन्द्रिला पार ही नही कर सकी। पढाई छोडकर और सभी बातो मे उसे दिलचस्पी थी। सुबह चार बजे नानी के साथ गगाजी मे स्नान—ऐन्द्रिला का पहला नम्बर। कभी गगाजी तक जा न पाती तो उस दिन घर मे तडके ही नहा-धोकर तैयार हो जाती। नानी के लौटने से पहले ही पूजा की तैयारी कर लेती—चन्दन घिस देती, फूल-पत्ते सजा देती। सब कुछ तैयार रखती। रासमणि हर रोज शिव-पूजा करती थी। ये सब उसी की तैयारियाँ थी। पूजा समाप्त होती तो वह उमा के साथ जुट जाती रसोई के काम मे। तरकारी काटना, दूध उबालना ये तो सब हैं ही, कभी-कभी खाना भी पका लेती। उमा ने उसे रोकने की कोशिश भी की कई बार।—"क्या जरूरत है बाबा। पराए घर की लडकी है। उस पर भी कवारी। कभी कुछ हो गया, कही आग-वाग से जल गई तो व्यर्थ ही कहा-सुनी होगी।" किन्तु ऐन्द्रिला मानती ही नही। रोती, झगडती, मान मनोबल करती। फिर रासमणि को कहना ही पडता, "दे उसे रसोई करने दे—यदि इतना ही शौक है, उसे तो। क्या पता कही किसी दुखी घर मे शादी हुई तो रसोई तो क्या जूतो की सिलाई से लेकर पूजा-पाठ तक सभी करना पडेगा, जैसे महाश्वेता करती है। करे वह रसोई, कुछ तो आदत हो ही जानी चाहिए।"

घर का काम वह हँसी-खुशी करती। दीबट मे बत्ती बालना, लालटेन साफ-सुथरी करना। दोनो मे तेल भरना। बिस्तरे बिछाना—उमा जब घर पर नही रहती तब ये सारे काम ऐन्द्रिला ही कर डालती। सच पूछो तो थकी-माँदी उमा मन-ही-मन इन कामों से छुटकारा पाकर ऐन्द्रिला का आभार ही मानती थी। यहाँ तक कि शाम के खाने की तैयारी भी ऐन्द्रिला ही करती थी। साग-भाजी काटकर

चूल्हा तैयार करती, मैदा या आटा गूँधकर सब कुछ तैयार रखती। उमा आई कि कपडे बदलकर सन्ध्या-वन्दन करती, इतने मे वही आग भी सुलगा देती। बची रसोई, वह तो दोनो मिलकर कर डालती। लूची या रोटी और कोई एक भाजी उसमे समय ही क्या लगता।

रासमणि तो रात को दूध के सिवाय और कुछ नही खाती थी। पैसो की कमी के कारण आजकल रात-दिन की नौकरानी रखना भी सभव नही था—गिरिबाला काम करके चली जाती। माहवारी दो रुपए तनख्वाह मिलती उसे। रूखा-सूखा खाना-पीना भी हो जाता कुछ। सर्दी के दिनो मे तो किसी-किसी दिन उमा दोपहर को ही दोनो वक्त का खाना बना लेती। शाम को लकडी जलाकर ऐन्द्रिला सिर्फ दूध उबाल लेती और सुबह की बनी सब्जी गरम कर लेती।

श्यामा अपनी माँ के पास कभी-कभी चिट्ठी लिखती . "ऐन्द्रिला के लिए शहर से ही कोई दूल्हा आप ही चुन ले, माँ। चूँकि मेरे गर्भ का वही सबसे बढिया 'फल' है—इसलिए देहातो मे धान सिझाने और गोशाला साफ करने मे फँसा देने के लिए उसे ब्याहने को मन नही चाहता। उमा के खतो से जान पडता है कि पढने-लिखने मे तो उसका मन नही लगता तो फिर शादी-ब्याह के बारे में ही सोचा जाए।"

रासमणि खत पढकर मन-ही-मन हँसती। उस हँसी मे कठिनता की झलक दिखाई देती। चिट्ठी लेकर हेम आता। उसके आफिस मे तरह-तरह की शीशी-बोतले आया करती। विलायती शीशियाँ। हेम उनमे से दो-एक जब-तब अन्दर दबा लाता। किसी इतवार के दिन, सारी की सारी गठरी में बाँध सीधा कलकत्ता आ जाता—कभी पैदल तो कभी गाड़ी मे। कलकत्ता के बाजारो मे शीशी-बोतल ऊँची कीमत पर बिकते। बेच-बाचकर पैसे लेकर नानी के घर पहुँच जाता। दिन भर वही रहता फिर खा-पीकर शाम को घर चला आता।

पर ये शीशी-बोतल वाली बात रासमणि तक पहुँचती ही नही। हेम की उम्र कम थी तो क्या अपनी नानी को उसने इतना तो पहचान ही लिया था कि इस ढग की चोरी का व्यापार उनसे नही सहा जाएगा। रासमणि सोचती थी कि यो ही अपनी बहन से मिलने के खयाल से हेम हर इतवार को यहाँ आ जाता है। यह सोचकर उनको खुशी ही होती। "चलो भाई-बहन मे मेल है, यह अच्छी बात है।"

श्यामा की चिट्ठी का जवाब उन्होने हेम को जबानी ही दे दिया, "क्यो रे, मुसीबतो मे फँसते-फँसते, तकलीफे सहते-सहते, कही तेरी माँ पागल तो न हो गई? मैं भला यहाँ ब्याह-शादी कैसे तय करूँ? न तो कोई मर्द बच्चा है यहाँ न मैं किसी के घर मिलने-जुलने ही जाती हूँ। मैं दूल्हा का पता कसे लगाऊँ? नाई (घटक) से तय कराकर उमा की हालत अपनी आँखो के सामने देख ही रही हूँ। उसे कहना मेरे नाम से कि वही अपने जाने-पहचाने किसी घर मे अपने आस-पास

ही कोई अच्छा लडका चुन ले। लडकी उसकी कौन-सी ऐसी हूर की परी है कि गोशाला साफ करने मे मर जाएगी ?"

हेम ने सिर झुकाकर इन कडवी बातो के घूँट पी लिए। फिर यही सदेशा माँ से कह दिया।

श्यामा को बडी झुँझलाहट हुई। कहा, "कैसी व्यर्थ की बाते करती है माँ। घटक के तय करने से क्या अच्छी ब्याह-शादी नही होती क्या कभी किसी की ? हाँ, हमारी तो तकदीर ही फूटी है कोई क्या करेगा ?"

मुस्कराकर हेम कहता, "तकदीर की बात जब कर ही रही हो. फिर कही भी अपनी बेटी की सगाई क्यो नही कर देती हो ? उसकी तकदीर मे जो होगा सो तो होके रहेगा ही।"

"तू चुप रह, जा अपना काम देख !" श्यामा ने डाँट दिया हेम को।

"हाँ, सुनो तो। नानी ने और भी कुछ कहा है। बोली कि इन सब ब्याह-शादी की बातो मे रुपए-पैसे की बात तो आती हीहै। मुफ्त की बातो मे कुछ नही रखा। श्यामा से पूछना कि वह कितने रुपए खर्च कर सकेगी।"

मुँह बनाकर श्यामा ने कहा, "रुपए-पैसे यदि मैं ही खर्च करूँगी तो किस लिए अपनी बेटी को उनके घर छोड़ रखा है, मुफ्त की नौकरानी है क्या जो सारा काम-काज करती है ?"

माँ के मुँह से इस तरह की नासमझी भरी बाते सुनकर हेम चौंक पडा। थोडी देर रुककर फिर उसने कहा, "तो फिर माँ तुम उसे वापस क्यो नही बुला लेती ? क्या ज़रूरत है उसे पराए घर मे रखने की ?"

"देखूं तो जरा। शायद और कोई तरकीब सूझे। क्या काली माई इतना भी सहारा न देगी ?"

## 2

एक दिन की बात है। दोपहर के समय अचानक घनघोर घटाओ से चारों दिशाएँ अन्धेरी हो गई। सब काम छोडकर उमा छत पर दौडी चली गई। ऐसे बे-मौसम की काली घटाएँ देखने मे उसे बडा मजा आता था। कैसे चारो तरफ़ अँधेरा छा जाता है। मीठी-मीठी ठडी हवा के झोके आते है और फिर चारो ओर के ठोस अधेरे मे भी दिक-चक्र की रेखा से एक अनोखी रोशनी की हल्की झलक दिखाई पडती है। लहरो की तरह काले-काले बादल लुढकते हुए आते और धीरे-धीरे सारे आसमान को ढँक देते। एक अजीब-सी गडगडाहट होने लगती। उमा को ऐसा लगता कि मानो महाप्रलय का क्षण बस आ ही गया है और देर नही है। आकाश के तमाम बादल बडे-बडे काले-काले भारी पत्थरो की भाँति अभी-अभी सारी दुनिया पर टूट पडेंगे—कूद पड़ेगे, सब कुछ तोडते हुए, मिटाते हुए,

लाने की कोई जरूरत नही। ये तो अभी-अभी चूल्हे की गर्मी से सूख जाएँगे।"

"हाँ ऐसे ही तो काम चलेगा। भीगे कपडो मे बैठी रहो—फिर बीमार पडो। जाऊँ मै ही नीचे जाऊँ। मुझी को यह भोग भुगतना है।" कहते-कहते उमा के रोकने से पहले ही एक बडा अँगोछा सर पर ढँकती हुई ऐन्द्रिला दौडकर नीचे चली गई। फिर उसी तरह एक सूखी साडी सीने से लगाये ऊपर चली आई।

"लो पकडो। आफत तो मेरी ही है।"

उसे क्या, उसके कहने का ढग इतना मजेदार होता था कि उमा को हँसी रोकना मुश्किल हो जाता।

"ठीक तो है, पर अब तेरे कपडे भी तो भीग गये है। अब मैं क्या तेरे लिये कपडे लाने नीचे नही जाऊँगी ?"

"नही नही। कोई खास नही भीगे। ऊपर से अँगोछा जो ओढे थी।"

"अब बोल। कौन-सी इतनी जरूरी बात थी ? क्या कहना चाहती थी उस वक्त ?" कपडे बदलते-बदलते उमा ने पूछा।

"सुना नही तुमने ? गिरि मौसी नमक खरीदने गई थी सो बाज़ार मे नमक ही नही मिला।"

"नमक नही मिला ? क्यो ?"

"दूकानदार ने कहा कि अब विलायती नमक नही बेचा जाएगा। मुहल्ले के नौजवानो ने स्वदेशी आन्दोलन मे नाम लिखा लिया है। वे सरकारी नमक बेचने की इजाजत नही देते। अब सेधा नमक ही खरीदना होगा। उसमे पैसे भी ज्यादा लगेगे और वह भी देखने में लाल-लाल, खाने मे किरकिरा-सा, मिट्टी का ढेला-सा होता है न।"

"दूसरी दूकाने भी तो है ? गिरि से कहा नही तूने ? नकद पैसे जब दे ही रही है तो ··"

"सब दूकानो पर चक्कर काटा था उसने। सारे छातूबाबू के बाज़ार मे विलायती नमक का व्यापार बद पडा है। है तो वैसे सभी के पास, पर किसी को हिम्मत नही कि बेचे। केवल विलायती नमक ही नही, विलायती कपड़े भी अब नही बिकेगे।"

आज ही नही कई दिनो से ऐसी ही बाते सुनाई पड रही थी उमा को। अपनी छात्रा के घर पर ऐसी ही कुछ जोरदार चर्चाएँ होने लगी थी, जोकि उसके कानो तक आ ही जाती थी। बडे लाट कर्जन ने बगाल के दो टुकड़े कर दिये हैं। सारे बगालियो का सत्यानाश करने बैठे है अग्रेज। जान पडता है कि बगालियो पर रौब जमाने के लिए और उन्हे कमज़ोर बनाने के इरादे से ही यह व्यवस्था की जा रही है। यही वजह थी कि सब पढे-लिखे खफा हो गए। विलायती चीज़े खरीदना बिलकुल बंद कर दिया। सब मिलकर यही कहते थे कि यही रास्ता है

गोरो को ठीक करने का। इसी तरह उनकी रोटी मारी जाएगी। इस सिलसिले मे पहले सिर्फ विलायती कपडो का जिक्र ही सुना था उमा ने। नमक की बात तो अभी सुन रही थी।

उमा की भावना की मानो प्रतिध्वनि ही हुई—ऐन्द्रिला के मुँह से। उसने कहा, "कपडे खरीदने नही देगे, फिर तो मुसीबत का ठिकाना ही नही रहा।"

उमा ने कहा, "न खरीदने देगे तो न सही। हमे कौन-सी फिक्र लगी है? हम तो करघे के कपडे पहनते है।"

एकदम से बदन हिलाकर विचित्र ढग से बोली ऐन्द्रिला, "तुम्हारी तो बात ही न्यारी है मासी। मैं तो गरीबों की बात कर रही थी। फरासडाँगा के कपडे पहनने की ताकत तुममे भले ही हो, हमारे अन्दर कहाँ है?"

जरा शर्मिदा होकर उमा ने बताया, "मैं तो सुन रही हूँ कि बम्बई के पास ही कही पर सूती कपडे का मिल खोला गया है। उसी से कुछ-न-कुछ प्रबन्ध होगा जरूर।"

"अरे रहने भी दो। वही तो गिरि मासी भी कहती थी। वहाँ के कपडे क्या कपडे होते है। थैली-जैसी मोटी-मोटी साडियाँ उस पर भी दूने दाम। बारह-चौदह आने मे विलायती धोती-साडी जैसा कपडा नही मिलने वाला।"

बात काटकर उमा ने कहा, "इस पर ही सोचकर क्या करेगी, जो सबके लिए होगा वही हमारे लिए भी होगा।"

"माँ अगर सुनेगी तो वह तो एकदम उछल ही पडेगी।"

और भी कुछ बडबडाकर ऐन्द्रिला चुप हो गई। उमा से कुछ भी आश्वासन न मिला। इस तरह की बातो का अन्त प्राय इन दोनो के बीच ऐसा ही होता था।

सचमुच श्यामा तो उछल ही पडी एकदम।

मगला ने हाथ-पैर नचकाते हुए उसे सुनाई यह खबर। "सुनी है बामनी तूने, स्वदेशी आन्दोलनकारियो की कारिस्तानी?"

"नही तो माँ। किनकी कारिस्तानी?"

"अरी वही स्वदेशी-स्वदेशी नारा लगानेवालो की करतूतें। देश के सारे जवान छोकरे बाबू एक हो गए है—कहते है कि अब यहाँ अग्रेज नही रहेगे, उन्हे भगाकर ही पानी पीएँगे वे। जितने बेकार निखट्टू इधर-उधर घूमनेवाले छोकरे थे, सब-के-सब जुट गए है एक साथ। कुछ-न-कुछ लगाए रहते है।"

"पर वे चाहते क्या है, असल मे?" श्यामा फिर भी इस नई खबर का ठीक-ठीक अर्थ नही लगा पाई।

"अरे यही कि कोई विलायती कपडे नही पहनेगा, विलायती नमक या चीनी नही खरीदेगा—सबका बायकाट करना होगा। इसी को बायकाट करना कहते हैं।"

श्यामा ने बडी इत्मीनान की हँसी हँसकर कहा, "कोई यह नही खरीदेगा तो

काम कैसे चलेगा ? आप तो बेकार परेशान हो रही है ।"

"अरे नही, नही। कल हमारे 'कर्ता' (पतिदेव) चीनी ला रहे थे खरीदकर। रास्ते मे ही उनसे छीनने लगे । बडी डॉट-फटकार की तो छुटकारा मिला ।"

"तब तो बडी मुश्किल होगी । चाय कैसे पीएँगे वे । उन्हे तो चीनी वाली पीने की आदत है ।"

"यही तो कहती हूँ । वे कहते है कि गुड से चाय पियो ।"

थोडी देर चुप रहकर फिर श्यामा ने कहा, "ये सब चन्द दिनो की बाते है माँ, देखना जल्दी ही मिट जाएँगी । आप क्या कहती है ?"

"हाँ, मैंने तो यही कहा था कि विलायती कपडे न पहनेगे तो पहनेगे क्या ? किसकी ताकत है कि रोज-रोज फरासडाँगा और शान्तिपुरी कपडे पहनेगा," लेकिन अब आवाज नीची करके बताने लगी मगला, "वे तो कहते है कि 'मामला बहुत बढ गया है । कही नौकरी से भी हाथ न धोने पडे ।' पता नही क्या होगा ।"

श्यामा डर गई। बात सचमुच चिन्ता की ही थी ।अक्षय बाबू के लिए श्यामा को कोई फिक्र नही थी । उनकी नौकरी चली भी जाए तो दिक्कत नही होगी। उसे अपनी फिक्र लगी थी, खासतौर से हेम के बारे मे । गए महीनो से उसकी तनख्वाह के बारह रुपये आने लगे थे । आगे और भी बढने की उम्मीद थी । भगवान् ने चाहा और साहब की नेक निगाह मे आ गया तो (हालाँकि श्यामा को यह नही मालूम था कि नेक निगाह मे कैसे आया जाता है । सिर्फ इतना आभास था कि खुश-किस्मती से ऐसा हो जाए, तो बस) फिर कोई फिक्र ही नही रहती । अब ऐसे मौके पर देखो तो भला कही-न-कही से एक आफत आ खड़ी होती है रास्ते मे।

वह मन-ही-मन सुलगती रही, गालियाँ देने लगी । ये स्वराज वाले भी क्या हैं, और कौन है उसे मालूम नही । उसे यह भी नही मालूम था कि क्यो ये इतना शोर-गुल मचा रहे है । क्या इनकी माँगे है ? इससे कहाँ कुछ नुकसान हो सकता है, उसकी अपनी क्या हानि हो सकती है, और स्वदेश की खातिर इन्सान को अपना स्वार्थ-बलिदान क्यो करना पड़ता है, तकलीफ और परेशानियाँ उठानी पडती है। ये सारी बाते श्यामा की समझ के बूते के बाहर थी। सिर्फ इस आन्दोलन की बदौलत किसी भी दिन हेम की नौकरी चली जा सकती है । बस, इसकी सम्भावना से ही श्यामा भभक उठी, "मरे मुँहजले । हैज़े की बीमारी से सब-के-सब आज ही क्यो न मर जाएँ ? सब-के-सब निर्वंशी हो ! और कोई समय नही था क्या इनके पास हम गरीबो पर ही इतने जुल्म, इतनी ज्यादती ?"

हेम ने कई बार उसे समझाने की और शान्त करने की चेष्टा भी की, "अरे जाने भी दो माँ ! क्या रखा है नौकरी मे ? बारह रुपए की तनख्वाह ऐसी कौन-सी बड़ी बात है ? पूजा-पाठ करके ही कही से भी मैं इतना तो कमा ही लूंगा ।"

इस पर श्यामा ने उसे उलटे डाँटा ही, "चुप रह तू । बड़ा आया समझदार

कही का !"

किन्तु श्यामा की गालियाँ उस विशाल जल समुद्र तक नही पहुँच पाईं। आन्दोलन तेज़ से तेज़ होता गया। एक दिन सुना गया कि अक्षय बाबू के हाथो से विलायती कपडे छीनकर कुछ छोकरो ने जला डाले। तरह-तरह की बाते फैलने लगी। कलकत्ता मे कुछ लोग कहते कि खूब खलबली मच गई है—पता नही किसी भी दिन आग भभक उठ सकती है। इन सब कामो मे भाग लेने की वजह से अक्षय बाबू के दफ्तर के भी कई लडको की नौकरियाँ चली गईं है। एक दिन हेम के ऑफिस के साहब ने भी सबको चेतावनी दे दी कि होशियारी से काम-काज करे। इस आन्दोलन मे शरीक होने वालो की नौकरी छूट जाएगी। भयभीत श्यामा ने हेम को दुबारा सावधान कर दिया, "देखना! खबरदार, उन बदमाशो, कामचोरो से मिलना-बोलना नही। मै बार-बार मना कर रही हूँ। हे दुर्गा माँ, रक्षा करना मेरे बच्चे की!"

× × ×

बहुत दिनो बाद फिर एक दिन नरेन आया। साथ ही अँगोछे मे चीनी बँधी थी। विलायती चीनी।

बकते-बकते ही अन्दर आया वह, "न ढाल, न तलवार, निधिराम सरदार—सिर्फ जबानी जमा-खर्च से ही अग्रेज भगा सकते तो क्या परवाह थी! न कुछ काम न काज! धक्कडी करते हैं, फक्कड कही के।"

श्यामा ने हैरान होकर पूछा, "पर इतनी चीनी कहाँ से मिली? मैंने तो सुना है कि ये चीनी खरीदने ही नही दे रहे है।"

"अरे यही तो सुविधा हुई, जानती है हेम की माँ, असल में अकल चाहिए अकल। समझी? 'अकल बडी कि भैंस?'—अँ उहूँ हूँ! इससे बिलकुल हाथ मत लगाओ। यह मैं अका (अक्षय बाबू) सरकार को बेचूँगा। उसे चीनी की चाय की आदत है। मरा जा रहा है चीनी के बिना। दूने दाम लूँगा।"

"पर मिली कैसे, यह तो बताओ?"

"अरे एक साहब का चपरासी खरीदकर ले जा रहा था। छोकरो ने जो हमला किया तो मैं तो मौजूद ही था। सबसे आगे जाकर छीन ली। यह तो मैं समझ ही गया था कि यह अब साहब को मिलने वाली नही। फिर क्या था? शोरगुल के बीच मे माल लेकर नौ-दो-ग्यारह हो गया। माल भी पाँच सेर से कम नही।"

प्रसन्न होकर हँसने लगा नरेन्द्र। फिर पैर फैलाकर आराम से बैठी श्यामा से तम्बाकू देने की फरमाइश की और फिर एकदम गालियाँ शुरू कर दी—"बेवकूफ कही के! अरे रहने भी दे। स्वराज हो रहा है, खाक हो रहा है! सब चीजो की बरबादी हो रही है! मूरख की औलाद हैं सब!"

बहुत दिनो के बाद पति के साथ सहमत हो सकी थी श्यामा। वह खुश हो

उठी। और फिर दोनो पति-पत्नी जी भरकर बुराई करने लगे, गालियाँ देने लगे बेचारे अनजाने आन्दोलनकारियो को।

3

केवल एक रासमणि ही बची थी, जिन पर चारो ओर की सरगर्मियो का कोई असर नही पडा। वे सब कुछ सुनती गई, पर बोली नही कुछ। माँ की भावनाओ को भी उमा समझ नही पा रही थी। पहले तो माँ ऐसी नही थी। पता नही क्या हो गया उनको। आजकल कोई भी बातो मे नही रहती, न किसी वस्तु के बारे मे उनकी कोई जिज्ञासा ही है, न कोई दिलचस्पी। एक अजीब-सी उदासी छाई रहती है उनके चेहरे पर। उमा का मन आशका से भर उठा। उसने कमला से अपनी इस आशका को प्रकट किया था पर कमला ने यह कहकर टाल दिया कि "बुढापे मे जब तबियत खराब होती है तो ऐसा ही होता है, तू फिकर न कर।"

सचमुच रासमणि की तबीयत खराब थी। काशी से लौटने के बाद कुछ दिन तक तो वे अच्छी थी, पर फिर से सेहत खराब होने लगी थी। इन दिनो काफी कमजोर नजर आ रही थी। बुखार भी होता, प्रायः डाक्टर कहते कि पुराने मलेरिया की शिकायत है। वे कुनैन देना चाहते है पर रासमणि कुनैन खाने से इनकार कर देती। खूब नाराज होती और कहती, "नही, मुझे अब ज्यादा तग मत करो। क्या जरूरत है खामखा बुढापे मे इन सब दवाओ की? सुना है कुनैन से चक्कर भी आने लगते है, लोग बहरे हो जाते है।"

आयुर्वेदिक दवाओ से भी उतनी ही नाराज रहती वे। कौन करे इतना झझट। सर हिलाकर कहा, "ये पथ्य-परहेज नही निभेगे मुझसे अब। और इलाज करने से तो बीमारी ही छूटती है मौत कही इलाज से और दवाओ से दूर होने वाली है? इस बार तो मैं मौत की पकड मे फँसी हूँ तुम लोग समझते क्यो नही। मेरा समय बीत चुका है। उस पार से बुलावा आ रहा है। अब तो जाना ही है। और कब तक जिंदा रहूँ। कई दिनो से घरवालो को भी तो सपने मे देख रही हूँ। शायद अब याद आई है। इतने दिनो बाद।"

अपने पति के बारे मे कोई प्रसग रासमणि पहले कभी नही छेड़ती थी। आज यह भी एक आश्चर्य की बात थी। पति का नाम 'तुम लोगो के पिताजी का नाम' वे कभी नही लेती थी। उस जमाने मे बूढी महिलाएँ पति का जिक्र इस तरह नही करती थी। कोई अगर अपनी सन्तान से भी 'तुम्हारे बाप' कहती तो लोग उनका मजाक ही उडाते थे। इसलिए अपने पति के बारे मे कुछ भी कहते समय रासमणि 'घरवाले' आदि ही कहती थी।

नई चिकित्सा-पद्धति होमियोपैथी के एक डॉक्टर थे कालीपद बराट्। जब खूब बुखार बढ जाता और काँपते-काँपते बेहोश हो जाती रासमणि तब डर के मारे उमा

डा० बराट् को ही बुला लाती। एक छोकरे के सर पर लकडी का बक्स रखे डाक्टर बराट् ग्रा जाते। फिर मरीज के पास बैठते ही बहुत-से प्रश्न पूछते, एक के बाद एक लगातार! रोगिणी यदि होश मे होती तो वह भी उनके प्रश्नो से नही बचती। फिर हर प्रश्न का जवाब सुनकर डा० बराट् गभीरता से कहते, 'हुम्'। फिर दूसरा सवाल शुरू होता। इसी तरह बीस-पच्चीस मिनट बीत जाते।

फिर बहुत देर बाद एक ग्राखिरी हुम् के बाद पेटी खुलती। "ऐन्द्रिला, एक साफ पत्थर की बाटी मे थोडा-सा पानी लाग्रो तो बेटी।" कटोरे मे पानी ग्राता। फिर पेटी के भीतर से बडी सावधानी के साथ चुन-चुनकर एक-एक शीशी निकालते। साफ स्वच्छ पानी की तरह ही एक दवा होशियारी से कॉर्क के सहारे सिर्फ एक बूँद डालते उस पानी मे।

"ग्रोम श्री विष्णु। लो भाई, पिला दो, झट से पिला दो।"

पहले-पहल रासमणि पीने से इकार करती थी।

"यह ऐसी महकती क्यो है, डॉक्टर बाबू ?"

बात काटकर डॉक्टर साहब कहते, "क्यो शराब जैसी महक ग्रा रही है क्या? क्यो न हो, माँ? जो जिसका गुण है वह तो रहेगा ही उसमे। इसमे सुरा-सार जो पडा है। पर इसमे कोई दोष नही है, माँ, शास्त्र मे तो साफ लिखा ही है कि ग्रौषध के रूप मे सुरापान भी निषिद्ध नही है। कोई दोष नही है, सभी चलता है।"

इन दिनो रासमणि ग्रौर ग्रापत्ति नही करती, मानो किसी भी चीज मे ग्रब कुछ ऐतराज़ नही था उन्हे। बडी थकान के साथ मुँह फाड देती, कोई कुछ भी दवा डाल दे ग्राकर तो भी कोई फिक्र ही नही। पर इस पर भी मर्ज ठीक नही होता। तीन-चार दिन ठीक रहती फिर बीमार पड़ जाती। इस समय शायद पछाँह की ग्रोर जाना ग्रच्छा होता था। पर कौन ले जाता ग्रब? राघव घोषाल भी तो बीमारी से ग्रपग पडे थे। उनके बेटे ही काम-काज सम्हाल रहे थे। उमा भी नही जा सकती थी। सबसे बडा सवाल था पैसो का। कहाँ से ग्राते इतने पैसे? ग्राजकल तो हालत इतनी खराब हो चली थी कि गुजारा भी मुश्किल हो उठा।

रासमणि रोग-कष्ट भुगतती रही। जब कुछ ग्रच्छी हुई तो उदास मन से माला फिराती, पर ग्राँखे कही दूर-दूर जाकर ठहर जाती।

ग्राजकल गगा-स्नान भी बद हो गया था, इतनी दूर चलना ग्रसम्भव था ग्रब। कभी-कभी लगातार दो-चार रोज तक बुखार न ग्राता तो ऐन्द्रिला को साथ लेकर चल देती पर पैदल जाती तो वापस किसी तरह न ग्रा पाती। पालकी कर लेती। नही तो बीच रास्ते मे कई बार बैठ-बैठकर थकान दूर कर लेती ग्रौर फिर धीरे-धीरे चलकर ग्राती।

स्नान के घाट पर भी वही एक चर्चा थी। सुरेन बनर्जी, विपिन पाल ग्रौर रवि ठाकुर ने जवान लड़को को उत्तेजित कर रखा था। कोई भी विलायती चीज नही

खरीदेंगे, अग्रेजो को भूखे मारेंगे—यही धुन है उनकी। नमक, चीनी, विलायती कपड़े कोई भी चीज नही खरीदनी उनसे। अगर कोई खरीदता तो लोग उसे खूब सताते। स्वराज चाहने वाले छोकरे डरा-डराकर नाको दम कर देते।

रासमणि के कानो तक सारी बाते पहुँचती पर बस इतना ही कि वे सुन लेती। यद्यपि एक दिन ऐसा भी था जबकि वे अखबारो मे काफी दिलचस्पी रखती थी। उन दिनो एक-न-एक साप्ताहिक समाचार-पत्र उनके यहाँ नियमित रूप से आता था। रोज पढने की आदत भी थी उन्हे। काव्यो मे 'तिलोत्तमा-सम्भव,' 'गुलबकावलि', मधुसूदन दत्त का 'ब्रजागना', बकिम की 'दुर्गेशनन्दिनी', 'चार दर', 'गुलसनोवर' सरीखी कितनी किताबे भी थी उनके पास। शायद आज भी उनकी पेटी ढूँढने से मिल जाती। पयार छन्दो मे अनूदित 'बेताल-पचीसी' भी उन्हे पूरी याद थी। लेकिन अब वे मानो सब कुछ भूलती जा रही थी। किताबे भी अब उनका मन नही बहला पाती। एक दिन उमा ने प्रस्ताव किया, "क्यो माँ, कुछ पढकर सुनाऊँ ?" रासमणि ने गर्दन हिलाकर अपनी असम्मति जता दी, "रहने दो, अब अच्छी नही लगती पढाई।"

उमा समझ नही पाती क्या अच्छा लगेगा माँ को। पता नही रात-दिन क्या सोचती रहती रासमणि। पडौसियो के घर की छतों के ऊपर से उनकी निगाहे और भी कही दूर तक चली जाती। बैठी ही रहती वे, बैठी ही रहती। 'इतना क्या सोच रही है, माँ ? उमा की चिन्ता पार नही पाती, माँ के बारे मे वह कुछ भी अदाज नही लगा पाती। क्या ये रात-दिन अपनी बीती जिन्दगी के बारे मे ही सोचती रहती है ?' या अपनी तीनो बेटियो की बाबत फिक्र करती हैं कि उनके न रहने पर ये अथाह समुद्र मे न गिर जाएँ ? क्या वे यह सब कल्पना करती रहती हैं ?

उनके सूखे चेहरे से, उनकी उदास आँखो से कुछ भी अदाजा लगाना मुश्किल था। प्रश्न पूछने की भी हिम्मत नही पड़ती। माँ से हमेशा डरने की आदत थी उनकी, वही आदत आज भी रह गई थी।

ऐन्द्रिला कभी-कभी पूछ बैठती है, "क्यो नानी जी, आप क्या सोचती रहती है ?"

"आँ।" मानो गहरी नीद से जागी हो रासमणि, फिर कहती, "क्या कहा ? क्या सोचती रहती हूँ। नही तो, कुछ भी तो नही सोचती रहती मैं। सोचूँगी भला क्या ?" फिर गुम-सुम हो जातीं। एक सन्नाटे-से मे डुबकी लगा जाती।

सिर्फ एक ही दिन इसमे कुछ फर्क दिखाई पडा। वह थी क्वार की तीसरी तारीख। उस दिन रक्षा-बधन था। बगाल के सारे लोग उस दिन एक-दूसरे से गले मिलकर और भाई कहकर प्रीत-बधन और भी गहरा, और भी अटूट करेंगे। ऐसा ही नेताओ का ऐलान था। उसके पहले तीन रोज तक रासमणि को बुखार नही आया था। गगा स्नान के लिए जाते वक्त उन्हे यह खबर मिली। ऐलान मे कहा गया था कि किसी घर मे आज रसोई नही बनेगी, एक वक्त का लोग उपवास

करेगे। गगा नहाएँगे । नगे पैरो एक-एक टोली हर गली-मुहल्ले मे हर तरफ जाएगी। रास्ते मे खडे लोगो के हाथो मे राखियाँ पहनाती जाएगी। हर राह से गुजरेंगे लोग।

घर पहुँचते ही उमा से रासमणि पूछने लगी। उसके पहले ही उन्होने मना कर दिया था कि चूल्हे मे आग न सुलगाई जाए। उमा ने पूछा, "तो फिर आप क्या खाएँगी माँ ? जरा दूध तो पीजिएगा गरम कर लाऊँ ?"

"नही नही, उसकी कोई जरूरत नही।" जोर से सिर हिलाती रासमणि। "तू क्या पागल हो गई है ? इस उम्र मे दो-तीन दिन तक भी कुछ न खाऊँ तो भी कुछ नही बिगडता। इस बच्ची (ऐन्द्रिला) को कुछ मिठाई-विठाई हो तो खिला देना। वरना उसे बहुत तकलीफ होगी। मेरी कोई फिक्र न कर।"

स्वराज के लिए ऐन्द्रिला की कोई खास सहानुभूति तो थी नही, न रहने की बात भी थी। दरअसल वह कुछ समझती ही नही थी। पर उससे क्या आता-जाता है। किसी भी बहाने उछल-कूद करने की यही तो उम्र है। नानी भी कुछ नही खाएगी और वह अकेली खाएगी चूँकि बच्ची है, इसलिए ? नही, कभी नही। उसने कहा, "मुझे कोई तकलीफ नही होगी नानीजी, मैं बिल्कुल ठीक रहूँगी, एक वक्त की ही तो बात है। देखना मै ठीक सह लूँगी। क्यो, मैने शिवरात्रि का भी तो उपवास किया था।"

रासमणि के प्रश्नो के जवाब मे उमा ने जो कुछ सुना उनसे कहा। यह भी बडा लाट साहब कर्जन या ऐसा ही कुछ नाम है—बगालियो से बडी दुश्मनी रखता है। तमाम बगाल के दो टुकड़े कर दिए है उसने ! क्यो ? इसलिए कि बंगालियो ने लिखना-पढना इतना ही ज्यादा सीख लिया है कि अग्रेजो का अब इस देश मे राज चलाना मुश्किल हो गया है। इसलिए वे बगाल के दो टुकडे करके उन पर काबू रखना चाहते है। ऐसी ही कुछ दूसरी वजहो से भी तमाम देश भर मे आग फैल गई है। अग्रेजो को भी चैन नही है—सभी आतकित है।

देश-व्यापी उत्तेजना को रासमणि ने भी महसूस किया। गगा नहाने गईं तो वहाँ भी नजर आई नई बाते, अनोखी चीजे। जाने-अनजाने कही भी दो नौजवान मिले कि बस पूछो मत। एक शुरू करता 'वन्दे' फिर रुक जाता। दूसरा उसे पूरा करता, 'मातरम्।' यह एक नया तरीका शुरू हुआ था इस युग मे नमस्कार करने का। प्रणाम, नमस्कार कुछ नही, बस एक-दूसरे से मिलकर 'वन्दे मातरम्' कहो।

यही नया मत्र था इस नए युग का। सभी की जबान पर एक ही बात थी—बोलो भाई, 'वन्दे मातरम्'।

रासमणि बकिम चटर्जी का 'आनन्दमठ' पढ चुकी थी। उसमे वन्दे मातरम् गाना भी पढा था। पर कौन जानता था कि वही गाना सारे देश के लोगो का मत्र हो जाएगा ? किसको पता था कि इस एक गीत के जरिए ही मुल्क भर के लोग

ऐसे दीवाने हो उठेंगे कि बहादुर अग्रेज सरकार भी इन दो शब्दो को बदूक की गोलियो से भी ज्यादा खतरनाक मान लेगी।

लगन से सुनने लगी रासमणि कि कहाँ-कहाँ अग्रेज मारे गए। कभी-कभी उनके चेहरे पर आशका के बादल भी घिर आते। इतनी बडी सल्तनत थी विक्टोरिया महारानी की कि जिसमे सूरज नही डूबता था—तमाम दुनिया मे राज था उनका। उन्ही महारानी के हाकिमो के साथ, फौज के साथ, कैसे लड पाएँगे ये लोग ! इनके पास न हथियार है न और कुछ। क्या मालूम क्या होगा ?

उमा ने उनको कई बार याद भी दिलाई कि विक्टोरिया महारानी अब नही रही, वह तो कब की मर चुकी। पर रासमणि को याद ही नही रहती यह बात।

आज पता नही कहाँ से इतनी उमग आ गई रासमणि के मन मे। एक अजीब-सा जोश पैदा हो गया था। मानो एक विचित्र-सी जीवन-धारा मे शक्ति के एक नए स्रोत मे, एक नए प्रकाश मे, उनके तन-मन डूबे और आलोकित हो उठे।

दिन के नौ बजे वे बाहर दरवाजे के पास आ बैठी। लोग गगाजी गए थे। अब वे वापस लौटेंगे। इसी पथ से। राखियाँ पहनाएँगे। रासमणि बैठी रही आस लगाए। ऐन्द्रिला भी चुपके से उनके पास आ बैठी। पर सडक तो कुछ दूर पडती है यहाँ से। सामने एक कोठी है, उसके बाद सडक। गगाजी तक यही सडक गई है। उसी सड़क पर आज चमत्कार छाया था। नए-नए दृश्य, अनोखी बाते। यही से सारी दुनिया नजर आ रही थी। आदमियों की कई कतारे चल रही थी नगे पैर रूखे बाल। तमाम सड़क आज खाली थीं। एक भी गाडी या सवारी नही। जिन्दगी मे जो कभी पैदल न चले हो वे भी आज सडक पर नगे पैरो आ-जा रहे थे। ऐन्द्रिला ने कहा चलो नानी हम लोग वहाँ बोस बाबू के बरामदे पर जा बैठे। पर रासमणि ने उसे रोक लिया। कहा, "पागल हो गई है क्या तू, वहाँ लोगो की भीड़ मे हम कहाँ जाएँगे ? यही बैठो, यही से देखेंगे।"

सडक पर से नारो की आवाजे आने लगी—'वन्दे मातरम्, बोलो भाई वन्दे मातरम्।' धीरे-धीरे भीड-भाड़ कम होती गई। अब उन लोगो के वापस आने की बारी थी। थकान और कमज़ोरी से रासमणि की देह भारी हो गई। पर वे उस जगह से एक कदम भी नही हिली। जिन्दगी की एक नई सार्थकता आ गई उनकी आँखो के सामने। आज घर मे सोना असम्भव था।

दूर से घन-गम्भीर आवाज सुनाई दी। ध्यान से सुना रासमणि ने। 'वन्दे मातरम्।' वे कान लगाकर फिर सुनने लगी नया सगीत स्वर। उन्ही की तरफ आ रहे थे वे लोग, स्वराज वाले उन युवको की टोली। चौखट पकड़े खड़ी रही रासमणि। आहा, कितने सुन्दर है ये, रूप कैसे है इनके ! लड़के क्या है सोने के पुतले है, अमीरो के बेटे—रईस खानदानो के लडके जमीन की गर्मी सह नही पा रहे है। फिर भी खुशी-खुशी आगे बढ रहे है, सड़क पर नगे पैरो ही। उनमे से एक पर तो आँखे

जम गई उनकी। क्या कन्दर्प-सा रूप है! मुखडा क्या है मानो किसी ने खान खोद-कर हीरा निकाला है। गोरा बदन, घुँघराले केश, घनी काली दाढी—कम उम्र होने पर भी एक सुमधुर गम्भीरता उनके सारे शरीर से प्रकट हो रही थी।

एक बूढी और एक बालिका को बैठे देखकर उस व्यक्ति ने इधर मुँह मोड-कर देखा। एक नज़र से ही पता चल गया कि बूढी किसी पुरानी बीमारी की शिकार है। अपनी रोग-शैया से, मुमकिन है कि मृत्यु-शैया से, ही उठकर आ खडी हुई है यहाँ। इस जुलूस मे शामिल होने के लिए ये भा देश-व्यापी महान् आयोजन की पुकार पर निकल पडी है।

वे अपने साथियो के कानों मे कुछ गुनगुनाए। शायद ये ही सब बाते । फिर धीरे-धीरे चलकर खुद ही आ गए इस गली के अन्दर। अपने हाथो से राखी बाँध दी रासमणि और ऐन्द्रिला के हाथो पर। फिर हाथ जोडकर नमस्कार किया। बड़ी सडक पर खड़े जुलूस ने नारा लगाया, 'वन्दे मातरम्।' आकाश और पृथ्वी उस जयध्वनि से गूँज उठी। 'बोलो भाई वन्दे मातरम्।' उसी के बीच रासमणि ने पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा बेटा ?" "मेरा नाम"—एक पल रुककर, फिर नम्रता से सिर झुकाकर उन्होने जवाब दिया, "मेरा नाम है रवीन्द्रनाथ ठाकुर।" "तो तुम ही हो जोडासाँको के ठाकुर परिवार के गुणी लडके। द्वारका ठाकुर के पोते हो! तो तुम ही हो रवि ठाकुर! आहा हा ,खुश रहो बेटा, जीते रहो बेटा! जुग-जुग जियो मेरे लाल! तुम्हारी माँ का भाग्य धन्य है!" जी भर के आशीर्वाद देने लगी रास-मणि। होठो पर विनम्र मुस्कान लिए खडे रहे रवीन्द्रनाथ—स्तब्ध होकर। फिर एक बार और हाथ जोडकर नमस्कार की और सडक पर खडी शोभा यात्रा (जुलूस) मे शामिल हो गए। दूसरे लडके भी औरो को राखियाँ बाँधने लगे थे । अपना काम निबटाकर वे फिर से सडक पर आ गए। फिर आवाज उठी—"वन्दे मातरम्!"

रासमणि की आँखे आँसुओ से भर उठी। इतने सुन्दर चाँद-से युवक ने उनके हाथो मे आज राखी बाँधी थी । उनसे हँसकर बाते की, उनको नमस्कार की। मानो, आज उनका जीवन ही पूर्ण हो उठा।

काश, एक वैसा ही लड़का उनका अपना होता! लडकियाँ? वे तो सिर्फ सिर का बोझ है, बोझ। आज जब उस पार की पुकार उनके कानो मे गूँज रही थी तब इसी क्षण वे अपनी लडकियो के दुर्भाग्य के बारे मे सोचने लगी। उनकी चिन्ताएँ जजीरो की तरह उनको इस दुनिया मे फँसा रही है! मौत से भी शायद आज उनको शान्ति नही मिलेगी।

मन-ही-मन लम्बी साँस ली रासमणि ने। फिर एकाएक वे चौखट के सहारे वही बैठ गई।

# एकोनविंशति परिच्छेद

## 1

ऐन्द्रिला की शादी भी अचानक ही लगभग तय हो गई। एक सप्ताह के लिए ऐन्द्रिला पढागाम आई थी—बुखार मे पडी श्यामा की देख-भाल के लिए। आड-गोडे के माधव घोषाल भी शिवपुर से पैदल लौट रहे थे। उसी समय मुलाकात हुई। दुपहरी की धूप मे उतनी दूर पैदल चलने से प्यास लगना स्वाभाविक ही है और प्यास लगने पर जो उन्हे अक्षय बाबू का घर याद आया यह भी कोई ताज्जुब की बात नही। दोनो पहले एक ही दफ्तर मे काम करते थे। बाद मे यहाँ रेलवे का दफ्तर खुलते ही माधव घोषाल आए, अक्षय बाबू नही आ सके। कारण वहाँ बडे बाबू और उनको लेकर केवल दो व्यक्तियो की ही गुजाइश थी।

तब से ही अक्षय बाबू का साथ छूटा। फिर भी आना-जाना होता था काम-काज के सिलसिले मे और यो भी दो-एक बार आए है। मकान तो उन्हे मालूम था ही। किसी अपरिचित के घर पानी माँगकर पीने से परिचित के घर जाना कही अच्छा है। यदि कोई ब्राह्मण रसोईदार हुआ तो कुछ भोजन भी मिल सकता है। जहाँ गए थे वहाँ कुछ देर हो गई थी और इतनी देर हो जाएगी, यह उन्होने सोचा भी नही था। आडगोड अभी अढाई कोस था, भूख और थकावट की हालत मे पैदल चलकर पहुँचते-पहुँचते शाम हो जाएगी। बहुत सोच-विचारकर माधव बाबू ने अक्षय बाबू के मकान की राह पकडी।

परिचित होते हुए भी पिछले पाँच-छ: वर्षों से माधव घोषाल इस रास्ते नही आए थे। रास्ता ठीक समझ मे न आने के कारण वे जरा मुडकर घर के पीछे वाले बगीचे मे घुस गए, जिधर से कि पिछवाडे का दरवाजा खुलता था। करौदे की झाडी से निबटते ही उनकी दृष्टि जिस पर पडी वह एक अपूर्व दृश्य था।

निर्जन तालाब के पक्के घाट की पटिया पर दस-ग्यारह साल की एक लडकी बैठी थी। कत्थई रग की छोटी-सी साडी मे उसका उजला गोरा रग और भी निखर आया था। घने काले बालो से ढँका सिर, बडी-बडी आँखे, इतनी बडी भी नही कि भद्दी लगे, बडे-बडे पलको की छाया उसके भरे हुए गालो पर दूर से ही दिखाई पडती थी। नाक उतनी नुकीली नही थी, लेकिन उससे ही वह और भी अच्छी लगती थी। बगल मे कुछ बर्तन पानी मे भीग रहे थे। उन बर्तनो को माँजने के लिए ही शायद वह आई होगी, लेकिन वैसा कुछ स्पष्ट आभास नही हो रहा था। दोनो पैर पानी मे डुबोए, बैठी-बैठी अमरूद खाती वह लडकी एक हाथ से अमलतास के सूखे डठल को हिला-डुला रही थी। वह ऐसे बैठी थी कि हाथ हिलने पर भी पैर नही हिलता था और यही कारण था कि तालाब के पानी मे केवल साधारण-सा कम्पन-मात्र था। वैसे तो छोटी-छोटी मछलियो के श्वास से हल्के-हल्के

बुलबुले उठते थे, लेकिन उनसे उस तालाब के काले पानी पर कोई खास लहरे नही उठती थी, जिससे कि परछाई की सुन्दरता नष्ट होती। विलायती बडे अमलतास के पेड से जो धूप उसके चेहरे पर पड रही थी वही चित्र तालाब के शान्त जल पर भी प्रतिबिम्बित था। सुनसान दुपहरी मे हवा भी नही चल रही थी, पेड के पत्ते यदाकदा कॉप उठते थे। धूप-छॉह का खेल चलता था पर वह भी प्रतिबिम्ब मे दिखाई पडता था।

बडा ही अनुपम था वह चित्र। माधव घोषाल कवि नही थे। शायद माइकेल और हेम बनर्जी के नाम कभी सुने होगे। लेकिन काव्य का रग उन्हे छू भी नही गया था। फिर भी उनकी दृष्टि जमी-की-जमी रह गई। वे निश्चल खडे-खडे देखने लगे उस चित्र को।

अमरूद खाते-खाते वह लडकी एक बार अमरूदवाला हाथ नीचेकर चुपचाप कुछ सोचने लगी। इससे उस चित्र की सुन्दरता और भी बढ गई। चित्र की मनोहारिता ने माधव घोषाल की प्यास भुला दी, वे खडे के खडे रह गए।

जीवन मे जिसे प्रकृति और सुन्दरता की ओर आँख उठाकर देखने का भी अवसर न मिला हो उससे प्रकृति इसी तरह कभी-कभी बदला लेती है। सासारिक कार्यो मे व्यस्त मानव ऐसे क्षणो मे अचानक ही चकित और स्तम्भित हो जाता है। उसके मन और आँखो पर माया का रग चढ जाता है। माधव घोषाल भी इस क्षण न केवल अपनी प्यास ही भूल गए, बल्कि कई ज़रूरी मुकद्दमो की बाते भी भूल गए। याद नही आई उन्हे अपने उस फ़ज़ली आम के पेड की, जिसमे चार वर्षो से फल होना तो दूर बौर भी नही आए थे। वे उसे बेचना चाहते थे और आज खरीदार आने की बात भी थी। उन्हे मोल-भाव करना था। पेशगी का रुपया अगर पत्नी के हाथ पडा तो गया, भूल गए कि बाँस-झाडी को लेकर मल्लिक परिवार से गत छ महीने से जो झगडा चल रहा था उसका आज ही फैसला होना है। पच हृदय बाबू से दोपहर मे ही गुप्त रूप मे जरा बात कर ली जाती तो फैसला अपने हक मे ही हो सकता था। वे सब-कुछ भूलकर इस चित्र को देखते ही रह गए और समझ नही सके कि वे किस देव-शिल्पी द्वारा चित्रित एक अनुपम चित्र को देख और उसकी सुन्दरता से मुग्ध होकर इस तरह टकटकी लगाए क्यो खडे है। समझने पर भी वे अपनी कवि-सुलभ दुर्बलता पर लज्जित होते या नही, कौन जाने।

कब तक वे इस रूप मे खडे रहते पता नही, अचानक उस लडकी की नज़र उन पर पडी और कोमल-मधुर वाणी मे अत्यन्त सधे हुए कडवे भाव से वह बोल उठी:

"कौन है रे! मुआ इस तरह आँखे फाड-फाड़कर देख रहा है! अपने घर जाकर घूरते नही बनता?"

टूट गया सपना माधव घोषाल का, लेकिन मोह अब भी बाकी था। वे दो कदम आगे बढकर मीठे स्वर मे बोले, "बेटी, अक्षय बाबू का मकान यही है क्या?

मुझे उनसे ही मिलना है।"

लेकिन उस लडकी का मिजाज जरा भी न बदला और वह व्यग्य और कड-वाहट मिले स्वर मे बोली, "मुझे उनसे ही मिलना है ! —तो क्या देखा नही उनका सदर मकान ? उधर का रास्ता छोड पीछेवाले बगीचे मे आकर इस तरह खडे रहने का क्या मतलब ?"

"किससे उस तरह झगड रही है री, खेंदी !" मगलादेवी खाना खाकर हाथ-मुँह धोने इधर ही आ रही थी। समीप आते ही माधव बाबू पर जो नजर पडी तो जल्दी से घूँघट काढ फुसफुसाकर बोली, "अरी माँ ! यह तो फाधव बाबू है—तू उनसे ही झगड रही थी इस तरह कमर कसकर ?"

माधव उसके बडे ममिया ससुर का नाम था शायद, इसलिए 'फाधव' नामोच्चा-रण किया।

अब ऐन्द्रिला भी कुछ सहम गई। जल्दी से वह पानी से निकलकर ऊपर चबूतरे पर आ गई। उसने देखा कि सचमुच उसकी साडी का पल्लू कमर से लिपटा हुआ है। वह कमर का बधन खोलते हुए बोली "अरी माँ ! मैं तो समझी थी कोई ऐसा-वैसा है।"

जरा आगे बढकर माधव बाबू ने पूछा, "बहू रानी, अक्षय घर मे है ?"

इस बार सुनाने के लहजे मे ही मगलादेवी बोली, "कह दे खेंदी, बाहर के बरामदे मे बैठे तमाखू पी रहे है।"

और बाते न बढाकर माधव घोषाल आगे बढ गए।

## 2

माधव बाबू को उस लडकी के सम्बन्ध मे कोई आशा नही थी। कायस्थ घर की लडकी—अच्छी लगी, बस इतना ही। उसके साथ कोई सम्बन्ध स्थापित करना सभव है इसकी कल्पना भी नही थी उन्हे।

लेकिन कुशल-क्षेम के आदान-प्रदान के बाद ही उन्होंने पहला सवाल उसके बारे मे ही किया, "हाँ भई अक्षय ! तालाब के घाट पर जो मैंने एक दिव्य सुन्दरी लड़की देखी वह कौन है ? तुम्हारी भाजी है या नातिन—"

सवाल को चुपचाप सुनकर अक्षय बाबू ने हुक्का नीचे किया और पूछा, "सुन्दरी लड़की ? मेरे तालाब के घाट पर ? कैसे ?"

तब माधव बाबू ने सक्षेप मे सारा किस्सा सुनाया, जिसे सुनकर अक्षय बाबू बोले, "ओ हो ! और नही बताना होगा। हाँ, वह पुजारी ब्राह्मण की मझली लडकी कई दिनों से यहाँ आई है। यहाँ तो रहती नही है, इसलिए याद नही पडती थी।"

"ब्राह्मण की लड़की ? तुम्हारे यहाँ कैसे ? माँ रसोईदारिन है क्या ?"

"नही, नही, उससे जरा ऊँची है। हम लोगो के यहाँ रोजाना पूजा-पाठ वगैरह के लिए एक ब्राह्मण-परिवार बसाया गया था। सो वह ब्राह्मण तो चमार से भी गया बीता निकला, नशा करके कही पडा रहता है। उस लडकी का बडा भाई ही आजकल पूजा-पाठ करता है।"

"अच्छा, पुजारी ब्राह्मण है? क्या गोत है उसका?"

"क्यो, लडकी की शादी दोगे क्या, गाँव-गोत आदि सब पूछ रहे हो?"

"कर सकता हूँ। लडकी तो अच्छी दिखती है।"

अक्षय बाबू ने हुक्के की नली नीचे की। कुछ देर चुप रहकर बोले, "तुम्हारा तो वत्स गोत्र है? गोत्र मे कोई रुकावट नही है, करोगे उसके साथ अपने लडके की शादी? उसका बाप बडा ही छोटा और नीच है। और लडकी-लडके भी अभाव के कारण, बडे ही चोर है। मेरे बाग मे थोडे भी फल-फूल नही रहने देते, सब चुरा ले जाते है और बेच डालते है। लडकी भी बडी मुँहफट और झगडालू है। लेकिन इसकी माँ अच्छे घराने की मालूम होती है। पढी-लिखी भी है, जो कि इस इलाके के घरो मे बहुत ही दुर्लभ है।"

"तो कुपात्र के हाथो कैसे पड गई?"

"उस वक्त ससुराल की माली हालत अच्छी थी। मकान-जमीन, धन-दौलत सब ओर से ठीक, वैसे गुरुवश के है ये लोग। ब्राह्मण के घर का बैल जैसा होता है, एकदम मूर्ख है लडकी का बाप।"

तब तक नाश्ता आ गया था। आँखो ही आँखो मे मगलादेवी से अक्षय बाबू ने भोजन के बारे मे बाते की। मगलादेवी ने सिर हिलाकर स्वीकृति जताई।

ब्राह्मण की लडकी को दो दिनो से बुखार है। मगलादेवी के रसोईघर मे भात नही बनेगा। घर मे आटा है, पूरिया उतार दी जाएँ। लेकिन इस दुपहरी मे पूरियाँ?

उन दोनो मे हो रही बातो की भनक मगला के कानो मे पड चुकी थी। मतलब समझ गई थी। खूब खुशी और उत्तेजना से उसकी आँखो मे चमक आ गई। इस तरह के षड्यन्त्रो मे मगला बडी उत्साहित होती थी।

वह हॉफते-हॉफते श्यामा के पास जा पहुँची। वह कुछ पथ्य खाकर अभी-अभी फर्श पर आँचल बिछाकर लेटी थी।

"बामनी, बामनी, जल्दी उठ। पत्ते वाले चूल्हे पर थोडे अरवा चावल चढा दे। दो-तीन आलू डालकर भात चढा दे, मेरे रसोईघर मे शुद्ध दाल और सब्जी रखी है, मै ला देती हूँ। और थोड़ा-सा दूध भी ला देती हूँ, काम चल जाएगा। ले, उठ, मुँह बाये पडी न रह।"

"सो तो उठती हूँ। लेकिन माँ, मेरे रसोई मे कौन खाएगा, ब्राह्मण है क्या?"

"हाँ-हाँ, ब्राह्मण है, ब्राह्मण। घोषाल ब्राह्मण नही तो क्या है। तुम लोग ही

कौन-से ऐसे बहुत बडे कुलीन ब्राह्मण हो। पुजारी बामन भी कोई बामन होता है, भला। ले, इस तरह जड-भरत बनी क्या ताकती है। उसके बडे लडके की शादी शायद अभी नही हुई है। हुई भी हो तो दो लडके और है। सभी रेलवे आफिस मे काम करते है। तेरी लडकी खेदी को उसने देखा है, पसन्द आ गई। इसीलिए तो उसे तेरी झोपडी मे ला रही हूँ। देखना, अगर आसानी से काम बन सके तो बना ले। मै तो अपनी रसोई का भात दे न सकूँगी, रसोईदारिन को बुखार है, हमने ही रसोई बनाई है। एक तरह से अभिशाप ही वरदान होनेवाला है, क्या कहा ?"

मगला बहुत खुश थी। यह भी एक तरह का खेल था, उसके वैचित्र्यहीन जीवन मे एक अच्छा-खासा रगीन तमाशा। वह स्वय भी इसमे अपनी भारी-भरकम देह से भरसक मदद करती थी। चूल्हे मे पत्तो की गड्डियाँ सरकाती थी।

श्यामा भी उसके इशारे को अच्छी तरह समझ गई थी।

सिर्फ आलू भात ही नही, कुछ दिन पहले ही हेम को कही सीधा मिला था, जिसमे थोड़ा-सा गाय का घी और दो एक पापड भी थे। ऐसी चीजे इस इलाके मे दुर्लभ थी। श्यामा ने इन्हे बडी हिफाजत से रखा था, दामाद के लिए। मगला ने अपनी रसोई मे से शुद्ध दाल और थोडी-सी सब्जी ला दी। जल्दी से श्यामा ने बडी और पापड तल लिए। बडी की तरकारी तैयार की और ताजा गर्म भात पर गाय का घी डाल यत्नपूर्वक थाली परोस दी। इतनी देर मे मगला ने ऐन्द्रिला की देह सँवारकर उसे भी दर्शनीय बना दिया। ठीक हुआ, श्यामा माधव घोषाल के सामने नही जाएगी, जिस चीज की आवश्यकता होगी ऐन्द्रिला ही ले जाकर देगी।

इन लोगो के रसोईघर के बरामदे पर माधव घोषाल जब भोजन करने बैठे तो बडे ही चकित हुए। कटोरे के आकार मे भात परोसा गया। ऊपर से एक छोटी-सी कटोरी मे गाय का घी रख दिया। आलू का दम और भुनी हुई तरकारी भी बडी तरतीब से रखकर थाली के अन्दर ही एक ओर गोल-कटे केले के पत्ते पर नीबू-नमक रख दिये गए। इन सभी कामो मे नागरिकता की छाप स्पष्ट थी।

घोषाल महाशय ने खूब तृप्त होकर भोजन किया। भूख लगी थी, सिर्फ इसी कारण नही, बल्कि आयोजन भी मनमाफिक था। मंगला ने जो दूध दिया था उसी कटोरे मे पका केला और गुड डालकर ऐन्द्रिला ने थाली के पास रख दिया और पूछा, "थोडा-सा भात और लाऊँ ?"

उसकी वह विनयपूर्ण भगिमा, स्वच्छ गोरे गाल पर लाज की लालिमा बहुत ही अच्छी लगी माधव घोषाल को। बोले, "तो ले आओ बेटी, पर बहुत थोडा-सा।"

भोजन समाप्त होने पर हाथ-मुँह धोकर जब वे पान लेने लगे तो ऐन्द्रिला की ठुड्डी ऊपर उठाकर पूछा—"तुम हमारे घर चलोगी, माँ लक्ष्मी ?"

प्रतिभा-सम्पन्न ऐन्द्रिला ने तुरत उत्तर दिया—"क्यों नही चलूँगी। आप कहेगे तो जाऊँगी। लेकिन आप भी फिर आइएगा—माँ ने कहा है। आज तो

खाने मे तकलीफ हुई, किसी दूसरे दिन पहले खबर देकर आइएगा। क्यो ?"

जरा मुस्कराकर माधव बाबू बोले, "आऊँगा ही, बार-बार आऊँगा, हो सका तो।"

माधव बाबू अक्षय बाबू के कमरे मे जाकर बैठे कुछ देर चुपचाप तमाखू पीते रहे फिर बोले, "मैने तो मन-ही-मन तय कर लिया। भाई, तुम उसकी माँ से बात करना।"

"किसके साथ ?"

"मेरा बडा लडका—हरिनाथ। उसकी शादी तो अभी हुई नही।"

"क्या उम्र है उसकी ? ठीक जोड बैठेगा ? यह तो अभी दस की है।"

"उसकी उम्र कुछ अधिक ही होगी। मुझे ठीक याद नही है लेकिन तेईस-चौबीस से कम नही होगी। शायद पच्चीस भी हो। लेकिन इससे क्या। लोग तो उससे भी अधिक उम्र के विधुर से नौ-दस वर्ष की लडकी की शादी करते हैं। हमारे मुहल्ले के गोकुल मुखर्जी ने तो चालीसवे मे सात साल की लडकी से शादी की थी। नही-नही, इससे कोई रुकावट नही होगी।"

"लेकिन रुपये-पैसे के मामले मे 'ठन-ठन गोपाल' है—यह पहले ही कहे देता हूँ। रूखा-सूखा भात समधिन को रुचेगा तो ?"

"हाँ, वो तो थोड़ा हल्ला मचाएगी ही। लेकिन मैं ता तय कर चुका हूँ। मुझे तो देखते ही हो, इसी तरह मेरा परिवार भी बिल्कुल आबनूस जैसा है—लड़के-लडकियाँ जो भी हैं, उनकी तरफ आँख उठाकर भी नही देखा जाता। भई, मैं जरा इस ढर्रे को बदलना चाहता हूँ।"

उसके बाद मन-ही-मन पत्नी की उग्र मूर्ति का ध्यान कर वे और भी ज़ोर देते हुए बोले, "अरे क्या होगा, बहुत करेगी तो दश-भुजा चण्डी की तरह कुछ देर उछल-कूद मचाएगी और क्या करेगी। तुम बात पक्की कर दो।"

इतना कह माधव घोषाल ने हुक्का नीचे रखकर आडगोडे का रास्ता पकड लिया।

## 3

मैगला खबर सुनाने दौडती आई।

"भगवान् का प्रसाद दे, री बामनी, प्रसाद बॉट अब। हॉ री, खेदी की तकदीर बड़ी तेज है। लडकेवाले खुद ही बात चलावे, ऐसा तो कभी नही सुना। खुद ही यह भी कहा है कि उन्हे दहेज वगैरह कुछ भी नही चाहिए।"

खुशी का ज्वार उतरते ही श्यामा लडके के बारे मे पूछताछ करने लगी। मगला तो कुछ जानती नही थी, उसे अक्षय बाबू से पूछ-पूछकर बताना पडा। अक्षय बाबू को भी विशेष जानकारी नही थी। सिर्फ इतना जानते थे कि घोषाल

के पास काफी धन-दौलत है। अपनी जमीन से साल भर के खाने लायक धान भी मिल जाता है। चार लडके है—हरिनाथ सबसे बडा है। इगलिश स्कूल मे कुछ वर्षो तक पढा भी है। रेलवे के दफ्तर मे नौकर है। सभी तरह से सुपात्र है। दोष सिर्फ यही है कि उम्र कुछ ज्यादा है और रग गहरा काला।

"काला। उम्र ज्यादा है इसकी चिन्ता नही माँ—लेकिन मेरी बेटीको तो आप जानती ही है काले रग से कितनी नफरत है, कही दामाद को जली-कटी न सुनाये ?"

"अरी चुप भी रह। बहुत नफरत देखी है मैने। रहने दे। सब ठीक हो जाएगा। मर्दों की खूबसूरती का क्या करना। तू कलकत्ता चिट्ठी लिख दे। देख माँ से कुछ हासिल हो जाए तो कर ले।"

श्यामा को यह सलाह काफी पसन्द आई। उसने रात को दीये की रोशनी मे एक लम्बी-सी चिट्ठी उमा के नाम लिखी। सोचा माँ की तो तबीयत ठीक नही रहती है इसके अलावा आजकल वे कुछ उदासीन भी रहती है। जो कुछ करना होगा सो तो उमा ही करेगी।

पत्र मे लडके का सक्षिप्त विवरण और उस दिन की घटना का वर्णन लिखकर अन्त मे श्यामा ने लिखा, "इस प्रकार बिनबुलाए घर मे वर पक्ष के आ धमकने और स्वेच्छा से प्रस्ताव करने की इस घटना मे प्रारब्ध का ही हाथ समझना चाहिए। इस प्रस्ताव पर आपत्ति करने की तो कोई बात दिखाई नही देती। मेरी जैसी भिखारिन की बेटी के लिए इससे बढकर दूसरा रिश्ता और क्या हो सकता है ? आशा है तुम या माँ इस वर को नापसन्द नही करोगी। वर का रग साँवला है, यही कमी है। तो सभी बाते मन के माफिक कहाँ मिलती है। फिर भी सुनने मे आया है कि लडका खूब तन्दुरुस्त है। असल बात तो यही है कि लडकी तो तुम्हारी ही है। तुम्हारी राय के बिना कुछ नही हो सकता। जब तक तुम हाँ न कहोगी मैं कोई चेष्टा नही करूँगी। माँ की तबीयत खराब रहती है—मेरी इच्छा है कि शादी कलकत्ता के मकान से ही हो। ऐसा न होने से माँ तो किसी भी नाती-नातिन की शादी नही देख सकेगी। आशा है, इससे तुम भी सहमत होगी।"

बडी चालाकी से चिट्ठी लिखी श्यामा ने। लेन-देन का जिक्र एक बार भी नही किया। कलकत्ता के मकान से शादी होगी तो उनके मत्थे ही पडेगा। उस समय क्या वे लोग मुट्ठी बन्द किए बैठे रह सकेगे ? लिफाफे को बन्द करते-करते श्यामा यह सोचकर मुस्करा उठी।

o o o

चिट्ठी पढकर उमा भी बडी देर तक हँसती रही। वह श्यामा की चालाकी समझ गई थी। वह उतनी बेवकूफ तो नही, जितना कि श्यामा ने समझा है।

रासमणि ने चिट्ठी पढी। इधर कुछ वर्षों मे ऐन्द्रिला पर उन्हे भी ममता हो गई थी। मुँह से भले ही इस बात को स्वीकार न किया, किन्तु मन से स्वीकार करने

को बाध्य थी।

उस दिन तो वे कुछ न बोली। दूसरे ही दिन जब उमा ने पूछा, "छोटी दीदी को क्या लिखूँ, माँ ?" तो कुछ देर चुप रहकर बोली, "मैं पचास रुपये दूँगी और अपने कानो की दोनो बालियाँ। पर शादी का झंझट यहाँ नही करना होगा, बस यही लिख दो।"

उमा ने पत्र मे इसके साथ अपनी बात भी जोड दी—मेरे पास अपने पन्द्रह-सोलह रुपये है। हेम इन्ही रुपयो से एक अच्छी साडी खरीद देगा। माँ की तबीयत खराब है वे न जा सकेंगी और यहाँ तो शादी होना सम्भव नही है। माँ शोरगुल बिल्कुल बर्दाश्त नही कर सकती। इसलिए हम दोनो को छोडकर ही तुम ऐन्द्रिला की शादी का आयोजन करना। हाँ लड़की और दामाद एक दिन के लिए यदि यहाँ आ सकेंगे, तो बडा अच्छा होगा—जहाँ तक बन पडेगा आदर-सत्कार करूंगी और तब माँ भी नातिन-दामाद देख लेगी।

ऐसी कडी चिट्ठी के लिए श्यामा बिल्कुल तैयार नही थी। उसे आशा थी बहुत कुछ मिलने की, लेकिन मिला कुछ भी नही। फिर भी जितना कुछ मिल जाए वही क्या थोडा था। मगला भी कुछ रुपये उधार देगी ही। हेम भी यजमानो के यहाँ से माँग-मूँगकर कुछ ले आएगा। हो ही जाएगा काम किसी-न-किसी प्रकार। कुछ अटका नही रहेगा। श्यामा ने यही सोचकर तसल्ली की।

लडके वालो की कोई माँग नही थी फिर भी श्यामा को एकदम छुटकारा नही मिल सका। लडकी की सास जिन्दा है अधिक कजूसी करने से नाराज़ हो जाएगी। तब हो सकता है ससुर भी पाँव पीछे हटा ले। कम-से-कम सौ रुपये नकद, आठ चूडियाँ, दामाद के लिए अँगूठी, रेशमी-थान (पाट) का जोडा और कन्या-दान के लिए भी तो कुछ चाहिए, सब मिलाकर बहुत पड जाएगा। लेकिन चारा भी क्या है ?

श्यामा ने अन्तिम चेष्टा कर देखी।

शादी तय होने के बाद ऐन्द्रिला कलकत्ता चली आई थी। आशीर्वाद (गोद भरने जैसा नेग—शादी से पहले) के लिए उसे ले जाना था। श्यामा खुद ही उसे ले जाने के लिए आई। हेम सौदा खरीदने आने वाला था, उसी के साथ दोनो लौट सकेंगी, यह इरादा था।

श्यामा पैदल ही आया करती थी हमेशा। दुधमुँहे कान्त को गोद मे लिए ही पैदल चलना पडा। क्या करती बेचारी।

उमा ने मीठी झिडकी के साथ कहा—"इतनी तकलीफ करके यहाँ आने की क्या जरूरत थी, छोटी दीदी ?"

"मैं तो इसी तरह आया ही करती हूँ री। शादी के पहले एक बार तुम लोगो से मिलती भी नही क्या ?"

कुछ देर सुस्ताकर श्यामा ने भोजन किया, फिर माॅ के पास जा बैठी। रासमणि ने तो अब बिल्कुल खाट ही पकड ली थी। उस दिन बुखार तो नही था फिर भी लेटी ही थी। बिस्तर के एक किनारे बैठी श्यामा कुछ देर चुपचाप माँ के पैर सहलाती रही। फिर बोली, "माॅ, आपको यदि यहाॅ से गाडी द्वारा ले जाऊँ सीधे, तो भी क्या आप नही जा सकेगी ? खेदी की शादी तो देख ही लेती ?"

"नही"—रासमणि आॅखे मूँदकर लेटी थी, आॅखे मूँदे ही उन्होने जवाब दिया।

"क्यो माँ ?"—श्यामा ने फिर पूछा।

"कोई इच्छा नही है"—वही छोटा-सा उत्तर था।

कुछ देर के बाद वे आॅखे खोलकर बोली, "मै दामाद के घर नही जाऊँगी—यह तो तुम अच्छी तरह जानती हो बेटी, और मेरा शरीर भी जर्जर हो चुका है। और इस काम के लिए तो तुम आई नही हो। तुम अपना अभिप्राय साफ-साफ कहो न। तुम मेरे पेट से जन्मी हो, मै तुम्हारे पेट से नही जन्मी। मुझे चकमा नही दे पाओगी।"

श्यामा कुछ उदास ही हुई इस बात से। वह सोचने लगी सब कुछ क्या वह स्वार्थवश ही कर रही है ? हो सकता है उमा ही माॅ को दिन-रात समझाती होगी कि छोटी दीदी को हर घडी स्वार्थ के सिवा दूसरी चिन्ता नही रहती है।

श्यामा काफी दु ख प्रकाश कर सकती थी, कुछ ही क्षणो मे उसने कहने लायक बाते सोच ली थी, लेकिन उसकी अभागिनी लडकी ने ही सब चौपट कर दिया। यहाॅ आने के पहले मगला और श्यामा के बीच जो बाते हुई थी वह उसने कुछ-कुछ सुनी थी। वह झट से बोल पडी—"माँ क्यो आई है जानती है नानी ? दान के बर्तनो को फुसलाकर ले सके, इसलिए।"

"तू क्यो दखल देती है सब बातो मे, छोटा मुँह बडी बात। जा, दूर हो जा सामने से। कलमुँही, शरीर लडकी! मुझसे ठिठोली करती है!"

जरा रुककर उस बगल की दीवार की ओर देखती हुई बोली, "बात तो सच ही है, जब भीख माॅगकर ही शादी करनी है तो लाज करने से कैसे काम चलेगा। आप कुछ बर्तन यदि दे सके तो सचमुच बडा उपकार हो।"

रासमणि का फिर वही सक्षिप्त उत्तर था, "वह अभी नही होगा, बेटी।"

श्यामा के धीरज का बाँध टूट गया। बोली, "आपके सन्दूक मे बर्तन भरे पडे हैं, मैं क्या उसमे से दो बर्तन भी नही ले सकती हूँ ? मेरा भी तो एक हिस्सा है।"

रासमणि ने इस बार पूरी आॅखे खोलकर उसे देखा। कडे स्वर मे बोली, "मेरे जीते जी तेरा हिस्सा कैसा री ? मैं और कितने दिन जीऊँगी इसका क्या ठिकाना ? हो सकता है, बर्तनो को बेच-बेचकर ही मुझे खाना पडे। जिन्दगी और मौत के बारे मे कौन क्या कह सकता है ? नही, मैं अभी उन बर्तनो को नही छोड सकूँगी ?"

श्यामा माँ का स्वभाव अच्छी तरह जानती थी। उसे और कुछ बोलने का साहस नही हुआ। उदास मन से नकद पचास रुपए और कान की दोनो बालियाँ आँचल मे बाँधे लेकिन उमा को इतने सस्ते नही छोडा। सिर्फ पन्द्रह रुपए ही नकद कैसे ले लेती। दो एक चीजे भी खरीद देनी पडी, छात्राओ के घर से भी कुछ रुपए अग्रिम लेकर देने पडे।

ऐन्द्रिला को आशा थी कि मौसी तो अन्त मे साथ जाने को राजी होगी ही। इन कुछ वर्षो मे उमा से उसे बहुत स्नेह हो गया था। जाते वक्त उसने पूछा, "तुम क्या सचमुच नही जाओगी छोटी मासी ? तब मेरा क्या होगा ?"

श्यामा ने भी कहा, "चलो न री, उमा। तेरी ही बेटी की तो शादी है।"

सिर झुकाकर उमा धीरे से बोली, "मेरी छाँह किसी की भी शादी मे न पड़े, छोटी दीदी, यह तो अपनी है। बहुत बडे दुश्मन को भी शादी के समय मेरा मुँह न देखना पडे।"

श्यामा इस तरह का जवाब सुनने के लिए तैयार नही थी। इसके बाद फिर कुछ कहने की उसकी इच्छा नही हुई। मुँह नीचा किए कुछ देर वह चुपचाप खडी रही फिर एक लम्बी साँस लेकर नीचे उतर गई।

क्या बात हुई ऐन्द्रिला तो समझ नही सकी, लेकिन उमा का करुणार्द्र कठस्वर सुनकर अकारण ही उसके हृदय मे उथल-पुथल मची और आँखे डबडबा उठी। मौसी की सभी बातो को समझने लायक अभी उसकी उम्र ही कहाँ हुई थी और सभी बाते उसने सुनी भी नही थी। सिर्फ इतना ही समझ पाई कि ऐसी कोई व्यर्थता की कहानी उसकी मौसी की दैनन्दिन हँसी-खुशी के पीछे है जिसका एक कण भी किसी लडकी के जीवन का सुख-सौभाग्य नष्ट करने के लिए काफी है। इसीलिए मौसी अपने दुर्भाग्य की छाया उसके विवाह मे नही पडने देना चाहती।

सीढियाँ उतरते-उतरते वह अपने भविष्य के बारे मे एक अज्ञात आशका-सी अनुभव करने लगी। ज्यादा कुछ वह समझ नही सकी, लेकिन उसका मन बहुत देर तक बोझिल बना रहा।

## 4

शादी होने के बाद एक महीने के अन्दर ही एक दिन श्यामा लडकी और दामाद के साथ आ पहुँची। महा की शादी के बाद अभय को निमन्त्रण देने पर एक दिन के लिए वह आई थी लेकिन अकेली ही। इस तरह सज-धजकर लडकी-जमाई के साथ श्यामा मैके कभी नही आई थी। अचानक पीहर मे इतनी दिलचस्पी का कारण समझ मे न आने पर भी उमा ने बहुत-कुछ अन्दाज लगाने की तो चेष्टा की ही।

श्यामा के पास तो बहाना मौजूद ही था—"माँ की जैसी हालत देखकर गई

थी मै उसके बाद मुझे आशा नही थी कि खेदी का दूल्हा माँ को दिखा सकूँगी। इसलिए जल्दी-जल्दी दौडी आई। जमाई को छुट्टी मिलती, तब तो ? इस बार रविवार के साथ एक दिन और छुट्टी पड गई तो और देर नही की।"

ऐन्द्रिला के दूल्हे को देखकर उमा स्तभित रह गई। यह तो श्यामा-शिव की उल्टी जोडी है। जो लडकी काले बर्तन मे बना हुआ खाना नही खाना चाहती थी, काले रग की मछली थाली मे रख देने से उठकर चली जाती थी उसका दूल्हा बिलकुल काला।

हरिनाथ गहरे काले रग का था। इतना काला कि अँधेरे मे आँख-मुँह नही दिखाई पडते। लेकिन जैसा तन्दुरुस्त था वैसा ही नम्र और भद्र भी। बात करने का ढग जानता था—अभय की तरह गम्भीर और कम बोलनेवाला नही। विनोदी स्वभाव था। कुछ देर बात करने के बाद उमा को जमाई अच्छा ही लगा। श्यामा ने बार-बार कहा, "यही तुम्हारी असली सास है, मैंने तो सिर्फ लडकी को जन्म देकर ही छुट्टी पा ली है।"

इस अतिशयोक्ति से उमा को लाज लगी। इन बातो के साथ यह कौतूहल जुडा रहना स्वाभाविक है कि उमा बाप के घर क्यो रहती है, ऐन्द्रिला की शादी मे शरीक क्यो नही हुई—इन बातो को हरिनाथ ने कुछ सुना या नही कौन जाने। यदि सारी बातो को वह सुन चुका हो तो कितनी शर्म की बात है !

छि छि ! जिस स्त्री को पति ने ग्रहण नही किया भद्र समाज मे मुँह दिखाने लायक नही रह जाती।

लेकिन हरिनाथ की बातचीत से ऐसा कुछ आभास नही होता था। वह बडे ही सहज भाव से बाते कर रहा था। रासमणि से दो-एक बार विनोद करने का भी प्रयास किया, लेकिन रासमणि की सहज, गम्भीर निस्पृहता और निरासक्ति के कारण उसका वह विनोद जम नही पाया। फिर भी रासमणि को हरिनाथ अच्छा ही लगा। वे उसे सामने बैठाकर खाना खिलाती और सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देती। उसके घर परिवार के बारे मे रासमणि कुछ पूछती तो हरिनाथ भी भली-भाँति समझाकर उत्तर देता। काफी देर तक गप-शप चलती रही।

"एक ही रसोई का बडा-सा परिवार था उन लोगो का। अभी हाल मे हरिनाथ के पिता और चाचा लोगो मे बँटवारा हुआ है। उसके पिता के कारण ही मुकदमेबाजी नही हुई। उन्होने सम्पत्ति को तीन बराबर हिस्सो मे बाँटकर दोनो चाचाओं को एक-एक हिस्सा ले लेने को कहा और बचा हुआ हिस्सा स्वय लिया। इसमे उनकी हार नही बल्कि जीत ही हुई है। वे लोग रेलवे मे नौकरी करते है। केवल हरिनाथ का छोटा भाई स्कूल मे पढता है। जमीन जो है। उससे साल-भर खाने लायक चावल हो जाता है। गाय-बैल है। बकरियाँ भी थी, लेकिन गुरूजी ने मना कर दिया कि बकरियाँ पालने से पूर्व धर्म नष्ट होता है—इसलिए पिता ने बाध्य

होकर बकरियाँ बेच दी। साधारण सुखी परिवार है। घर मे एक बूढी दादी भी है, बाबा की बहन, वह भी बडे अच्छे स्वभाव की है। अपने आप बकती रहती है, झगडा नही करती किसी से।" इसी तरह बोलता रहा हरिनाथ।

"उसकी शादी मे क्या कम झमेला हुआ था? शायद रुक ही जाती शादी। शादी के ठीक दो दिन पहले उसका एक भाई विपिन शिवपुर से आ रहा था—रास्ते मे पुलिस के एक हगामे मे फँस गया। बात यह थी कि कुछ लडको का एक राजनैतिक दल उसी रास्ते से आ रहा था। वे लोग उससे बाते करने लगे। विपिन को कुछ पता नही था। अचानक पुलिसवालो ने घेर लिया। तीन-तीन अभियोग लगाये गए थे उन पर—डकैती, खून और एक पता नही क्या। यह समाचार जब घरवालो को मिला तो कुहराम मच गया। पिता तुरन्त हावडा दौडे—सयोग-वश शादी के लिए खरीदी हुई वस्तुएँ उसके साथ थी और डकैती के दिन वह ऑफिस मे था, साहब ने खुद लिखकर दिया इसीलिए किसी प्रकार माधव बाबू उसे छुडा लाए। फिर भी तीस घण्टे तक हाजत मे रहना पडा उसे। विपिन नही छूटता तो शायद यह शादी ही नही होती। उसकी माँ बच्चो से बडा स्नेह रखती है न।"

इसी तरह कितनी बाते हरिनाथ बोलता रहा। थकी अधखुली आँखे खोलकर रासमणि सुनती रही। वे तो पृथ्वी से अतिम यात्रा के लिए एक पैर उठा ही चुकी है—अब ऐसी बाते बच्चो की किलकारियाँ जैसी मधुर लगती है। इनकी ज़िदगी नई है—आशा, आकाक्षा, आसक्ति से भरपूर। अहा! जीते रहे ये, जिन्दगी के आनन्द का उपभोग करे। अपने ही रक्त की बूँदे है ये। दु ख के दुर्भाग्य की छूत भी न लगे इन्हे। इनका जीवन प्रशस्त, सहज, स्निग्ध एव मधुर हो। हम दोनो माँ-बेटी के जीवन की कटुता हमारे जीवन के साथ ही समाप्त हो जाए।

रासमणि की बुझी हुई आँखो के स्नेहाशीष उमड उठता।

## 5

ऐन्द्रिला को अकेली पाकर उमा ने पूछा—"हाँ री! दूल्हा पसन्द आया? सच-सच बता।"

ऐन्द्रिला के गोरे गालो पर जैसे किसी ने रोरी मल दी। लाज से उसका सिर झुक गया। फिर भी बडी-बूढी की तरह ही उसने जवाब दिया, "वाह, न होने की क्या बात है? लडकियों के लिए दूल्हा पसन्द-नापसन्द का सवाल ही नही उठता है। यह तो एक जन्म की बात नही या कपडे लत्ते नही जो नापसन्द हुआ और उतार फ़ेका। पति-पत्नी का जन्म-जमान्तर का सम्बन्ध है।"

क्षण-भर के लिए उमा का चेहरा लाल हो उठा। सोचने लगी—'जन्म जमान्तर का सम्बन्ध है, ठीक ही तो। लेकिन क्या मुझे हर जन्म मे इसी अभिशाप

का बोझा ढोना पडा है ? या ढोना पडेगा ? क्या वह औरत भी जन्म-जन्म से मेरे स्वामी का पीछा करती आ रही है ? या उसका ही सम्बन्ध जन्म-जन्म से पक्का है और वह किसी अभिशाप के कारण ही इस बार नीच कौम मे पैदा हुई है और अपने एकान्त आग्रह और प्रेम के द्वारा स्वामी को नीचे खीच ले गई है ! फिर मेरा उनसे क्या सम्बन्ध था ?'

इसी प्रकार कितने ही सवाल मन मे उठे और मन मे ही रह गए। कुछ ही क्षण के अन्दर अपने को सम्हाल लिया उमा ने और मुस्कराते हुए पूछा, "तू तो काले रग से बडी नफरत करती थी ? काली चीज को देखकर कितना मुँह बिचकाती थी ? कोयी और माँगुर मछली भी नही खाती थी। अब इतना ज्यादा काला रग किस तरह बर्दाश्त करती है ?"

ऐन्द्रिला हाथ-पैर नचकाती हुई बोली, "यह अनहोनी बात कुछ मत पूछो, छोटी मौसी। काला रग सिर्फ सुना था। बस ! शादी के समय तो आँखो से देखा नही था। डर और लाज से मानो आँखे ही मुँद जाती थी, भला आँखे खोलकर कैसे देखती ? शुभ-दर्शन के समय एक बार आँखे खोली थी, लेकिन सच कहती हूँ मौसी उस समय कुछ भी स्पष्ट नही दिखाई दिया। हरिकेन लालटेन की रोशनी मे धुँधला-सा नजर आया, सब कुछ मिलकर एक हो गया था। दूसरे दिन फूल-छडी के समय भी तो शुरू से आखिर तक सिर झुकाए बैठी रही। माँ ने सिर उठाने से भी मना कर दिया था ताकि लोग दुलहन को बेहया न समझे। हाँ, सुहागरात (फूल-शय्या) को समय मिला। लेकिन मैं तो सयानी हूँ, जानती थी कि सभी कान लगाए होगे सो बिस्तरे पर लेटते ही तकिए मे मुँह छिपाकर नीद का स्वाँग बनाए पडी रही। हे भगवान्, स्वाँग तो सच हो गया रात ज्यादा हो चुकी थी न, मैं सचमुच सो गई।"

एक ही साँस मे इतनी बाते कहकर ऐन्द्रिला मानो दम भरने के लिए रुकी। लेकिन उसका रुकना उमा को क्यो अच्छा लगता। उस पर तो उस बालिका की ही भाँति खुशी का नशा जैसा चढ रहा था। सो रस लेती हुई वह आग्रहपूर्वक बोली, "उसके बाद ?"

"उसके बाद—आधी रात के करीब नीद खुल गई, अपने-आप। हडबड़ाकर उठ बैठी तो क्या देखती हूँ—मैया री मैया, कहने से विश्वास नही होगा, छोटी मौसी, मुझे ऐसा लगा कि मानो एक जगली भैंसा मेरे साथ सोया है। इतना डर लगा कि मैं फूट-फूटकर रो पडी। इससे उनकी भी नीद खुल गई। लेकिन वह बड़े समझदार है। उठते ही स्थिति समझ ली। फौरन छलाँग मारकर कमरे में जलती लालटेन बुझा दी और लौटकर मेरे दोनो हाथो को पकडकर कहा—'डर किस बात का—मुझे देखकर डर लगता है ? मैं कोई बाघ-भालू तो नही। देखो, अब तो डर नही लगता न'।"

"फिर ? तूने क्या कहा ?" साँस रोके उमा ने पूछा।

"मुझे तो तब दूसरा डर लगा। बोली—'तुमने जो झटपट बत्ती बुझा दी उससे कुछ अशुभ तो नही होगा ? 'फूल-शैया' की रात मे बत्ती तो बुझानी नही चाहिए।' तब उसने आदरपूर्वक बडे प्रेम से मेरे बदन और सिर पर हाथ फेरकर कहा, 'अब रात बाकी नही है, सवेरा होने वाला है। वैसे कहो तो बत्ती फिर से जला दूँ। मगर मुझे देखकर डर तो नही लगेगा ?' मैं उस समय "

बस लाज के मारे और नही बोल सकी ऐन्द्रिला। उमा ने भी आगे नही पूछा। कुछ देर चुप रहने के बाद उमा बोली, "लेकिन जमाई तो अच्छा है री, मुझे तो खूब पसन्द आया, क्या कहती है ?"

ऐन्द्रिला फिर उत्साहित होकर बोली, "यह तो मैं भी सौ बार कह सकती हूँ, आदमी बडा नेक है मौसी, इतना नेक है कि बाहर से देखने मे कुछ भी समझ मे नही आता, और जानती हो, उनको तमाखू व घोका खाने की आदत थी सो मैंने कहा, 'यह बेकार की चीज क्यो खाते हो, मुँह से बदबू आती है।' उसी दिन से रात को खाना खाने के बाद कुछ नही खाता है। इसलिए कि मुँह से बदबू न आए। फिर मुझे ही तरस आ गया तो कहा—'जब तुम्हारी इतने दिनो की आदत है तो न हो खाया ही करो।' तो भी नही खाते है, कहते है—'मेरी आदत बडी चीज़ है या तुम्हारी तकलीफ'।"

यह सुनते ही उमा की तो जैसे साँस रुक गई। वह धीरे-धीरे बोली, "तू ससुराल कब जाएगी ? एक साल के बाद ?"

इधर-उधर देखकर उमा के कान मे फुसफुसाकर ऐन्द्रिला बोली, "माँ यही कहती है। लेकिन मुझे यह बात पसन्द नही। मैंने अपने यहाँ से जोर लगाने को कह दिया है। वह जिद करेंगे तो माँ नही रख सकेगी मुझे। मुहूर्त्त तो पगधूलि से पहले से ही किया हुआ है। ऐसा ही मुहूर्त्त तो दीदी की शादी पर किया था। कायस्थ दीदी ने इस बार भी वैसा ही करने को कहा है। असली बात क्या है जानती हो, मौसी, पहले मैं भी सोचती थी कि ससुराल मे एक भी दिन नही रह सकूँगी, लेकिन अब ठीक इसके विपरीत हुआ है, उसके बिना अब एक पल भी यहाँ रहने को जी नही चाहता। मन अकुलाने लगता है। इच्छा होती है कि 'वह' भी साथ हों।"

उमा के सूखे होठो पर भी मुस्कराहट छा गई, "वह कौन री ?"

हँसी रोकती हुई मुँह फिराकर उपहास के स्वर मे ऐन्द्रिला ने जवाब दिया—"और कौन। वही जगली भैसा।"

× × ×

श्यामा भी इसी ताक मे रहती थी कि कब उमा अकेली मिले।

"अरी उमि, कल से एक बात सोच रही हूँ। माँ ने तो बिस्तरा पकड लिया है। तुझे चार-पाँच घण्टे बाहर काम करना पडता है किसी को वक्त-बेवक्त के लिए

तो घर मे रखना चाहिए, सो मैं कहती हूँ कि न हो तो कल ही तरू को हेम के साथ यहाँ भेज दूँ। बोल क्या कहती है ?"

दोनो हाथ जोडकर उमा बोली, "माफ करो, छोटी दीदी। अब नही चाहिए। भगवान् ने जो नही दिया वह मै जबर्दस्ती पाना नही चाहती हूँ। ऐन्द्रिला जब गई थी तब सात राते मैंने आँखो ही आँखो मे काटी थी। न, अब वह साध मिट गई मेरी।"

दुखित होकर श्यामा ने कहा, "माँ की बीमारी के कारण ही मैंने कहा था, नही तो और क्या था तरू लिखना-पढना सीखेगी इसकी आशा मै नही करती। खेंदी ही कितना सीख सकी। अपनो को भी भला कोई पढा पाता है ? वेतन देना पडे तो फिक्र हो !"

उमा जवाब देने ही को थी लेकिन सँभल गई। सहज भाव से बोली, "माँ के लिए चिन्ता नही करनी होगी। बडी दीदी तो दोपहर मे आ ही जाती है। सोचती हूँ अब जबर्दस्ती वहाँ से उठाकर उन्हे यही रख लूँ।"

कमला दीदी और गोविन्द ! माँ कब मर जाएगी श्यामा को शायद खबर भी नही मिलेगी। अथवा शायद मरने के पहले ही माँ का कैसा खयाल हो जाए और जो कुछ है, उन्ही लोगो मे बाँट दे। कुछ कहा नही जा सकता। मरनेवाले की बुद्धि प्राय भ्रष्ट हो जाती है ऐसा लोग कहते है। माँ के पास बिलकुल कुछ नही है— ऐसी बात नही है। अन्यथा यह ठाठ-बाट कहाँ से चलता।

उसने एक बार फिर चेष्टा कर देखी, "हाँ दीदी के आ जाने से भी सुविधा होती, पास बनी रहती।" उमा चुप रही।

"न हो तो दीदी से पूछ ही लेती हूँ।" अपने आप ही कहा श्यामा ने।

"दुहाई है छोटी दीदी। मुझे बख्श दो, तुम्हारे पैरो पडती हूँ। ये यातनाएँ मुझसे बर्दाश्त नही होती।

"पता नही क्यो किसी को अपने लोग बर्दाश्त क्यो नही होते और पराये अच्छे लगते है। धीरे-धीरे कितना कुछ सुनूँगी। तुम्हे मेरे बेटे-बेटियाँ क्यों नही सुहाते, समझ मे नही आता। उन्होने तुम्हारा क्या बिगाडा है ?" नाराज होकर श्यामा चली गई वहाँ से।

उमा चुपचाप बैठी रही।

शायद इतना न बोलने से भी चलता। लेकिन सचमुच वह भी अब लाचार हो गई थी।

# विंशति परिच्छेद

## 1

रासमणि दिनो-दिन बिस्तरे से लगती जा रही थी। उमा समझने लगी कि अब कोई उम्मीद नही। ज्यो-ज्यो यह समझती, त्यो-त्यो उसके कलेजे का रक्त जमने लगता कि घर का यह एकमात्र आश्रय और बडो का सहारा दोनो ही माँ के बाद एक साथ टूटकर गिर पडेंगे। पर वह कर भी क्या सकती थी।

बडे यत्न से समझा-बुझाकर होमियोपैथ डॉक्टर छुडाकर उसने एक वैद्य बुलाया और वैद्य के बाद फिर ऐलोपैथिक डॉक्टर। रासमणि ने अपनी जिन्दगी मे कभी डॉक्टरी दवा नही खाई थी, काफी ऐतराज था उनको। आखिर उमा के आँसुओ के कारण वे राजी हुई। आह! उसे तो बिल्कुल बेसहारा छोडे जा रही हूँ, अतएव मुझे पकड रखने जैसी उसकी चेष्टा स्वाभाविक ही तो है, डॉक्टर को बुलाने से ही अगर उसके मन को शान्ति मिलती है तो मिले।

डाक्टरी दवा तेज, उग्र और कडवी होने के कारण उनको उल्टी आती थी, आँखो से पानी निकलता था किन्तु फिर भी किसी प्रकार खा ही लेती थी।

लेकिन किसी से भी कुछ नही हो सका।

बुखार रोज दोपहर के बाद नियमित रूप से चढता और शाम होने के कुछ देर बाद उतर जाता। रह जाती बाकी सिर्फ बेहद कमजोरी।

इन्ही दिनो उमा ने कहा, "चलिए माँ, आपको देवघर ले जाऊँ, जो कुछ है सब बेचकर भी आपको ठीक करा लाऊँ। सुना है देवघर की जलवायु बडी अच्छी है। जो भी जाता है स्वस्थ होकर आता है। बाबा वैद्यनाथ की कृपा से आप भी अवश्य अच्छी हो जाएँगी।"

रासमणि हँसी। बहुत कठिनाई से बोली, "पागल हो गई है तू? मै तो अब मुर्दा ही हूँ, मुर्दे को लेकर कहाँ जाएगी। रास्ते मे ही समाप्त हो जाऊँगी। न, अब और धर-पटक करने की जरूरत नही।"

कमला ने भी जिद की "चलिए न हो माँ, न सैकण्ड क्लास मे सुलाकर ले जाएँगे, उसमे उतनी भीड नही रहती है। पहले से सीट रिजर्व हो जाती है। न हो मैं ही अपना कोई गहना बेच डालूँगी।"

बीच मे ही डाँट दिया उन्होने, "मेरा खातिर तू किसका गहना बेचेगी, सुनूँ जरा? वह तो तेरे बेटे के लिए है। बेटे को आदमी बनाना होगा। मुझ मुर्दे को अब श्मशान भेजने की व्यवस्था करो। अब तो चावल का भात भी मुझको तीता लगता है। मैं क्या और जीऊँगी? मेरे दिन बीत चुके।"

दिन बीतने के अन्य लक्षण भी क्रमश प्रकट होने लगे।

बच्चो जैसा स्वभाव हो गया उनका। वह गम्भीरता और वैसी स्थिर बुद्धि भी

नही रही अब । कौन कहेगा कि यह वही आदमी है । भोजन का लोभ कभी नही था, अब वह भी होने लगा । केवल कुपथ्य ही खाना चाहती, न देने से नाराज हो जाती । डाक्टर ने भात और कच्चे केलो का शोरवा खाने को कहा लेकिन कच्चे केलो का शोरवा देखते ही क्रुद्ध हो जाती । जिस दिन हाथो मे थोडी भी ताकत रहती उसी दिन भात फेककर बिखेर देती और रोने लगती । दूध-बार्ली खिलाते वक्त दाँती भीच लेती । केवल एकादशी की बात याद रखती । अक्सर पूछती, "हाँ री, एकादशी कब हुई । तुम लोग मुझे एकादशी के दिन खाना तो नही खिला देती हो ?"

वे लोग पहले समझाने की कोशिश करती, इतने दिनो तक एकादशी करती आई, अब शरीर कमजोर हो गया है अब आप कैसे कर सकेगी ? लाचारी मे नियम की पाबन्दी नही रहती । लेकिन रासमणि किसी तरह नही मानती थी। कहती, "इतने दिनो से करती आई अब कुछ ही दिनो के लिए क्यो छोड दूँ ? इससे क्या लाभ होगा ? शरीर तो अब जाना ही चाहता है, इसे दो दिन और रोकने के लिए क्या अपना धर्म नष्ट कर दूँ ?"

आखिर झूठ का सहारा लेकर काम चलाना पडता । कहा जाता, "अभी देर है ।" कुछ दिनो के बाद फिर कह दिया जाता, "एकादशी तो कब की बीत गई । हाँ, आपने तो उस दिन की थी । आजकल बहुत भूलती है आप ।"

बच्चो की तरह विश्वास भी कर लेती वह । कहती—"हाँ, की होगी। मरने वाले को क्या सब याद रहता है ? सब-कुछ भूल जाता है, कुछ भी याद नहीं रहता ।"

एक बार ठीक एकादशी के एक दिन पहले अचानक बोल उठी—"जरा पचाग लाना, मैं आज खुद पचाग देखूँगी ।" विवश हो पचाग लाना पडा। हाथ काँपते थे, किताब पकड नही सकती थी । गोविन्द किताब को उनकी छाती पर रखकर थामे रहा । आँखो की रोशनी धुँधली हो गई थी कुछ भी साफ-साफ दिखाई नही देता था । पचाग अधिक फासले पर रखकर बहुत कठिनाई से पढने की चेष्टा की लेकिन वार-तारीख सब गडबडा गई । अन्त मे उन्होने गोविन्द से ही कहा, "आज कौन-सी तारीख है देख तो । झूठ बोला तो फिर तुझे कभी प्यार नही करूँगी ।"

कमला ने आँख के इशारे से मना भी किया, लेकिन गोविन्द उसे नही समझ सका । उसने तारीख बतला दी । रासमणि ने कुछ हिसाब-सा लगाकर कहा, "कल ही तो एकादशी है । ठीक है, अब की बार जरूर याद रखूँगी ।"

दूसरे दिन सचमुच उनको कुछ भी नही खिलाया जा सका । शाम को तेज बुखार के कारण जब प्यास से उनका गला सूख गया तो वे हाँफती हुई बोली, "थोडा गगा जल मुँह मे दे दे उमि, सुना है गगा जल मे दोष नही । अब रह नही पा रही हूँ ।"

वही एक घूँट गगाजल पीकर दिन और रात बिता दिए। आश्चर्य है कि उन लोगो को जैसी आशका थी वैसा कुछ भी नही हुआ। वे रोज की तरह वैसी ही बनी रही।

## 2

पुराने शरीर मे भी कभी-कभी बिजली-सी ताकत आ जाती है। जेठ महीने के शुरू मे एक दिन रासमणि उठ बैठी। बोली, "श्यामा को खबर दे उमि, मेरे पास जो कुछ थोडी-बहुत चीजे है सब अपने जीते जी बँटवारा कर देना चाहती हूँ, नही तो मैं जानती हूँ, तुम लोग श्यामा से नही जीत सकोगी।"

उमा ने उदासीन भाव से कहा, "आपके इस दुर्बल शरीर को कष्ट देना ठीक नही, माँ। ले ले वही सब कुछ। मुझे अब क्या करना है।"

"मुझे उपदेश देने की जरूरत नही है, बेटी! जो मैं कहती हूँ सो करो। बर्तन रहेगे तो अभाव के समय इन्हे बेचकर भी कुछ तो काम चल ही सकेगा, बीमार होने पर डॉक्टर भी बुलाया जा सकेगा। तुम क्या मुझसे ज्यादा समझदार हो?"

फिर भी उमा बोली, "उसके बाल-बच्चे हैं, उसी को इनकी ज्यादा जरूरत है।"

"मैं तुमसे बहस नहीं कर सकूँगी, बेटी! मेरा मुँह दुखने लगता है। उसके बाल-बच्चे है, इसीलिए तो उसको इनकी जरूरत कम है। वे बडे होकर उसकी देखभाल करेंगे। तुम्हारी देखभाल कौन करेगा? तुम कौन इस काबिल हो कि हजार-पाँच सौ रुपए कमाकर इकट्ठे कर सकोगी?"

मजबूरन श्यामा को चिट्ठी लिख दी गई।

श्यामा घबडाती दौडी आई। इतने दिनो से जो उम्मीद उसने कर रखी थी, उस पर पानी फिर जाने का डर था।

उम्मीद ही ज्यादा थी उसे। सोचती थी माँ ने क्या सच ही कहा था कि उनके पास कुछ भी नही है? ऐसा तो नही लगता।

रासमणि ने इशारे से बैठने की इच्छा जाहिर की। तीन-चार तकियो के सहारे उनको बैठाया गया। फिर कमला और उमा सन्दूक से बर्तनो को ला-लाकर उनके सामने सजाकर रखने लगी। श्यामा भी हाथ बटाने लगी। बर्तनो के ढेर लग गए—काँसे के, खगडा के, ढाका के, कटक के भी दो-चार। बडे-बडे वज़नदार थाल।

इसके अलावा पत्थर के भी बर्तन थे। सफेद पत्थर के सेट, कसौटी पत्थर के सेट। जयपुर, मुँगेर और गया के अच्छे-अच्छे बर्तन। श्यामा की लालची आँखे चमकने लगी इन्हे देख-देखकर।

जितने बर्तन थे सब के सब तरतीबवार रख दिये गए।

उसके बाद आँखो का सकेत पाकर उमा ने हाथीदाँत के काम का एक लकडी का बक्सा लाकर रासमणि की बगल मे रख दिया। गहनो का बक्सा था वह। उत्कण्ठा से श्यामा की तो जैसे साँस रुकने की नौबत आ गई। पता नही ऐसा कौन-सा अज्ञात रहस्य छिपा हुआ था उसमे।

रासमणि अँगुली से बताती गई और कमला तीन हिस्सो मे सब बाँटती गई। जिन बर्तनो की सख्या तीन से विभाज्य थी उनका भाग तो आसानी से लग गया। जैसे एक साइज की छ थालियाँ थी तो प्रत्येक हिस्से मे दो थालियाँ आईं। जिनका भाग पूरा-पूरा नही लगता, उनके बारे मे रासमणि मन-ही-मन कुछ हिसाब लगा लेती थी। जैसे चार छोटी कटोरियो को दो हिस्से मे देकर तीसरे हिस्से मे अन्दाज से एक बडा कटोरा रखवा देती। इतने थोडे से परिश्रम से ही उनको थकावट आ गई और वे बीच-बीच मे आँखे बन्द कर कुछ देर आराम करने लगी। पर फिर आँख खोलकर काम शुरू कर दिया।

बहुत देर तक चुपचाप बँटवारा होते देख-देखकर जब श्यामा से न रहा गया तो बोली, "यह जो बराबर-बराबर हिस्से बाँटे जा रहे है, यह क्या उचित है माँ ? मेरे इतने सारे बाल-बच्चे है, उमा के तो एक भी नही, और दीदी के भी तो सिर्फ एक ही है। ज्यादा जरूरत तो मुझे ही है इन चीजो की।"

शर्म से कमला और उमा के मुँह लाल हो उठे। वे सोचने लगी कि श्यामा इस तरह बेशर्मी से कैसे बोल सकी ? श्यामा को बिलकुल शर्म नही लगी, ऐसी बात नही लेकिन उसके दारिद्रयपूर्ण जीवन ने अब तक उसे यही शिक्षा दी थी कि ऐसे मामलो मे शर्म के लिए कोई जगह नही है। शरमाने से घाटा ही पल्ले पडता है।

रासमणि अपनी बीमार और थकी आँखो से श्यामा को कुछ देर तक ताकती रही। आजकल उनको बोलने मे कुछ समय लग जाता है। उतनी देर मे ही वे धीरे-धीरे कुछ ताकत इकट्ठी कर लेती है। बोली, "अपने बेटे-बेटियो की फिक्र तुम करो। मै अपनी बेटियो की करती हूँ, इससे ज्यादा फिक्र करने से तो मेरा काम चलेगा नही। कहाँ तक और किस-किस की चिन्ता करूँ ? ऐसा भी तो हो सकता है कि इस गोविन्द के ही दस लडके और हो जाएँ और तुम्हारे हेम के एक भी नही हो। उमा का पति आया था, मुलाकात कर गया है। कौन जाने, उनकी मति कब बदले—हो सकता है कभी इसी उमा का घर बच्चो से भर जाए! इस वक्त चूँकि तुम्हारे बाल-बच्चे है इसलिए तुम्हे कुछ देना और भी अनुचित है। तुम्हारा हेम तो तुम्हे अभी से कमाकर खिला रहा है। उमा को कौन देखेगा ?"

"हेम ही देखेगा"—झट-से बोल उठी श्यामा। वह हार मानने वाली नही थी।

"सो मैं जानती हूँ। बेबस होकर तुम्हारे बेटे के गले पड जाने पर एक मुट्ठी भात वह भले ही दे दे, लेकिन बीमार होने पर कर्ज लेकर डाक्टर नही बुलाएगा। यह भी सही है। मान लो, अगर हेम ही उसकी देख-भाल करेगा और उमा की

किस्मत कभी नही बदलेगी तो भी तो ये चीजे हेम को ही मिलेगी एक दिन ।"

श्यामा फिर कुछ बोलने वाली थी, लेकिन रासमणि ने अपने काँपते हुए हाथ की तर्जनी से मना कर दिया और कमला को बँटवारा करने के लिए इशारा किया।

जब सभी बर्तनो का बँटवारा हो चुका तो रासमणि ने फिर एक बार श्यामा के मुँह की ओर नजर डाली। एक फीकी लेकिन व्यग्यपूर्ण मुस्कान उनके होठो के कोने-कोने पर खेल गई।

"अब मैं समझी बेटी कि क्यो तुम दौड-दौडकर उनकी इतनी मदद कर रही थी। 'खागडाई' (मुर्शिदाबाद मे एक जगह का) काँसे का बड़ा कटोरा और ढक्कन-दार गिलास लाते-लाते कहाँ गायब हो गया ? बता दो—गोविन्द जाकर ले आवे।"

कमला और उमा स्तब्ध। दोनो को शका हुई कि कही माँ का दिमाग सचमुच खराब तो नही हो गया ? इस तरह की बात वे कैसे बोल सकी। लेकिन श्यामा के लाल और झुके हुए चेहरे को देखकर वे और भी स्तम्भित हो गई। अपराध की स्वीकृति का ऐसा स्पष्ट लक्षण उन्होने इसके पहले और किसी के चेहरे पर कभी नही देखा था। श्यामा का गोरा मुखमण्डल आग की तरह लाल हो उठा, इन्ही कुछ क्षणो मे उसके ललाट पर पसीने की बूंदे बडी-बडी होकर मोतियो की तरह चमकने लगी।

श्यामा ने दो बार थूक निगलकर गले को तर किया, फिर बोली, "आप अका-रण मेरा अपमान करती हैं माँ—लाते समय बहुत भारी लगा इसलिए रख दिया था। उसके बाद एकदम भूल गई।"

"ठीक है, कहाँ रखा है बताओ ?"

"ला देती हूँ।"

श्यामा लगभग दौडकर ही गई। उमा ने झाँककर देखा दोनो बर्तन सन्दूक के नीचे से ही निकले। रासमणि हँसने लगी।

"मैं भूल जाया करती हूँ यह सही है, होना भी चाहिए। लेकिन सुना है आयु समाप्त होने पर फिर सब कुछ याद आता है। मेरी भी अब ज्यादा उम्र बाकी नही है, बेटी। इस तरह सब कुछ याद आ रहा है कि जैसे सब मेरा गिना-चुना हुआ है।

उमा की आँखे डबडबाई हुई तो थी ही, अब और नही रुके आँसू, बह चले झरने की तरह।

उसकी ओर देखकर रासमणि फिर हँसी। श्यामा ने कटोरा और गिलास लाकर उनके सामने फर्श पर रख दिए और खुद मुँह लटकाकर बैठ गई। कुछ भी बोलने की शक्ति नही रही उसमे।

रासमणि बोली, "मेरी इच्छा है कमला कि ये दोनो बर्तन महाश्वेता के दूल्हे को दूं। क्या राय है तुम्हारी ?"

कमला तुरन्त बोल उठी, "ठीक ही तो है, दे दीजिए न माँ।"

"और वह नक्काशी की हुई बडी रकाबी, जिसे फर्माइश से बनवाया था और जो दो सेर वजन की है खेदी के दूल्हे को देना। नानी की यादगार के तौर पर, और क्या!"

इस बार गहने का बक्सा खोला गया। सब-कुछ भूलकर श्यामा लालच से फिर उधर मुखातिब हुई। उसका मन आशा और निराशा के बीच डोल रहा था।

लेकिन बक्से से जो कुछ निकला वह सचमुच निराशाजनक ही था। कोई दस अदद अशर्फियाँ, सात लडियो का एक हार, एक जोडी बडे कर्णफूल, दो जोडी झुमके, एक कडा, एक अदद पहले ही बिक चुका था। सोने के कुछ टुकडे, दो अँगूठियाँ, एक हीरा-जडा नाक का फूल और असली मोतियो की एक नथ। रासमणि टकटकी लगाकर उधर ही देख रही थी, देख-देखकर उनकी आँखो मे भी आँसू भर आए। कब-कब को कैसी-कैसी बाते उन्हे याद आ रही थी, पता नही। कितनी ही पुरानी स्मृतियाँ और अतीत के दाम्पत्य प्रेम का धुँधला इतिहास! प्रत्येक गहने के पीछे निस्सदेह एक छोटी या बडी कहानी थी। इतने लम्बे अर्से के बाद आज वे कहानियाँ शायद उस मरणासन्न वृद्धा के मन मे भीड की तरह इकट्ठी हो गईं। नारियो के लिए गहने ही सबसे अधिक प्रिय वस्तु होती है, लेकिन रासमणि के लिए तो ये सर्वाधिक प्रिय होने के साथ-साथ उनके लम्बे असहाय जीवन के पाथेय भी थे। उनके जीवन मे दु:ख और कठिनाइयाँ थी फिर भी उन्होने अन्त तक किसी के आगे हाथ फैलाए बिना ही सम्मान के साथ जिन्दगी बिता दी और उनके गहनो की मदद से ही यह सम्भव हुआ। किसी समय वे पति की अनन्य प्रियतमा रह चुकी थी, इसका प्रमाण थे ये सोने के टुकडे। कारणवश या अकारण ही अपनी प्रिया को प्रसन्न करने के लिए पति ने नए गहने प्रेमोपहार स्वरूप दिए थे। ये गहने उसी प्रेम के प्रतीक थे। इसी कारण रासमणि की नजरो मे ये गहने साधारण गहनो से कही अधिक मूल्यवान थे।

काफी अधिक देर तक देखती रही रासमणि उन गहनो को। उनकी क्षीण दृष्टि आँसुओ से धुँधली हो गई। फिर भी वे नजर नही हटा सकी। अन्त मे एक लम्बी साँस छोडकर तकिए पर निढाल हो गई। कुछ भी बोल नही सकी। चिन्ता से मन बोझिल हो उठा या क्या बात थी किसी की भी समझ मे कुछ नही आया। घर के सभी लोग उनकी तरफ एक नजर से देख रहे थे केवल उमा को छोडकर। उसके आँसू किसी तरह नही थम रहे थे। वह बाहर बरामदे मे पडी फूट-फूटकर रो रही थी।

आखिर एक बार रासमणि ने फिर आँखे खोली। उँगली के इशारे से कमला को अपने पास बुलाया। श्यामा भी उत्सुकतावश उनके पास पहुँच गई।

रासमणि ने फुसफुसाकर कहा, "मै और जितने दिन जिऊँगी उसके लिए तो एक बाला ही काफी है। अशर्फियाँ श्राद्ध के खर्च के लिए रही। इनसे ज्यादा खर्च

मत करना। अधिक आयोजन की जरूरत नही। सात लडीवाला हार उमा को देना, उसके काम आएगा। कर्णफूलो की जोडी गोविन्द की रही। झुमके दोनो जोडी श्यामा के रहे। और सोने के टुकडे, अँगूठियाँ वगैरह सभी उमा के लिए रहने दो। उसी को सबसे अधिक असहाय छोडे जा रही हूँ, इन चीजो को उसे देने मे तुम लोगो को कोई ऐतराज नही होना चाहिए। तुम लोगो मे से किसी की भी शादी खूब अच्छे घर मे नही कर सकी, लेकिन ईश्वर जानते है कि इसमे मेरा कोई कसूर नही। फिर भी इस अभागिनी उमा की चिंता मुझे परलोक मे भी चैन नही लेने देगी। सिर्फ तुम लोगो के दु ख की चिन्ता मे घुल-घुलकर ही मैं बूढी हो चली हूँ, यही सोचकर तुम लोग मुझे माफ करना।"

रासमणि और भी निढाल और मूर्च्छित-सी हो गई। कमला दौडकर पखा ले आई और हवा करने लगी।

सिर्फ श्यामा ही पत्थर की तरह जड बनी बैठी रह गई। उसकी निराशा का अन्दाज उसके बेरग और भावशून्य चेहरे को देखकर केवल रासमणि ही लगा सकी, लेकिन उस समय उनके अन्दर और कुछ कहने या करने की ताकत नही थी।

## 3

रासमणि ने दवाएँ तो पहले ही बिलकुल छोड दी थी। यहाँ तक कि अब डा० बराट् की होमियोपैथिक दवाओ से भी चिढने लगी थी। उन्हे कोई भी चीज अच्छी नही भाती थी। कमला जिद करती तो वे कहती, "क्यो नाहक मजबूर करती है, समझती नही कि अब मेरा यहाँ का दाना-पानी खत्म हो चुका। नही तो मुँह मे सब कुछ · · तीता ( कडवा ) क्यो लगता। अब आखिरी वक्त आ गया है। चावल जब कडुए लगने लगे, मैं तो तभी समझ गई थी कि अब शरीर पर और दवाब डालना ठीक नही।"

फिर भी कमला सानुरोध कहती, "फिर भी जब तक साँस तब तक आस।"

"यह देह अब जल्दी समाप्त क्यो नही हो जाती। सुना है आदमी बिना खाए-पिए भी जिन्दा रहता है। अब इस देह को जिन्दा रखने मे रखा ही क्या है, फिजूल तुम सब को तकलीफ देना।"

बुखार देखना भी मुश्किल हो गया। थर्मामीटर लगाते ही बिगड उठती। और उस सूखे ठूँठ से शरीर मे न जाने कहाँ से इतनी ताकत आ जाती। अभी तक दो थर्मामीटर तोड चुकी थी। एकाएक अपना दुबला-पतला हाथ बढाकर कट से उन्हे तोड दिया। उमा थोडी सतर्क भी नही हो सकी। उस पर भी मुँह बनाकर कहा, "बस यही सीख लिया है। और तो कुछ काम नही है करने को जैसे। मानो बुखार मालूम होते ही मैं ठीक हो जाऊँगी।"

अन्तिम दिन वह एक बात ऐसी कह बैठी कि उमा तो कमरे से भाग खडी हुई,

यह क्या, यह कैसा परिवर्तन। आजीवन मितभाषी महिमामयी माँ का यह कैसा पतन। तो क्या इसी को विक्षिप्तावस्था कहते है।

कमला ही उसे सान्त्वना देती, मरने से पहले यही होता हे, कहते है इसे मरने के पूर्व मतिभ्रम। इसे सहना ही होगा बहन, इसका कोई इलाज नही।

वैसे चिकित्सादि बातो से 'विरक्त' (परेशान या तग) न करने पर रासमणि चुपचाप खोई पडी रहती। बोलती-चालती तक नही और न करवट ही बदलती। सिर्फ फेफडो मे प्राण तडफडाते। सब समझ गए कि धीरे-धीरे अब समय नज़दीक आ रहा है। कमला बोली, "उमी, सभी सम्बन्धियो (परिचितो) को खत लिख दो, इस वक्त अधीर होने से कैसे काम चलेगा। कर्त्तव्य तो निभाना ही पडेगा, यदि कोई देखना चाहे तो देख जाए।"

शान्त भाव से उमा जवाब देती, "गोविन्द से कहो जीजी। परिचित कौन-कौन है मैं यह भी तो नही जानती।"

लाचार हो कमला को गोविन्द से ही कहना पड़ता। सच तो यही था। उनके परिचित, आत्मीय-स्वजन थे ही कितने ?

जरा इधर-उधर कर कमला पूछती, "तो फिर शरत् को भी तो खबर पहुँचानी चाहिए। क्यो क्या ख्याल है ?"

उमा चौक पडी। उसके रात्रि जागरण से शीर्ण-विवर्ण हुए चेहरे पर पल भर के लिए एक रक्तिम आभा खिल उठी।

फिर बाद मे सहज भाव से कहा, "नही। क्या जरूरत है ? अब सम्पर्क ही क्या है। माँ की मृत्यु के समय झूठ-मूठ जले पर नमक छिडकने से क्या लाभ ?"

"ठीक कहती हो।" कमला को भी बात की सचाई माननी पडी।

हेम ने आकर पास बैठते ही नानी का शीर्ण हाथ अपने हाथो मे ले लिया। जरा डरते-सहमते हुए नानी से घनिष्ठता बढाने का साहस उसे कभी नही हुआ। पर आज वे लाचार थी इसीलिए इतने दिनो की दुराई भूल गया वह। चुपके से पुकारा, "नानी।"

होठो पर जीवन के लक्षण उभर आए। अधर थोडे फडके, शायद पूछना चाहते थे कौन ? पर दन्तहीन गह्वर से अपने शिथिल अधरो को किसी कदर भी खोल नही सकी। शनै:-शनैः पलक हिलने लगे। आँखे आधी मुँदी रही। मानो पूछा, "कौन ?"

"मैं हेम हूँ, नानी। मुझसे कुछ कहेगी ?"

उन धुली और बदरग आँखो ने हेम को पास बुलाया। हेम बिलकुल नजदीक पहुँच गया।

धीरे-धीरे रासमणि ने कहा, "बेटा, मुझे एक वचन दोगे ? मेरा कहा सुनोगे ?"

"जरूर सुनूँगा नानी! वचन देता हूँ।"

"जहाँ तक हो सके, अपनी छोटी मौसी का खयाल रखना । तुम्हारी माँ शायद अपनी छोटी बहन को भूल जाए। पर तू उसे सम्भालेगा न ? बोल, वचन दे।"

"मैं अपनी शक्ति भर उनकी देखभाल रखूँगा नानी। आप निश्चिन्त रहे।"

"जीते रहो बेटा । शायद इसीलिए प्राण निकलना नही चाहते थे। तू अभी नादान है तो भी तेरी कही बातो से मुझे काफी तसल्ली मिली है । मृत्युशैय्या का यह अन्तिम अनुरोध याद रखना ।"

फिर उनकी आँखे बन्द हो गईं। ओठ भी मानो इसी गह्वर पर पुनः जकड-से गए। केवल दोनो आँखो के कोरो से दो बूँद आँसू लुढक पडे।

अभयपद के पास आकर बैठते ही एक बार फिर आँखे खुली। उसने सिरहाने बैठकर धीरे से पुकारा, "नानी जी !"

न जाने उस जडवत् आच्छन्न अवस्था मे भी वे कैसे नया स्वर पहचान गई।

इस बार भी पलको मे कम्पन हुआ, धीरे-धीरे आँखे खुली। पर इस बार भोहो मे भी बल पडे। अर्थात्, 'विस्मयबोध' प्रकट हुआ।

"नानी जी, मैं अभयपद हूँ।"

कमला ने झुककर कहा, "माँ, आपके नात-जमाई आए हैं। बडे नात-जमाई—महा के पति।"

प्रसन्न मुस्कान खिल उठी चेहरे पर। होठो को अच्छी तरह खोल नही सकी। पर फैलाकर बता दिया कि हँसना चाहती हूँ। काफी देर बाद अधर हिलने लगे, शायद आशीष दे रही थी।

अभयपद ने पूछा, "अब कैसी है, नानी जी ?"

इस बार पूरी तरह हँसी फूट पडी। जरा गर्दन भी हिला दी ।

फिर बाद मे किसी तरह कहा, "बिल्कुल अच्छी हूँ बेटा । अधिक और देर नही है।"

"नानी जी कुछ खाइएगा ? क्या खाना चाहती है बताइए ।" अभयपद ने जरा सकुचित होकर पूछा। इस समय और क्या कहा जाए, उसकी समझ मे ही नही आया।

आँखे आश्चर्य से विस्फारित हो गई। रासमणि मानो पहले प्रश्न का अर्थ ही नही समझ सकी। फिर बडी मुश्किल से कहा, "बेटा तू खिलाएगा ! अपने पैसे से ?"

"जी नानी जी। मैं ही खिलाऊँगा।"

"राज-राजेश्वर हो, बेटा ! जीते रहो ! महा का अहोभाग्य है, जो तुम्हारे हाथो पडी है।"

"पर आप क्या खाइएगा, यह तो नही बताया।"

एक लम्बी नीरवता। मृत्युपथगामिनी शायद अपने विगत जीवन के धुंधले अतीत से अपना प्रिय खाद्य ढूंढ रही थी । शायद आज सारा अन्तर-बाह्य एकाकार हो उठा था, प्रिय-अप्रिय, स्मृति और चिन्ताशक्ति सभी किसी अतल अँधियारे मे समाए थे, थाह नही कर पा रही थी ।

आखिर अधरो से बोल फूटे—"अनन्नास खाऊँगी बेटा। अनन्नास और गरम सन्देश खिलाओगे न ?"

"अभी लाता हूँ, नानी जी।"

यह अनन्नास का मौसम नही था। वैशाख जो ठहरा । तो भी अभयपद हॉग मार्केट से खोज-बीनकर पका अनन्नास ले ही आया । और साथ मे तीनकौडी हलवाई की दुकान से गरम-गरम सन्देश भी ।

पर कमला जब अनन्नास छीलकर उन्हे खिलाने लगी तो वह पिनक उठी, "तुम सब मिलकर मुझे एकादशी के दिन खिलाने आई हो ? जा हट परे, थू-थू ।"

कमला व्याकुल हो समझाने लगी, "माँ, आज तो चतुर्दशी है। आपको छूकर कहती हूँ आज एकादशी नही है। परसो एकादशी का व्रत हो गया है। कल त्रयोदशी थी, और आज चतुर्दशी है। आप खाइएगा ।"

"चलो हटो, दूर हो जाओ। सर्वनाशी सब। आखिरी वक्त भी मेरा सर्वनाश करने आए हो ।"

अभयपद ने समझाया, "मैं कहता हूँ, नानी जी, आज एकादशी नही है । वरना मैं ये चीजे लाता ही क्यो ?"

"तुम सब बेईमान हो। मैं खूब जानती हूँ। थू-थू !"

रासमणि ने भरसक होठ दबा लिए । लाख कोशिशो के बावजूद भी कोई उन्हे समझा न सका कि आज एकादशी नही है ।

पूर्णिमा को सुबह होते ही रासमणि ने दम तोड दिया। पिछले दिन से जो मुँह बन्द किए पडी, वह फिर नही खोला। आँखे भी नही खुली। निस्तब्ध जडवत् पडी रही। सबने अनुमान लगा लिया मृत्यु की छाया घनीभूत होती जा रही है। प्राय: सारी रात सभी उसे घेरे बैठे रहे। तीनो लडकियाँ धेवती-धेवते, नात-जमाई, समधी। केवल दामाद ही नही थे वहाँ। नरेन का तो कोई ठिकाना नही—और शरत् को जान-बूझकर ही खबर नही दी गई।

रात के अन्तिम प्रहर मे श्वास लडखड़ाया । धीरे-धीरे टूट गया । पास ही राघव घोषाल बैठा था। बोला, "अब अधिक देर नही। श्वास टूट चुका है—अब आखिरी वक्त हो आया। गोविन्द तुम बेटा जरा गगाजल मुँह मे डाल दो । तुम सब जप करो 'नमोस्तुते ब्रह्ममूर्तये।' गगा-यात्रा कराओगे क्या ?"

अश्रुमुखी कमला ने इस पर घोर आपत्ति की। बडी मौसी का उदाहरण ही काफी था। अन्तिम वक्त, मानो श्वास भी अकस्मात् सहज हो उठा । फिर एक

बार होठ फडफडाए। ऐसा लगता मानो कुछ कहना चाहती हो।

मुँह के पास कान ले जाकर सुना अभयपद ने कि रासमणि कीर्तन कर रही हैं .

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे॥"

गला साफकर अभयपद बोला, "वे भी कीर्तन कर रही है। आप सब···" उससे आगे नही कहा गया। क्रन्दन के कलरव मे राघव घोषाल का कण्ठ ही सुनाई पड़ता था।

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे॥"

गोविन्द गगाजल पिलाने जाता, पर हाथ काँप गए और वह गले पर लुढक गया, अन्त मे राघव घोषाल ने हाथ पकडकर पिलाने की कोशिश की। पर गगा-जल किसी तरह भी गले के नीचे नही गया।

अपने दीर्घजीवन की बहुत व्यथा-वेदना का सचय लेकर रासमणि असीम सान्त्वना की खोज मे किस अज्ञात पथ की ओर चल पडी यह कौन बता सकता है?

## एकविंशति परिच्छेद

### 1

मरघट पर ले जानेवालो की कोई खास कमी नही थी। राघव घोषाल के लडके, दोनो दामाद, हरिनाथ और अभयपद और हेम। राघव घोषाल स्वय भी थे। तो भी रोने की आवाज सुनकर मुहल्ले के और भी आदमी आ गए। मुहल्ला कायस्थ-प्रधान होने पर भी ब्राह्मणो के कुछ लडके मिल ही गए। उन्होने खुद ही साथ चलना चाहा। उस मुहल्ले मे रासमणि काफी दिनो से रहती थी, उनकी प्रात काल सद्य-गगास्नान सफेद धुली धोती से परिवृत्त हस्ती से अधिकाश मुहल्लेवासी परिचित थे। उन्हे दूर से देखते ही ससम्मान रास्ता छोड दिया करते थे वे। निर्विरोध आत्मसम्मान सम्पन्ना इस महिला के प्रति सभी मन-ही-मन श्रद्धा करते थे। अत उनके चल बसने से ही सारे पड़ौसी शोक प्रकट करने आए।

सादिक मियाँ भी जीवित थे। हालाँकि विगत दो-तीन वर्षों से वह अपनी याद्दाश्त खो चुके थे। न तो किसी को पहचान ही पाते थे और न कुछ समझ ही सकते थे। पर न जाने क्यो आज इस घर से आती रोने की आवाज सुनते ही एकाएक हो-हाँ कर रो उठे। "जरूर, मेरी बेटी गुज़र गई है, मेरी बेटी। मुझे तुम सब ले चलो, जरा अन्तिम बार देख आऊँ।"

उमा सिर्फ एक बार रो उठी थी—माँ की मृत्यु निश्चित है यह जानते ही। फिर नही रोई वह, मुँह भी ऊपर नही किया। माँ को जकडे उसके सीने से मुँह छिपाए वह जो पडी रही तो फिर उसमे प्राणो का स्पन्दन नही दिखाई दिया। उसके इस कठिन बन्धन से रासमणि का शव निकाल लाने के प्रस्ताव पर कइयो के चेहरे सूख गए, आँखे भर आई।

केवल अभयपद ही अचल बना रहा, वह अब तक निर्लिप्त तथा उदासीन बना एक ओर हटकर खडा था। पर स्थिति भाँपकर उसी दम आगे बढ आया और पास मे खडे हो उसने शान्त स्वर मे पुकारा, "मासी माँ।"

उमा की देह पल भर मे सिहर उठी—और कोई स्पन्दन अनुभूत न हुआ। उस निश्चल-सी देह मे।

सास को सिर्फ प्रणाम करने के सिवाय छूने का रिवाज नही था। अभयपद भी जरा हिचकिचाया, फिर झुककर उमा के पाँव छूकर उसे जरा हिलाकर बोला, "मासी माँ, अब आपको हट जाना चाहिए। आप तो जानती ही है, अब इन्हे और यहाँ नही रखा जा सकता।"

तब उमा ने सिर उठाया। एक प्रकार की विह्वल दृष्टि से देखा, चारो ओर फिर किसी के कुछ समझने के पूर्व ही रासमणि के पैरो के पास सर पटकने लगी, सवेग जोर-जोर से।

एक क्षण मे ही अभयपद ने उसका सिर थाम लिया। दृढ स्वर मे बोला, "छि-छि मासी माँ। आप तो बुद्धिमती हैं, ऐसा करना शोभा नही देता।"

तब तक कमला भी समझ गई। उसने आकर उमा को अपनी गोदी मे खींच लिया। उमा के आँसुओ का बाँध टूट गया। एक बार फिर हाहाकार कर उठी वह।

अभयपद ने औरो को इशारा किया। शव ले जाने का यही मौका था। राघव घोषाल ने खँखारकर और गला साफ कर के कहा, "बडी दीदी, आपको भी तो चलना पड़ेगा, मुखाग्नि कौन करेगा?"

कमला मानो चौंक उठी, "मुझे ही जाना पडेगा? कोई दूसरा उपाय नही है?"

सन्तान रहते। खैर गोविन्द ही चले। उसके पास से नूडो (चिता मे आग लगाने के लिए तृणखण्ड आदि का गुच्छा) ले लेना उससे।"

शव-यात्रियो की 'हरि बोल' गली के घुमाव से विलीन होते ही मानो उमा की तन्द्रा भी लुप्त हो गई। वह बिलकुल सीधी खडी हो गई।

कमला ने जरा भयभीत होकर पुकारा, "उमा?"

सहज भाव से उमा ने जवाब दिया, "मैं मरघट पर जाऊँगी, दीदी।"

"नही-नही, तुम्हे जाने की कोई आवश्यकता नही। गोविन्द तो गया ही है।"

"सच कहती हूँ मैं लौट आऊँगी। मेरे लिए चिन्ता न करो। यहाँ बैठे-बैठे नही

दीदी, यह मुझसे न होगा। मुझे छोड दो।"

वह झट-पट सीढियाँ उतरकर एक तल्ले पर आ गई और कमला या श्यामा के रोकने के पूर्व ही रास्ते पर चलने लगी।

कमला व्याकुल हो बोली, "अरी ओ गिरि की माँ, जाओ-जाओ जरा उसके साथ। उफ, यह क्या हुआ ?"

गिरि की माँ फुर्ती से निकल गई। पर जरा देर बाद लौटकर बोली, "किसी के जाने की ज़रूरत नही, बडी दीदी। जिसकी वस्तु है वही साथ हैं।"

"वहाँ कौन है री ? किसकी बात कह रही हो ?"

"छोटे जमाई बाबू। मानो वे तैयार होकर ही बाहर खडे थे। वे ही साथ जा रहे है।"

× × ×

शरत् यद्यपि तैयार होकर नही आया, अपने ही काम से बडी सडक से गुज़र रहा था। एकाएक 'हरि बोल' सुनकर चौककर देखा तो राघव घोषाल और गोविन्द को पहचान गया। समझते देर न लगी कि शव किसका है। मिनट भर उसने वही खडे रहकर आगे बढने मे आनाकानी की। अब इतने दिनो बाद वहाँ जाकर खडे होने मे उसे शर्म लग रही थी। पर अन्त मे शर्म से कर्त्तव्यबोध ही अधिक प्रबल हो उठा। और वह यह भी समझ गया मरघट के बजाय उस समय घर मे ही उसकी अधिक आवश्यकता है।

पर घर मे प्रवेश नही करना पडा उसके पहले ही उमा निकल आई थी। शरत् के सामने पडते ही उसने एक बार देखा उसकी ओर, उदास विह्वल दृष्टि से। फिर नजर बचाकर नीमतल्ला की ओर कदम बढा दिए। पति को पहचानने अथवा न पहचानने का कोई लक्षण या चिन्ह उसके चेहरे पर नही झलका।

शरत् विपन्न हो पल-भर खडा रहा कुछ देर।

उमा तेज़ रफ्तार से चली जा रही थी। आखिर उसने भी उमा का ही अनुसरण किया। गिरि की माँ यही देखकर लौट आई थी।

मरघट मे जब तक चिता जलती रही उमा उस ओर ही नज़र गड़ाए स्थिर बैठी रही। शरत् उसके पीछे खडा था। थोडी देर बाद ही राघव घोषाल ने उसे पहचानकर कुशल-प्रश्न किया। दूसरे दामादो के साथ भी परिचय करा दिया। अगत्या शरत् को कुछ देर के लिए उनके पास भी खडा रहना पडा। पर अधिक देर के लिए नही, थोडी देर बाद ही लौटकर वह उमा के पास ही खड़ा हो गया।

शायद उसने कुछ सान्त्वना की बाते कहनी चाही। शायद उसका दिल कह रहा था कि इस समय उमा का हाथ पकडकर दो-एक आशा-दिलासा की बाते अवश्य कहनी चाहिएँ। पर आज इतने दिनो बाद ऐसा करना चरम परिहास।

नही होता क्या ? शायद इसीलिए वह चुपचाप खडा रहा। उसका गौर ललाट शर्म की रक्तिमा से बार-बार फूल उठा। पर कण्ठ से कोई स्वर नही निकला।

आखिर धधकती चिता राख हो गई। रासमणि का शव भस्मावशेष मे परिणित हो गया। चिता की आग बुझाकर एक-एक करके सभी गगा मे जा उतरे।

तब शरत् ने पहले-पहल मुँह खोला, उमा के कान के पास मुँह ले जाकर बोला, "अब तो तुम्हे भी नहाना पडेगा।"

उमा स्थिर दृष्टि से गगा के उस पार देखती हुई बैठी थी। न तो चौकी ही और न कोई चचलता ही प्रकट की। सहज अकम्पित स्वर मे बोली, "जाती हूँ।"

उमा के लिए कोई दूसरी साडी नही लाया था। उमा को भी इसका कोई ख्याल नही रहा था। पहनी साडी मे ही चली आई थी वह। उसके जल मे उतरते ही शरत् को ही एकाएक यह ख्याल हो आया। उसने दौडकर सामने की एक दूकान से लाल पाड की एक कोरी साडी खरीदी।

स्वामी के हाथ से उमा ने अनायास साडी ले ली। उसके उस शोक-सतप्त पत्थर-से चेहरे पर भावावेग के कोई लक्षण दिखाई न पडे, मानो उसे यही आशा थी।

लौटते वक्त और व्यक्ति जान-बूझकर ही आगे बढ गए। उमा के पैर आते वक्त जिस तेजी से उठ रहे थे, लौटते वक्त उतनी ही मन्दगति से। बिलकुल बेखबर, सामने की ओर नजर लगाए, मानो किसी कदर वह अपने दोनो पैरो से नपे-तुले कदम रखती चल रही थी।

शरत् उसके पास-पास उसी प्रकार धीमे-धीमे चलने लगा।

तब तक आगे जानेवाले शुद्ध हो घर के अन्दर पहुँच चुके थे। अन्दर से पुन रोने की आवाज आने लगी।

उमा दरवाजे के बिलकुल करीब आ पल-भर खडी रही।

एक कोने में अग्नि जल रही थी। लोहा, नीम के पत्ते व मटर की दाल के दाने बिखरे थे। यत्रचालित-सी उमा ने सारी रस्में अदा कर दी।

कुछ क्षणो के लिए वह धुएँ से घिरी लकडी की ओर देखती चुपचाप खडी रही। आँखे ही जरा सुर्ख थी, अन्यथा उसके चेहरे पर अब शोक के कोई भी चिन्ह नही रहे थे। एक धूसर-सी वर्ण-हीनता ने केवल उसकी देह को ही नही, मानो सारे मन को भी ढँक दिया था।

शरत् जरा और पास आ गया। खूब धीरे-धीरे बोला वह, "मुझसे कुछ कहना है ?"

यह पहला अवसर था जब कि उमा की देह मे सिहरन हुई। उसके पास खडे रह कर शरत् ने भी अनुभव किया।

उमा ने कोई जवाब नही दिया। उसी प्रकार कुछ क्षण और रुककर चुपचाप

अन्दर चली गई।

आकस्मिक चोट खाने से चेहरे की जो हालत होती है, शरत् का चेहरा भी वैसा ही हो उठा। पर उसने क्रोध प्रकट नही किया, केवल कुछ देर वही उसी प्रकार खडा रहकर चुपचाप अपने घर चला गया।

## 2

रासमणि के श्राद्ध तक किसी प्रकार रुका रहने पर भी मुख्य समस्या किसी तरह भी टाली नही जा सकी। अन्त मे वह वीभत्स रूप धारण कर एकबारगी सामने आ खडी हुई। इतना बडा मकान और दिन-रात की नौकरानी इन दोनो मे से एक भी विलास अब मौजूद रखना असम्भव था। कमला और उमा की आय से इस प्रकार उनका एक सप्ताह भी नही गुजर सकता।

श्राद्ध के दिन नरेन भी अकस्मात् कही से आ टपका था। शायद पद्मग्राम मे खबर पाते ही यहाँ आ गया था। भोजन करते वक्त सामने केले के पत्तल पर राशीकृत पूरियाँ देख नरेन का हृदय एकाएक उदार हो उठा, आसन ही पर खड़े होकर हाथ हिला-डुलाकर बोला, "सचमुच दीदी, लोग कहा करते है, यज्ञ का भात, केले का पात और माँ का हाथ बराबर है। पर यज्ञ का भात न सही, यज्ञ की पूरियाँ ही सही। यह तो और भी अच्छी बात है। केले का पात तो है ही, माँ का हाथ न हो बडी साली समझ लो वह माँ के ही समान है। जी भरकर ही तो आज खाना चाहिए। पर इस खाने मे आमोद नही। यहाँ आने के बाद से ही तुम लोगो के विषय मे सोचता आ रहा हूँ। माँ तो चली गई पर अब तुम सब का क्या होगा ?"

कमला का म्लान चेहरा मुस्करा उठा। बोली, "तुम भोजन करो, भैया। चलो अच्छा है कि एक तो निकला हमारे बारे मे सोचनेवाला।"

आसन पर बैठ बिना आचमन किए ही एक बडी पूरी मुँह मे डाल रुद्ध कण्ठ से बोला नरेन, "वाह, खबर कैसे न लूँगा ? क्या कहती हो तुम ? यह तो मेरा कर्त्तव्य है। मैं कोई गैर तो हूँ नही। क्या करूँ पैसे के अभाव मे दिल मसोसकर बैठा रहता हूँ। अन्यथा कर्त्तव्य क्या है, यह क्या मैं नही जानता ? कितना बड़ा गुरुवश है हमारा !"

पीछे से अस्फुट अर्धस्वगतोक्ति सुनाई पडी, "आग लगे इस मुँह मे और इस गुरुवश मे।"

नरेन दूसरे ही क्षण पिनक उठा, "सुनी, सुनी दीदी, उस औरत की बातें ! भला आज मेरी ऐसी हालत क्यो हुई ? इस औरत और उसके सुअर के बच्चो जैसे झुण्ड-के-झुण्ड बच्चो के कारण ही तो ! नही तो मुझे अभाव ही क्या था ? रोजगार क्या कोई कम करता हूँ ? क्या करूँ—बाहर-ही-बाहर सारा उड जाता

है। घर मे अगर सुख मिले तभी तो लौटूँ। हर वक्त तग करते रहने से ही तो मुझे बाहर ही बाहर घूमना पडता है।

एक और पूरी और थोडी-सी काशीफल की तरकारी मुँह मे भरकर नरेन चुप हुआ। पर अपेक्षाकृत धीमी आवाज मे बोला, "सच कहता हूँ दीदी, बहुत सोच कर देखा है। इतना बडा मकान अब किसी भी हालत मे रखना सम्भव नही। किराया कहाँ से चुकाओगी ? इससे तो अच्छा होता पास ही बस्ती है, वही एक खपरैल छाया मकान-वकान ले लो ? जरा खोजते ही मिल जाएगा। किराया भी कम होगा—और वहाँ रहने पर नौकरानी की भी जरूरत नही पडेगी। खुद ही अपनी-अपनी बारी से सारा काम कर सकती है। क्या ख्याल है ? यह ठीक नही ?"

"बस्ती ? हम बस्ती मे जाएँ ?" विस्मित हो निरर्थक प्रश्न किया कमला ने।

"भला आपके लिए और उपाय ही क्या है ? यथा भाग्य। नही तो दादा ही क्यो कूच कर जाते और उधर उमी का भी ऐसा हाल क्यो होता ?" निश्चिन्त-से नरेन ने उत्तर दिया।

श्यामा अब और अधिक सहन न कर सकी। आगे बढकर बोली, "अगर खाना है तो भलेमानस की तरह चुपचाप खाओ, नही तो निकल जाओ। हमारे वश के किसी व्यक्ति पर भी अपनी दया-माया न दिखाओ। चमार कही के। ये सब बाते कहते जबान नही गली ?"

"यह लो।" छैने की तरकारी और आलू को पूडी से लपेटते हुए बोला नरेन, "जिसकी भलाई करो वही उल्टे चोर बनाता है। मैंने ऐसा क्या बुरा कहा ? अरी जितनी आय हो उतना ही तो व्यय करना चाहिए। शास्त्र मे तो यही बात लिखी है।"

"मेरे भाग फूटे है जो शास्त्र की बातें मुझे तुमसे सीखनी पडती है। चुपके से खाओ तो खाओ, नही तो पत्तल उठाकर कूडे मे फेक दूँगी।"

"चुप रह, ज्यादा बकबक मत कर, साली !" कहा नरेन ने पर स्वर मे अब पहले जैसी दृढता नही थी। वह अब चुप्पी साधकर भोजन करने लगा।

"यह क्या है ? अनन्नास की चटनी है ? कमाल की बनी है। अरी दीदी, जरा और परोसने को कहो। लँगडे आम भी हैं क्या ? अच्छे से तीन-चार छाँट कर रख दो !"

सारा काम सँवारकर तीनो बहने छत पर आ बैठी। रात गहरी हो चली थी। मल्लिक बाग मे अभी-अभी सारस के जोड़े बोले थे। प्रति प्रहर वे पुकारा करते थे, रात के बारह से कम क्या बजे होगे। तो भी सारे दिन के अथक परिश्रम के बावजूद भी उनकी आँखो मे नीद नही थी।

कुछ देर ठडी हवा मे बैठे रहने के पश्चात् एक दीर्घ साँस छोडकर कमला बोली, "सुनने मे भले ही कडवी लगी हो, श्यामा, पर नरेन ने बात पते की कही

थी। यह मकान हमे इसी महीने छोड देना चाहिए। इस महीने का किराया भी कहाँ से दूँगी, यही सोच रही हूँ।"

"फिर भी दीदी, भला खपरैल की मढैया मे रहा जा सकता है? ऐसा ही कोई भद्र घराना देखकर दो-एक कमरे किराए पर लेने होगे।"

"यही तो सोच रही हूँ, नही तो इतना सारा असबाब कहाँ अटेगा। एक यही समस्या है।"

"वैसे चाहो तो असबाब"—थूक निगलकर श्यामा बोली, "कुछ-कुछ मेरे यहाँ रख सकती हो। फिर जब गोविन्द बडा होकर मकान बना ले, तब वापस ले आना।"

"हाँ सलाह कोई बुरी नही। क्या ख्याल है उमा?"

"पर जीजी, दीदी का भी तो एक ही कमरा है। वह भी गैरो के यहाँ। और फिर यहाँ से ले जाना भी कोई खेल है?" धीरे-धीरे जवाब दिया उमा ने।

"अँ—है, लेने को तो मैं ले जाऊँगी—जैसे भी हो। न हो एक घोडे की सवारी (गाडी) कर लूँगी।"

अबकी उमा के स्वर मे जरा और दृढता दिखाई दी, "नही दीदी, यह सारा असबाब माँ का प्राण था। वे जो कह गई है मैं उसकी अवहेलना नही कर सकती। दीदी को-ही देने की इच्छा होती तो वे सब अपने-आप ही दे जाती।—यदि हमे कही ठौर मिलेगा तो इसे रखने को भी मिल ही जाएगा।"

वातावरण धूमिल होता देखा कमला विषय बदलकर बोली, "उमी, शरत् आज भी आया था। करीब चार बजे आकर जरा-सा मुँह मीठा कर चला गया।"

उमा क्लान्त स्वर मे बोली, "मुझे पता है।"

पल भर रुककर वह फिर बोली, "क्यो खामखाँ खीचतान करती हो, दीदी।"

"नही, नही ऐसी बात नही" अचकचा उठी कमला, "उस दिन मरघट पर भी तो गया था। आखिर हमारा भी तो एक कर्त्तव्य है। इसीलिए हेम को उसे न्योता देने उसके छापेखाने मे भेजा था। वह घाट वाली साडी तो पहले ही भेज दी थी मैंने।"

उमा निरुत्तर रही। पूर्व दिशा मे धीरे-धीरे बादल जमा हो रहे थे—वह उसी ओर देखती बैठी रही।

हल्की-सी चुप्पी के बाद कमला बोली, "शरत् से दो-एक कमरे ढूँढने के लिए कहा था। इस तगी मे इतना बड़ा मकान···"

उमा से किसी प्रकार का साग्रह प्रश्न का आभास पाकर कमला बीच ही मे रुक गई। पर उमा ज्यो की त्यो बैठी रही। तब श्यामा ने ही पूछा, "फिर उसने क्या जवाब दिया?"

"कहा तो है देख दूँगा। कही पता भी लगा है शायद—कल ही खबर भेजेगा।"

"तुम्हारी देखभाल कौन करेगा ?" काफी देर की नीरवता के बाद श्यामा ने पूछा।

"ईश्वर" हल्का-सा उत्तर दिया कमला ने।

## 3

दूसरे दिन वाकई शरत् ने खबर भेजी। मकान है ब्राह्मण परिवार मे, एक तल्ले मे दो कमरे—दो कहने भर के लिए ही है, दरअसल डेढ ही कहना ठीक होगा—किराया सात रुपए महीना। उनके लिए यही किराया क्या कम कष्ट-साध्य था। पर चारा भी क्या था ? इतना असबाब कहाँ रखते ? वैसे सोचा था कि कुछ चीजे नीलाम कर देगे—जैसे जलचौकी, तख्त आदि सारी चीजे ग्राहक बुलाकर बेच देगे। इसके अलावे भी जो चीजे बचेगी और कमला की सारी वस्तुएँ मिलाकर रखने पर वह डेढ कमरा ही गोदाम जैसा लगेगा।

कमला ने व्यर्थ समय न गँवाकर वही कमरे ले लिए। मकान-मालिक के परिवार मे पुरुष कम थे—महिलाएँ ही अधिक थी, एकाधिक वृद्धाएँ भी। अत आश्रय के लिहाज से काफी निरापद जगह थी। कमरे इतने स्वास्थ्यकर नही थे—खुली हवा और रोशनी की कमी थी, तो भी देरी करने की और गुजाइश जो नही थी। जब हर समय सुविधा की आशा नही तो जो मिले वही अच्छा था।

इस घरवाले को इतला कर दी गई और उस घरवाले को पेशगी किराया दे दिया, हेम और अभयपद अगले रविवार को आकर उनका सारे असबाब के साथ मकान बदलवा देगे, यही तय हुआ। समय निकट था। पर उमा मानो क्रमशः जड-सी हो गई। एक प्रकार की निविड निर्लज्जता ने उसे दबोच लिया था। उसके हाथ-पाँव अवसन्न हो उठे थे। ऐसा महसूस होता था उसे अब भी कि सचमुच यह मकान छोडना नही पडेगा।

कमला अकेली ही सारा काम करती। अध्धे-बोतल खरीदने वाले को बुलाकर तीन-चार टोकरी तो शीशियाँ ही बेच डाली। पुराने पचागो का ढेर। यह वह कितना क्या। तार की फाइलो में गुँथी चिट्ठियाँ और किराए की रसीदें। हर ताक और कोने मे इकट्ठी हो रही थी एक लम्बे समय की जीवन-यात्रा की यादगारे, प्रमाण ! भण्डार-गृह के बडे-बडे मटके और कलसियाँ अब किसी भी काम की न रही। बेची भी नही गई। हाल ही मे कुछ डिब्बों के ढक्कन बनाये गए थे, उनको तो ले ही जाना था। हो न छोटी-सी गृहस्थी, पर अनाज तो रखना ही पड़ेगा।

उमा इस बडे मकान मे चारो ओर घूमती-रहती। यहाँ की छोटी-से-छोटी वस्तु भी उसके जीवन का अग बन चुकी थी। उसका बचपन इसी मकान के वातावरण मे बीता था। ससुराल मे तो वह इने-गिने दिनों ही रही थी।

भण्डार-गृह मे पैर रखते ही उसकी आँखे सजल हो उठी। रासमणि निपुण

महिला थी। करीनेवार ईंटे सजाकर उस पर एक लम्बा तख्ता लगा था, जिसपर मोटी-मोटी पिडरियो पर मटको की पक्ति लगी थी। मटको पर कलसियाँ और उनके ऊपर हाँडियाँ। इनमे से किसमे क्या-क्या रहता है, यह उमा को आज भी मुँहजबानी याद है। उन मटको तथा कलसियो पर आज भी रासमणि के हाथो का स्पर्श मालूम होता था। नियमानुसार वे कपडे से उन पर पडी धूल झाड़ा करती थी।

सारा मकान हा-हा कर रहा था। विछोह की हवा बह रही थी। किवाडे और खिडकियाँ तक मानो दयनीय चेहरे व अदृश्य आँखो से ताकती थी। इन्हे उसकी किशोर स्वप्न-कल्पना से लेकर यौवन की चरम व्यर्थता तक के अन्तर के सम्पूर्ण इतिहास का पता है। अनेक गोपनीय आँसुओ के गवाह थे ये।

पूरा मकान बहुत दिनो से साफ नही हुआ था। अनावश्यक समझकर ही गिरि की माँ व्यर्थ परिश्रम नही करती थी। सारे कमरो में इन कई दिनो मे ही काफी कूडा-करकट जम गया। किवाडे, खिडकियाँ खुली ही रहती, हवा से जब किवाड़े खड़खडाती तो उमा को ऐसा लगता मानो ये आर्तनाद कर उठी हो। गन्दे फटे कागज़ कमरो मे ऐसे उडते रहते हैं मानो उनके सिरों पर भूत सवार हो। कभी-कभी उमा एकाध कागज उठाकर देख भी लेती। बेकार कागज़ था तो भी यह कब, किस कारणवश इस मकान मे आया था, आज भी उमा यह अच्छी तरह जानती है।

× × ×

आखिर एक दिन मकान छोडने का दिन भी आ गया। उस दिन उमा एक 'काण्ड' (तमाशा) कर बैठी। प्रातः उठकर ही खुद पानी खींचकर सारा मकान धोने-पोछने लगी। श्यामा दौडती आई और बोली, "यह क्या करती है उमी ? यह फिजूल की बेगार क्यो कर रही है ? न हो तो गिरि की माँ को ही कहा होता—वह आज भर तो है ही।"

"रहने दो, दीदी। मैं ही करूंगी, वरना मुझे शान्ति नही मिलेगी। जिसने हमे इतने दिन आश्रय दिया, उसे इस कदर छोड जाना ठीक नही।"

श्यामा मुँह बनाकर बोली, "तू तो बौरा गई है।"

श्यामा इन कई दिनो तक कही नही गई। इन्हे नए मकान मे बसाकर एकबारगी जाने का इरादा था। वह व्यथित न थी, ऐसा नही—हजार हो, इसी को तो मायका मानती थी इतने दिनो तक। उसका जी आज वेदनातुर हो उठा। पर उसका भावी स्वप्न उसे नई आशा भी देता।

हेम की जरा और तरक्की होते ही वह उसकी शादी करेगी। नन्हे को पढाएगी। तरु को भी पढाने की इच्छा है उसकी। आजकल लड़कियों को पढाने की खब धम मची है, यहाँ तक कि देहातो में भी। आन्दोलनकारी युवकों ने तो इसी

बात की कमर कस ली है कि लडकियो के लिए भी हर जगह स्कूल खोलेगे वे।

फिर, कभी-कभी वह कहती, "सरकार गिन्नी (गृहिणी) के पीछे पडकर थोडी-बहुत जमीन तो मैं ले ही लूँगी। लेकिन यदि एक मिट्टी की मढैया भी बना पाऊँ तो फिर क्या कहना है? और मिट्टी का ही घर क्यो बनाऊँ, हेम की शादी मे अच्छी-खासी रकम वसूल करूँगी मै—इसी से पक्का मकान बनेगा ··"

उमा सुना करती। एक ही कोख की दो बहने। जुडवाँ बहने। एक का जीवन उज्ज्वल सार्थकता की ओर प्रसारित—और उसका? अगल-बगल, आगे-पीछे, कही कोई उम्मीद नही, सहारा नही, किसी सफलता का स्वप्न देखने-भर के लिए तनिक-सा सूत्र भी नही। केवल चारो ओर घना अधकार। जीवन-प्रभात मे ही उसके मानस-गगन से सारा सुनहला रग मिट गया था। कभी-कभी वह हिंस्र हो जाना चाहती थी। उन्मत्त आक्रोश से इस सृष्टि का सर्वस्व तहस-नहस कर जीवन सौन्दर्य के अस्तित्व तक को नाखूनो से खरोच डालने की इच्छा होती उसे।

खाना-पीना होते ही श्यामा बाल-बच्चो को लेकर नए मकान मे चली गई। वह और हेम उनका असबाब सँवारकर वही चले जाएँगे। केवल अभयपद उन्हे ले जाने के लिए रह गया था।

उमा मानो भागती फिर रही थी। उसके हाव-भाव से ऐसा जान पडता था मानो ये लोग उसे देखते ही पकड ले जाएँगे। इसी आशका से वह इनकी नजरे बचा-बचाकर भागती फिर रही थी।

गिरि की माँ ने बचे बर्तन माँजकर बोरे मे भर दिए। दोपहरी हो चली थी। भोजन के बर्तन एक बाल्टी और एक लोटा—यही तो रह गए थे। सुबह से ही आज वह रो रही थी—रोती चली जा रही थी। एक लम्बे अर्से से पुरानी नौकरानी वैसे बीच-बीच मे ठेके का काम कर लेती थी, पर यह घर उसने कभी नही छोड़ा था। रासमणि के बीमार पडने पर भी फिर रात-दिन के लिए वह यही आ गई। अब उसे भी दूसरी जगह नौकरी ढूँढनी पडेगी। नए मकान मे एक जगह डेढ रुपये माह-वार की नौकरी तय हुई थी, केवल बर्तन माँजने की। पर गिरि की माँ ने यही किसी दूसरी जगह रात-दिन की नौकरी खोज ली—दूसरे मुहल्ले मे जाकर वह काम नही कर सकेगी।

आखिर उसने भी विदा ली। गले मे आँचल लपेटे कमला को प्रणाम करते वक्त दहाडे मारकर रो पडी। जरा वेग कम होने पर बोली, "बडी दीदी, जाते वक्त छोटी दीदी से भेट नही होगी?" जरा सोचकर कमला ने जवाब दिया, "रहने दो, गिरि की माँ। अब उससे सहा नही जाता। देख नही रही हो, कैसी भागी-भागी फिर रही है?—तू अभी जा—आना एक दिन उस मकान मे। उसे तो देख आई है न।"

"अच्छा!" कह और एक लम्बी साँस छोडकर वह बाहर निकल गई। कमला

ने इसे एक नई कोरी साडी खरीद दी थी। पुरानी नौकरानी थी, माँ की तरह घर सँभालती थी। गोविन्द को बडे होकर नौकरी करने दो तब तक गिरि की माँ यदि जीवित रही तो फिर से उसे अपने पास बुला लेगी। वृद्धावस्था मे वही उसकी देखभाल करेगी। कमला यही सोचने लगी।

अभयपद आकर बोला, "बडी मासी, गाडी बुला लाऊँ ?"

आँखे पोछकर कमला ने कहा, "जाओ, बेटा।"

पर उमी कहाँ गई ?

कमला ऊपर आकर हर कमरे मे ढूँढने लगी। खाली कमरे हा-हा कर रहे थे। एक प्रकार का भय-सा लगता था। कमला ने एक बार आवाज भी लगाई, पर कोई जवाब न मिला। उद्विग्न हो जल्दी-जल्दी कमला तिमजिले की छत पर चढ गई।

छत के जिस भाग से बडी सडक का कुछ अश दिखाई पडता था उसी कोने पर औंधी लेटी उमा रास्ते की ओर एकटक निहार रही थी। कमला को याद आया कि जब वह थियेटर तैयार हो रहा था तब यही से उमी उसे देखा करती थी।

पास आकर धीरे-से उसका माथा सहला, कमला ने स्नेह से पुकारा, "उमा।"

उमा चौंक पडी। वह एकाग्र, तन्मय होकर ही देख रही थी। मैदान मे एक सभा होने वाली थी, लडके दल बाँधे उसी ओर जा रहे थे। भीड लगी थी सड़क पर। पर उमा की आँखे उसी ओर लगी रहने पर भी दृष्टि क्या वही अटकी थी ? उसकी दृष्टि उसके सुदूर अतीत मे या अनागत अधकार भविष्य मे चली गई थी, कौन जाने ?

"उमि, उठो अब।" कमला उसका माथा सहलाने लगी।

"तुम नीचे जाओ जीजी, मैं आ रही हूँ।"

"नही, तू भी आ। मेरे साथ ही आ। अभयपद गाडी लाने गया है।"

"चलो।" दीर्घश्वास भी मानो उमा नही छोड पा रही थी।

मोहाच्छन्न की तरह वह सीढियाँ उतरती गई। इक-मजिले की सीढी की ओर पैर बढाते ही चिहुंक उठी उमा।

"एक बार माँ को प्रणाम न करूँ, जीजी ?"

कमला कोई उत्तर न दे सकी, चुपचाप रासमणि के कमरे की ओर इशारा कर दिया। साथ-साथ वह भी गई।

रासमणि का वह कमरा। एक लम्बे अर्से तक वे उसी कमरे मे रही थी। यही लिपी-पुती ज़मीन पर, इसी जगह उन्होने शेष निश्वास त्यागा था। कमरे के अणु-अणु मे माँ की स्मृति विराजमान थी। उमा को मानो उनकी देह की गध मिली वहाँ की वायु मे।

अब तक जिन्हे प्राणपण से रोका था, उमा के आँसू अब उमड़ ही पड़े। घुटने

टेककर प्रणाम करते ही वह दहाडे मारकर रो पडी, "माँ, ओ माँ, मुझे भी साथ ले चलो, माँ। अब और नही सहा जाता, माँ…"

कमला सान्त्वना कैसे दे, वह भी तो रो उठी थी। निर्जन, निस्तब्ध मकान मे असहाय अनाथिनी दो अबलाओ की रुलाई मानो दीवारो से टकरा-टकराकर निकल नही सकी। वहाँ की वायु मे ही घुमडती रही।

वह रुलाई रोके नही रुकी। अभयपद के न आने से न जाने कब रुकती। यहाँ तक कि अभयपद उन्हे बुलाने गया तो थोडा शरमा गया। आखिर किसी कदर गला साफकर पुकारा उसने, "बडी मासी, कोचवान बडा हल्ला मचा रहा है, अब जल्दी चलना चाहिए।"

कमला उत्तर नही दे सकी पर मानो किसी प्रकार अपने को उठाकर खडी हो गई। फिर उमा को एक प्रकार खीचकर ही गाड़ी पर सवार कर दिया।

अभयपद ज़रा रुका। कमरो पर अन्तिम नज़र फेकी, कुछ पड़ा न रहे, आवश्यक कुछ। इसके बाद रसोई मे पानी उँडेलकर वह एक बाल्टी व लौटा लिए बाहर निकल आया। किवाडो मे लगे ताले की जाँच की। इसकी कुजी आज ही मकान-मालिक को पहुँचा देनी होगी, यही वायदा कर आया था वह।

सदा के लिए वे उस गली और मकान से चले गए। वह पुराना आवास आषाढ की विषण्ण सध्या की बदली मे नि.शब्द खडा रहा, अपने अन्तर मे चिर-मलीन स्मृति छिपाए। बदली-वायु के झौके खुली खिड़की के पल्लो को खड़खडाते रहे। आज यहाँ कल वाली रोशनी नही जलेगी। उसकी छत पर आज अँधेरे मे कोई सिसकियाँ नही भरेगा। कुछ दिनो बाद फिर नए किराएदार आएँगे तो फिर आरम्भ हो जाएगी नए चेहरो की चहल-पहल। पर वे दूसरे होंगे, उनका इतिहास दूसरा होगा।